महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात

वंगभाषा के प्रसिद्ध लेखक

मिस्टर आर० सी० दत्त-लिखित बँगला-पुस्तक का

हिन्दी-अनुवाद
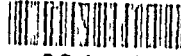
अनुवादक

श्रीरुद्रनारायण

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

१९१३

प्रथम संस्करण] [मूल्य ।।।=)
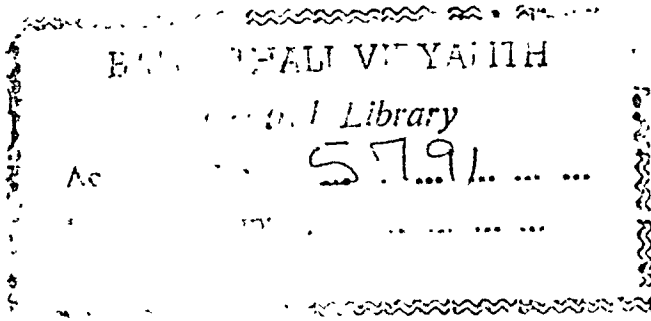
महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात

पहला परिच्छेद

ईसा की बारहवीं शताब्दी के अन्त में मुहम्मद ग़ोरी ने आर्य्यावर्त को विजय कर लिया था और ऐसे विपुल और समृद्धिशाली राज्य को पाकर भी मुसलमान लोग सिर्फ़ १०० वर्ष तक शान्त रह सके। उन्होंने विन्ध्याचल और नर्म्मदा जैसी विशाल दीवाल और खाई के पार करने का कभी सहसा प्रयत्न नहीं किया। यही कारण है कि दक्षिण भारत उनके हस्तगत होने से बचा रहा। परन्तु तेरहवीं शताब्दी के शेष भाग में दिल्ली का युवराज-अलाउद्दीन ख़िलजी आठ हज़ार फ़ौज साथ लेकर एक-बारगी हिन्दू राजधानी देवगढ़ पर टूट पड़ा। यद्यपि देवगढ़ के राजपुत्र ने बड़ी भारी लड़ाई की, परन्तु उसे हार माननी पड़ी। हिन्दुओं को उसे बहुत धनदौलत और इलिचपुर का इलाक़ा नज़र में देकर सुलह करनी पड़ी। अलाउद्दीन जब दिल्ली का बादशाह हुआ तब उसके प्रधान सेनापति मलिक काफ़ूर ने तीन बार दक्षिण के प्रदेशों पर आक्रमण करके नर्म्मदा के तट से लेकर कुमारिका अंतरीप तक सब देशों को तहस नहस कर दिया। देवगढ़ प्रभृति दाक्षिणात्य हिन्दू राज्य ने दिल्ली के मुसलमान बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली।

चौदहवीं शताब्दी में जब मुहम्मद तुग़लक दिल्ली के तख़्त पर बैठा तब उसने देवगढ़ का नाम बदल कर दौलताबाद रक्खा, और दिल्ली के रहनेवालों को हुक्म दिया कि वह तुरंत "दिल्ली छोड़कर दौलताबाद जाकर बस जायँ ।" परन्तु इस अनिवार्य आज्ञा का विरोध प्रजागण ने एक स्वर से किया । यद्यपि दौलताबाद आबाद न हुआ परन्तु दिल्ली उजड़ गई और हिन्दुओं का वैमनस्य मुसलमानों के प्रति बढ़ता ही गया । इसलिए हिन्दुओं ने विजयनगर नामक एक नवीन राजधानी बनाकर एक विशाल साम्राज्य का संस्करण किया । उधर मुसलमानों ने भी दिल्ली से अलग दौलताबाद को स्वतंत्र कर लिया । समय आने पर दक्षिण में विजयनगर और दौलताबाद प्रधान राज्य बन गये । प्रायः तीन सौ वर्ष तक दिल्ली के बादशाहों ने दक्षिण के देशों को हस्तगत करने का कोई विशेष उद्योग नहीं किया । किन्तु, इस विपद् से बचते हुये भी दक्षिण में हिन्दूराज्य निरापद नहीं था, क्योंकि हिन्दुओं ने अपने घर के भीतर दौलताबाद जैसे मुसलमान राज्य को स्थान दिया था । उस समय विजयी मुसलमान जाति के समक्ष हिन्दुओं का जातीय जीवन क्षीण और अवनतिशील था । बस इन्हीं कारणों से एक दूसरे में अनबन थी । समय के हेरफेर से दौलताबाद का विशाल राज्य कई खण्डों में विभक्त हो गया और उस एक के स्थान पर विजयपुर, गोलकुण्डा और अहमदनगर नामक तीन मुसलमानी राज्य स्थापित हो गये । अतः मुसलमान राजगण एकत्र हो गये और सन् १५६४ ई० में तिलीकोट की लड़ाई में विजयनगर के हिन्दूसैन्य को परास्त कर दिया । इस प्रकार विजयनगर का हिन्दूराज्य अथवा भारतवर्ष की हिन्दू-स्वाधीनता विलुप्त हो गई तथा विजयपुर गोलकुण्डा और अहमद-

नगर के तीनों मुसलमानी राज्य बड़े प्रबल और प्रभावशाली हो गये । सन् १५८० ई० में अकबरशाह ने भी सारे दक्षिण देश को दिल्ली के अधीन करना चाहा जिसका परिणाम यह हुआ कि उसके जीवन काल ही में सारा ख़ानदेश और कुछ अहमदनगर का अंश दिल्ली की सेना के अधिकार में आगया । अकबर के पोते शाहजहाँ बादशाह ने सन् १६३६ ई० के निकट शेष अहमदनगर का अंश भी अपने अधिकार में कर लिया । बस, जिस समय का वृत्तान्त हम लिखने बैठे हैं, उस समय दक्षिण देश में केवल विजयपुर और गोलकुण्डा यही दो स्वाधीन और पराक्रमी मुसलमानी रियासतें थीं ।

इस सारे राज्यविप्लव के समय देशियों अर्थात् महाराष्ट्रियों की अवस्था कैसी थी ? उसका जानना हमारे देशवासियों के निकट अत्यावश्यक है । मुसलमानी राज्य के अधीन रहते हुये भी हिन्दुओं की दशा नितान्त मन्द नहीं थी, किन्तु मुसलमानों का राज्यशासन तथा प्रबन्ध अधिकांश में महाराष्ट्रही बुद्धि-बल पर निर्भर था । प्रत्येक सरकार कई परगनों में विभक्त थी । इन सारी सरकारों और परगनों पर शायद ही कभी कोई मुसलमान कर्म्मचारी नियुक्त होता था । अधिकांश महाराष्ट्र ही कर्म्मचारी लगान वसूल करके सरकारी रुपया ख़ज़ाने में जमा किया करते थे । महाराष्ट्र देश में पर्वतों की अधिकता होने के कारण उनपर बने हुए क़िलों की संख्या भी अधिक है । यद्यपि उन दुर्गों के मालिक मुसलमान थे तथापि मुसलमान अधिकारी लोग उन तमाम क़िलों को महाराष्ट्रों के आधिपत्य में करने से ज़रा भी नहीं झिझकते थे । यही कारण है कि, महाराष्ट्र क़िलेदार बहुधा जागीरदार हुआ करते थे और उसी जागीर की आमदनी से क़िलों और सैन्य का खर्च चलाते थे ।

इस प्रकार राज-दरबार में अनेक हिन्दूगण मनसबदारी वग़ैरह पदों पर नियोजित थे और उनमें से कोई सौ, कोई दो सौ, पाँच सौ, हज़ार अथवा इससे भी अधिक सवारों को लड़ाई के समय हाज़िर कराने के उत्तरदाता थे। इन अश्वारोही सैन्य के वेतन व आवश्यकीय व्यय के लिए भी वह एक एक जागीर के स्वामी थे।

विजयपुर के सुलतान के अधीन चन्द्ररावमोर १२ हज़ार पैदल फ़ौज का सेनापति था। सुलतान के आदेशानुसार चन्द्ररावमोर ने नीरा और वर्णा नदी के बीचवाले सब देशों को विजय किया था। अतः सुलतान ने प्रसन्न होकर वह देश उसे नाममात्र के कर पर जागीर की सूरत में दे दिया। इस प्रकार चन्द्ररावमोर की सन्तान ने उसपर सात पीढ़ी तक राज्य किया और उन्हें लोग राजा के स्वरूप में समझते थे। वास्तव में वह स्वच्छन्द राजा थे भी। कुछ दिनों के बाद यह देश "निबालकर" वंश के प्रधान वंशज रावनायक के अधीन हो गया और उन्होंने उसपर देशमुख की उपाधि से राज किया। इसी प्रकार मलावार देश में घाटगीवंश, मुश्वरदेश में मनयवंश, चसी और मुधोलदेश में घरपुरीवंश का राज्य था और यह सब पुरुषानुक्रम से विजयपुराधीश सुलतान के कार्य्यसाधन में तत्पर रहा करते थे और कभी कभी आपस में भी घोर संग्राम कर बैठते थे। जातीय विरोध की भाँति और कोई भी विरोध नहीं है। सुतराम् पर्वत-संकुल कोकण व महाराष्ट्र प्रदेश के प्रत्येक स्थानों में आत्मरोध की ज्वाला धधक रही थी। बहुत रुधिर प्रवाह होने पर भी उनके लिए कुलक्षण नहीं किन्तु सुलक्षण ही था, क्योंकि जिस तरह चलने फिरने से हमारा शरीर कठिन और दृढ़ हो जाता है उसी प्रकार सर्वदा कार्य्य और उपद्रवों के द्वारा जातीय बल

और जातीय जीवन रक्षित और परिपुष्ट होता है उसी प्रकार महाराष्ट्रों की जीवन-उषा की प्रथम रक्तिमाच्छटा ने महाराज शिवा जी के आगमन होने के कुछ पूर्व ही भारतवर्ष के आकाश को रंजित कर दिया था।

अहमदनगर के सुलतान के अधीन यादवराव और भौंसला नामक महाराष्ट्रवंश के दो प्रधान नायक थे। सिन्धुक्षीर के यादवराव के समान पराक्रमी समस्त महाराष्ट्र देश में और कोई नहीं था। यदि सूक्ष्मविवेचना की जाय तो यादवराव देवगढ़ के प्राचीन राजघराने का वंशज ठहरता है। यद्यपि भौंसलावंश यादव राव की भाँति उन्नत नहीं था तथापि उसकी गणना एक प्रधान और क्षमताशाली वंश में थी। इस स्थान पर यह प्रकट कर देना-अनावश्यक नहीं प्रतीत होता कि, यादवराव के घराने में शिवाजी की माता उत्पन्न हुईं थीं और भौंसला राजपरिवार से शिवाजी के पिता थे।

—०—

दूसरा परिच्छेद

रघुनाथ जी हवलदार

कोकन देश में वर्षाकाल के समय प्रकृति की दशा बड़ी भयानक हो जाती है, सन् १६६३ ई० में एक दिन संध्या समय घनघोर घटा छा गई। यद्यपि अभी सूर्य्यदेव अस्ताचल के निकट भी नहीं पहुँचे थे तथापि काले काले बादलों के दलों से सारा आकाशमण्डल घोरतम अँधेरे से छा गया और हाथ को हाथ नहीं सूझता था। आस पास के पहाड़ और जङ्गल भादों की अँधियारी का दृश्य दिखा रहे थे। सारे मैदान, नदी, वन, पर्वत और तराइयों में महा अन्धकार छाया हुआ था। आकाश और भूमि सब के सब निस्तब्ध और शब्दशून्य थे, परन्तु फिर भी पर्वत से बहती हुई छोटी छोटी नदियाँ कहीं तो चाँदी के गुच्छों के समान दीख पड़ती थीं और कहीं अन्धकार में लीन होकर केवल शब्दमात्र से अपना परिचय दे रहीं थीं।

उसी पर्वत के ऊपर वाले मार्ग से केवल एक सवार अपने घोड़े को वेग से चलाये हुए जा रहा था। घोड़े का सारा बदन पसीने से तर बतर हो रहा था। सवार का बदन भी धूल और कीचड़ से परिपूर्ण था और देखने से मालूम होता था कि वह अवश्य कहीं दूर से आ रहा है। उसके दाहिने हाथ में बर्छा, कमर में तलवार, बायें हाथ में बल्लम और घोड़े की लगाम थी, पीठपर ढाल पड़ी हुई थी और शिर से पैर तक ज़िरहबख़्तर में

डूबा हुआ था। चूँकि शिर पर उसके लालरंग की गोली पगड़ी बँधी हुई थी। इससे यह भलीप्रकार प्रकट होता था कि वह कोई महाराष्ट्रीय योद्धा है। अवस्था उसकी अभी १८ वर्ष से अधिक नहीं मालूम होती, और शरीर का गठन भी बड़ा दृढ़ है। ललाट ऊँचा, दोनों नेत्र ज्योतिःपूर्ण, मुख-मण्डल बड़ा ही गम्भीर और भावपूर्ण था। परन्तु श्रम से विह्वल होकर घोड़े से नीचे कूद पड़ा, लगाम वृक्ष पर फेंक दी, बर्छी पेड़ की शाखा में टेक दी और हाथ से माथे का पसीना पोछ अपने काले काले बालों को उन्नत ललाट के पीछे डाल थोड़ी देर तक आकाश की ओर देखने लगा। आकाश की दशा बड़ी भयानक हो उठी थी और यह भली प्रकार विदित हो रहा था कि अभी कोई बड़ी भारी आँधी आयेगी। मन्द मन्द वायु का चलना आरम्भ हुआ, अनन्तर पर्वत और वृक्ष लताओं से गम्भीर शब्द होने लगा। रह रह कर मेघों की गर्जना भी सुनाई देने लगी और हठात् युवक के सूखे होठों पर दो एक बूँद वर्षा का जल भी पड़ गया। अब कहीं जाने का समय नहीं है। जब तक आकाश अच्छी तरह निर्मल न हो जाय, तब तक कहीं ठहरना ही उचित है। परन्तु युवक को इसके विचारने का अवसर नहीं था। युवक जिस प्रभु के यहाँ काम करता है वह विलम्ब अथवा आपत्ति का बहाना नहीं सुनता और यही कारण है कि युवक को भी आपत्ति और विलम्ब करने का अभ्यास नहीं है। अथच तुरन्त ही वह फलाँग मार घोड़े पर जा बैठा फिर थोड़ी देर आकाश को देख तीर के समान घोड़े को दौड़ाना प्रारम्भ कर दिया। चलते समय उसके शस्त्रों की झनकार से ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह सोते हुए पर्वत-प्रदेश को अपनी प्रतिध्वनि से जगाना चाहता है।

थोड़े ही समय के बाद वायु का वेग बढ़ गया। आकाश की एक ओर से दूसरी ओर तक विद्युल्लता कौंदने लगी। मेघों के गर्जन से पर्वत-समूह तरजने लगे। हठात् वायु का वेग प्रचण्ड हो उठा, और ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो पर्वत-समूल उखड़ जायँगे। वायु के चलने के कारण पर्वत के जङ्गलों में भयानक शब्द होने लगे। झर्ना का प्रपात भीषमरूप से उफना पड़ा। नदियों में कर्ण-भेदी गुँजार से जलतरङ्ग बढ़ने लगी। क्षण-क्षण में बिजुली के चमकने से बहुत दूर तक स्वाभाविक घोर विप्लव दिखाई देने लगा और बीच बीच में बादलों का गर्जन जगत् को कम्पित और खलबलाने लगा। वर्षा के रौद्र रूप धारण करने के कारण झरने और नदियों का जल उमड़ पड़ा।

अश्वारोही इन आपदाओं को तृण के समान समझता हुआ आगे बढ़ने लगा, परन्तु कभी कभी ऐसा मालूम होता था कि घोड़ा और सवार वायु के वेग से अभी पर्वत से नीचे गिरा चाहते हैं। अकस्मात् वायुपीड़ित एक वृक्ष की शाखा से अश्वारोही टकरा गया। पगड़ी उसकी छिन्न भिन्न हो गई और उसके शिर से दो एक बूँद रुधिर भी टपक पड़ा, तथापि अश्वारोही जिस कार्य्य का व्रती था उसकी अपेक्षा यह दुःख साध्य था। इस कारण युवक को मुहूर्तमात्र भी विश्राम लेने का अवकाश न मिला और वह सतर्कता के साथ आगे बढ़ता चला गया। दो तीन घड़ी मूसलाधार वृष्टि होने के पश्चात् धीरे धीरे आकाश मेघावछिन्न होने लगा और तत्काल ही वर्षा थम गई। सुतराम् युवक की दृष्टि अस्ताचल-चूड़ावलम्बी सूर्य्य के प्रकाश से उन पर्वतों और नवस्नात वृक्षसमूहों की चमत्कारित शोभा पर पड़ गई। युवक दुर्ग के पास पहुँच, एक बार अपने घोड़े

को रोका और अपने सुन्दर मुखमण्डल पर बिखरे हुए बालों को हटा कर नीचे की ओर देखने लगा, जहाँ तक वह अपनी निगाह उठाकर देख सकता है वह सभी स्थान असंख्य पर्वत-मालाओं से आच्छादित है। उन पर्वत-शिखर के नवस्नात वृक्ष अपनी शोभा और ही चमका रहे हैं। बीच बीच में झरने शत-गुने बढ़ कर मानो एक एक शृंग पर नृत्य कर रहे हैं। सूर्य्यदेवकी किरणों से उनकी शोभा और भी अधिक बढ़ गई है। पर्वत-शिखरों पर सूर्य्य की किरणों ने अनेक रङ्ग धारण कर लिया है। स्थान स्थान पर इन्द्रधनुष का दृश्य है। बड़े बड़े इन्द्रधनुष नाना प्रकार के रङ्गों से रञ्जित हो लाल पीले हो रहे हैं। मेघों में अब धीरता नहीं। पवनदेव के ताड़ना से विह्वल हो गले जा रहे हैं। परन्तु यह प्रकृति की सारी शोभा युवक को केवल क्षणमात्र मुग्ध करने में समर्थ हुई। युवक ने सूर्य्य की ओर देख फिर दुर्ग का रास्ता लिया और थोड़ी देर में क़िले के पास पहुँच अपना परिचय दे दुर्ग में प्रवेश किया। उसी समय सूर्य्य अस्त हो गया और झनझनाटे के साथ क़िले का दरवाज़ा बंद कर लिया गया।

द्वारपालों ने जब द्वार बंद कर लिया तब युवक को सम्बोधन करके वे कहने लगे, "यदि आप क्षणमात्र भी विलम्ब करके आते तो आज की रात कोट के बाहर ही बितानी पड़ती।"

युवक ने कहा, भला हुआ कि एक मुहूर्त का भी विलम्ब नहीं हुआ। क्योंकि मैंने चलते समय अपने प्रभु से ऐसी ही प्रतिज्ञा की थी। भवानी की असीम कृपा है। अब चल कर मैं क़िले-दार के पास अपने प्रभु की आज्ञा सुनाता हूँ।

द्वाररक्षक ने कहा, क़िलेदार भी आपही की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

युवक उसी समय क़िलेदार के मकान को चल खड़ा हुआ और वहाँ पहुँच कर अभिवादन कर अपने फेंट को खोला, और कई एक पत्रों को निकाल क़िलेदार के हवाले किया। क़िलेदार मौलीजाति का शिवाजी का एक विश्वस्त योद्धा था। वह भी समाचार पाने की उत्कण्ठा में ही था। यही कारण है कि वह दूत की परवा न करके तुरन्त ही पत्रों के पढ़ने में निमग्न होगया।

पत्रों के पढ़ने से दिल्ली के बादशाह के साथ युद्ध का प्रारम्भ होना, युवक की आधुनिक अवस्था, किन किन उपयोगों से क़िलेदार शिवाजी को सहायता पहुँचा सकता है, और अन्यान्य विषयों के प्रति उनका क्या क्या परामर्श है—ये सब बातें उन पत्रों के पढ़ने से प्रकट हो गईं। फिर क़िलेदार ने पत्र-वाहक की ओर देखा, कि वह एक अट्ठारह वर्ष का नौयुवक बालक के समान सरल और उदार है। अभी उसके शुभ्र मुखमण्डल पर घूँघरवाले बाल लटक रहे हैं, परन्तु शरीर उसका दृढ़ और सुडौल है। ललाट और वक्ष चौड़े हैं। क़िलेदार एकबार ही चकित हो गया और पत्र की ओर देखकर एकबारगी युवा की ओर मर्मभेदी तीक्ष्ण नयनों से निहार कर उसने कहा, "हवलदार, तुम्हारा नाम रघुनाथ जी है? और तुम राजपूत हो न?"

रघुनाथ जी ने विनीत भाव से सिर झुका कर कहा—"हाँ"।

क़िलेदार—तुम आकृति और आयु में तो बालक के समान हो, किन्तु कार्य्यक्षेत्र में तो बड़े दक्ष प्रतीत होते हो।

रघुनाथ जी—यत्न और चेष्टामात्र तो मनुष्य के अधीन है परन्तु उसका प्रतिफल जय या पराजय तो दुर्गा के आधीन है।

क़िलेदार—तुम सिंहगढ़ से यहाँ (तोरण दुर्ग में) इतने शीघ्र कैसे पहुँच गये ?

रघुनाथ जी—"प्रभु के समक्ष मैंने ऐसी ही प्रतिज्ञा की थी।" क़िलेदार इस उत्तर को सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि तुम्हारा यह कहना सत्य है। तुम्हारे आकार से ही ज्ञात है कि तुम दृढ़ हो। फिर क़िलेदार ने सिंहगढ़ और पूना की समस्त अवस्था और महाराष्ट्रों तथा मुग़ल सैन्य का विवरण एक एक करके पूछा। रघुनाथ जी जहाँ तक जानते थे उत्तर देते गये।

क़िलेदार ने फिर कहा—"कल प्रातःकाल ही मेरे पास आ जाना, मैं पत्रादि लिख रक्खूँगा और शिवाजी से मेरा नाम लेकर कहना कि आपने जिस तरुण हवलदार को इस कठिन कार्य्य में नियत किया है वह हवलदारी के काम में बड़ा दक्ष है।" इन प्रशंसा के वाक्यों को सुनकर रघुनाथजी ने मस्तक नवा कृतज्ञता को स्वीकार किया।

रघुनाथजी विदा होकर चले गये। क़िलेदार की इस प्रकार से परीक्षा करने का तात्पर्य्य यह था कि वह महाराज शिवाजी को अति गूढ़ राजकीय संवाद और कुछ गुप्त मंत्रणा भेजने वाला था, जिसका कि पत्रद्वारा प्रकाश करना नीतिविरुद्ध था। यही कारण है कि उसने रघुनाथ जी को इस क़दर ठोक बजा लिया कि कहीं वह धन-बल अथवा छल-कपट के वश होकर

शत्रु के हाथ में न पड़ जाय। परन्तु आनन्द की बात है कि शिवाजी का दूत इन बातों में पक्का निकला। रघुनाथ के आँख ओट होते ही क़िलेदार ने हँसकर आप ही आप कहा, "महाराज शिवाजी इस विषय में असाधारण पंडित हैं। क्योंकि उन्होंने जैसा कार्य्य किया था उसी के उपयुक्त मनुष्य भेजा।"

तीसरा परिच्छेद

सरयूबाला

किलेदार से विदा लेकर रघुनाथ भवानी देवी के मन्दिर की ओर चले। शिवाजी ने जब इस दुर्ग को जय किया था तब उसके थोड़े ही दिनों बाद उसमें एक देवी की प्रतिमा स्थापित कर दी थी और अम्बर देश के एक कुलीन ब्राह्मण को बुलाकर देवी-सेवा के लिए नियुक्त कर दिया था। यही कारण है कि युद्ध के दिनों में बिना देवी की पूजा दिये हुए शिवाजी कोई कार्य्य आरम्भ नहीं करते थे।

रघुनाथ जवानी की उमंगों से परिपूर्ण हो, आनन्द के साथ अपने कृष्णकेशों को सुधारते हुए आ रहा था और साथ ही युद्ध का एक भावपूर्ण गीत भी गाता जाता था। ज्यों ही वह मंदिर के पास पहुँचा कि अचानक उसकी दृष्टि मन्दिर की निकटवर्ती छत पर पड़ गई। सूर्य्य भगवान अस्ताचल पार कर चुके थे परन्तु पश्चिम दिशा के आकाशमण्डल में अभी आपकी आभा झिलमिला रही थी। पक्षीगण अपने बसेरे ढूँढ रहे थे। रघुनाथ भी आज बहुत ही थक गया था इसीलिए वह उस छत की ओर देखता हुआ पास के एक चबूतरे पर बैठ गया।

ज़रा और अँधेरा हो जाने पर उस उद्यान में पुष्पविनिन्दित एक बालिका आकर खड़ी हो गई। रघुनाथ उसको देख विस्मित

हो गया। यहाँ तो और कोई नहीं है। हो न हो यह बालिका इन्द्रलोक से आगई है। परन्तु यह राजपूत-कन्या मालूम होती है। बहुत दिनों के बाद स्वदेशीया रमणी को देखकर रघुनाथ का हृदय बल्लियों उछलने लगा। इच्छा तो हुई कि पास से जाकर राजकन्या का परिचय लें किन्तु रघुनाथ ने अपनी इस लालसा का दमन कर डाला और चुपचाप एकटक लगाकर उसी चबूतरे पर बैठ गया। ज्यों ज्यों उस रमणी की ओर अधिक निगाह जमती गई त्यों त्यों रघुनाथ का हृदय और भी आकृष्ट होने लगा।

बालिका अनुमान से त्रयोदशवर्षीया मालूम होती है। उसके अतिकृष्ण केशपाश रेशम को भी लजाते हुए गर्दन से नीचे कमर तक लटके हुए हैं। उसने अपने उज्ज्वल मुखमंडल तथा भ्रमरविनिन्दित दोनों नेत्रों को कुछ कुछ ढक लिया है। भ्रयुगल ऐसा मालूम होता है कि मानों ब्रह्मा ने अपनी लेखनी हीं से बनाया है कि जिससे ललाट की शोभा द्विगुण हो गई है। दोनों अधर पतले और रक्तवर्ण हैं। दोनों हाथ और बाँहें सुगोल और अतिशय गौर हैं, मानो सुवर्ण के खडुवें और कङ्कण अपनी शोभा बढ़ाने के लिए उसमें आप लिपटे हुए हैं। कण्ठ और कुछेक ऊँचे वक्षस्थल पर एक हार बहार ले रहा है। कन्या के ललाट में आकाश की रक्तिमाच्छटा गिर कर उस तपे हुए सोने के वर्ण को और भी उज्ज्वल करती है। यौवन के प्रारम्भ में प्रथम प्रेम के असह्य वेग से रघुनाथ का शरीर कम्पित हो रहा है। जब तक देखा गया पत्थर के समान अचल होकर वे उस सुन्दर मूर्ति का निरीक्षण करते रहे। वैकालिक आकाश की शोभा क्रमशः लीन होती गई, तथापि रघुनाथ को अभी चेतनता प्राप्त नहीं हुई।

परन्तु धीरे धीरे मन्दिर के पुजरीजी से मिलने का विचार चिन्तित करने लगा और कुछ ही देर वाद वह मन्दिर में आकर पुजारी जी की अपेक्षा करने लगा। इस समय हम अपने पाठकगणों से पुजारीजी का परिचय कराना आवश्यकीय समझते हैं।

जैसा कि हम पहले ही कह आये हैं, पुजारीजी अम्वर देश के रहने वाले हैं। वे उच्चकुलोद्भव रजवाड़ी ब्राह्मण हैं। नाम उनका जनार्दनदेव है। जनार्दनदेव अम्वर देश के राजा जयसिंह के एक माननीय सभासद थे। शिवाजी के वड़े आग्रह से राजा जयसिंह ने उन्हें अपनी अनुमति से शिवाजी के सर्व-प्रथम विजित तोरन दुर्ग में जाने दिया था, परन्तु स्वदेश त्यागने के पहले ही जनार्दनदेव ने एक क्षत्रिय-कन्या के लालन पालन का भार अपने सिर पर ले लिया था। कन्या का पिता जनार्दनदेव का वचपन का मित्र था, और उसकी माता भी जनार्दन की स्त्री को वहन कहकर सम्वोधन किया करती थी। वहुत दिनों से जनार्दनदेव के निःसन्तान होने के कारण उनकी स्त्री ने वालिका को निज सन्तान की भाँति उसके लालन-पालन का भार अपने सिर ले लिया था और यही कारण है कि अम्वर के त्यागने पर भी वालिका अभी साथ ही है।

कुछ दिनों के वाद जनार्दनदेव की स्त्री का स्वर्गवास हो गया। अव उनके सरयूवाला के अतिरिक्त और कोई दूसरा आत्मीय नहीं था। सरयूवाला भी जनार्दनदेव के प्रति वड़ा प्रेम रखती थी और उनको पिता से भी अधिक समझती थी। ज्यों ज्यों आयु अधिक होती गई सरयूवाला रूप-लावण्य में विशेष उन्नति करती गई। दुर्ग के सभी शास्त्रज्ञ ब्राह्मण जनार्दनदेव को कण्वमुनि और लावण्यमयी क्षत्रिय-वालिका को शकुन्तलता

कहकर मज़ाक़ उड़ाया करते थे। जनार्दनदेव भी कन्या के सौन्दर्य्य और स्नेह पर परिपुष्ट होकर राजस्थान के निर्वासन का दुःख भूल गये थे।

देवालय में पहुँचने पर रघुनाथ को कुछ देर अपेक्षा करनी पड़ी, परन्तु थोड़ी ही देर के वाद जनार्दनदेव भी मन्दिर में पहुँच गये, जनार्दनदेव का वयस ५०वर्ष का होगया है,परन्तु अवयव दीर्घ और अभी भले प्रकार वलिष्ट हैं। दोनों आँखें शान्तिरस से परिपूर्ण हैं, वक्षस्थल विशाल है। वाहु दोनों लम्बे तथा, वलिष्ट, और रंग के गौर वर्ण हैं, स्कन्ध पर जनेऊ पड़ा है। जनार्दनदेव का मुख-मण्डल देखते ही विश्वास हो जाता था कि मानो पूजा के साक्षात् अवतार हैं। रघुनाथ उनको देखते ही आसन को छोड़ कर अलग खड़ा होगया। प्रणाम-आशीर्वाद में पश्चात् दोनों जने आसन पर वैठ गये। रघुनाथजी ने मीठी भाषा से शिवाजी की वन्दना देवी के प्रति कह सुनाई और कई एक अशरफ़ियाँ जनार्दनदेव को भेंट दी। तत्पश्चात् जानर्दनदेव ने शिवाजी का कुशल क्षेम पूछा और जहाँ तक ज्ञात था रघुनाथ ने सव वातों को समझा दिया, और अन्त में कहा कि भगवन्! इस समय महाराज शिवाजी मुग़लों से लड़ रहे हैं, आप भी उनकी जय के लिए प्रार्थना कीजिए, क्योंकि देवी की कृपा के विना मानुषी चेष्टा वृथा है।

जनार्दनदेव गम्भीरस्वर से उत्तर देने लगे, "सनातन हिन्दू-धर्मकी रक्षा के अर्थ इस प्रकार के मनुष्यों को सदा ही यत्न करना उचित है। मैं शिवाजी के विजय के लिए अवश्य पूजा करूँगा। आप महाराज से कह दीजिएगा कि इस विषय में कोई त्रुटि न होगी।"

रघुनाथ—"प्रभु ने देवी के चरणों में एक और निवेदन किया है, कि "हम वीरतर युद्ध में सम्मिलित होने का फलाफल प्रथम ही जनना चाहते हैं।" आपके समान दूरदर्शी दैवज्ञ इस विषय में अवश्य ही उनकी मनोकामना पूरी कर सकते हैं।"

जनार्दनदेव ने क्षण भरके लिए नेत्र बंद करलिये, फिर गम्भीर स्वर से बोले—"रात के समय भवानी के चरणों में महाराज की प्रार्थना का निवेदन करूँगा और कल उसका उत्तर दूँगा।"

रघुनाथ धन्यवाद देकर विदा ही होना चाहते थे कि इतने में जनार्दनदेव बोले—"तुम्हें इससे पहले इस दुर्ग में कभी नहीं देखा, क्या आज पहली ही बार आपका आगमन यहाँ हुआ है?"

रघुनाथ—"हाँ, आजही आया हूँ।"

जनार्दनदेव—दुर्ग में किसी से जान पहचान है? ठहरने का प्रबन्ध हो सकता है?

रघुनाथ—पहिचान तो नहीं है, परन्तु किसी प्रकार रात काट लूँगा क्योंकि तड़के ही तो चला जाना है।

जनार्दनदेव—क्यों मुफ़्त में क्लेश उठाओगे?

रघुनाथ—महाराज की कृपा से कोई क्लेश नहीं होगा। हमें तो सदा ही इसी प्रकार रात काटनी पड़ती है।

जनार्दनदेव—वत्स! युद्ध के समय का क्लेश तो अनिवार्य्य है, किन्तु अब क्लेश सहन करने की कोई आवश्यकता नहीं। हमारे इसी देवालय में ठहर जाइए। मेरी पालन की हुई राजपूतबाला तुम्हारे खाने पीने का प्रबन्ध कर देगी। फिर रजनी में विश्राम

पाकर कल देवी की आज्ञा महाराज शिवाजी के निकट ले जाना ।

रघुनाथ की छाती सहसा धड़कने लगी । उनके हृदय में एकबारगी किसी ने आघात किया । यह पीड़ा है ! नहीं, आनन्द का उद्वेग ! यह राजबाला कौन ! यह क्या वही पुष्पोद्यान की देखी हुई लावण्यमयी राजपूतबाला है ?

चौथा परिच्छेद

कण्ठमाला

पिता के आदेशानुसार प्रायः एक पहर भी रात नहीं जाने पाई थी कि सरयूबाला ने अतिथि सत्कार के लिए भोजन का पूरा प्रबन्ध कर लिया। रघुनाथ आसन पर बैठ गये। सरयूबाला पीछे खड़ी रहीं। महाराष्ट्र देश में अब तक यह प्रथा चली आती है कि जब किसी के घर कोई अतिथि आजाता है तब उसको भोजन-परिवार की कोई रमणी ही कराती है।

रघुनाथ भोजन करने को तो बैठ गये, परन्तु उनका चित्त स्थिर नहीं रहा, आँखें भी डावाँडोल होने लगीं। सरयूबाला बड़ी अनुग्रह से भोजन के पदार्थों को रखती गई, परन्तु रघुनाथ को यह सुध बुध नहीं थी कि क्या मैं खा रहा हूँ। जनार्दनदेव भी बड़े चाव से राजपुताने का इतिहास सुनाने लगे, परन्तु रघुनाथ कभी उत्तर में "हाँ" कह दिया करते और कभी यह कहना भी भूल जाते।

आहार करना बन्द किया। सरयू ने एक सुफ़ेद पत्थर के गिलास में शरबत भर कर रघुनाथ को दिया। रघुनाथ ने पत्र-धारिणी की ओर उत्कण्ठित चित्त से देखा, मानो उनका जीवन प्राण दृष्टि में खुलकर उस कन्या की ओर चलने लगा। चारों आँखों के मिलते ही सरयू का मुखमण्डल लाज से रक्तवर्ण हो

गया । लज्जावती आँख मूँद मुख नीचे करके धीरे धीरे चली गई । रघुनाथ भी लज्जित होकर मौन रह गया । परन्तु थोड़ी देर के बाद वह हाथ मुँह धोने के लिए पानी लेकर फिर आगई । रघुनाथ निर्लज्ज नहीं है उसने अपने सिर को नीचा कर लिया है । वह केवल सरयू के सुगोल हाथों में सुवर्ण के पड़े हुए खड्डुओं को देख सका और एक दीर्घश्वास त्याग करके रह गया ।

रघुनाथ के लिए चारपाई बिछाई गई, परन्तु उस पर वह सो न सका, वरन् घरके द्वार को धीरे धीरे खोल पास के बागीचे में चला गया, और इधर उधर घूम घामकर तारे गिनने लगा ।

उस गम्भीर अन्धकार में तारागण-विभूषित आकाश की ओर स्थिर दृष्टि करके वह अल्पवयस्क योद्धा क्या सोच रहा है ? निशा की छाया धीरे धीरे गम्भीर और प्रगाढ़ होती जाती है । उस समय मनुष्य, जीवजन्तु, सारा संसार शयन कर रहा है । क़िले में भी सन्नाटा छाया हुआ है, हाँ कभी कभी चौकी-दारों का शब्द "जागते रहो—जागते" सुनाई पड़ जाता है और पहर पहर के बाद घंटों की घन्नाहट उस निस्तब्ध दुर्ग और चारों ओर के पर्वतों में प्रतिध्वनित होती है । इस अन्धकार से परिपूर्ण रजनी में रघुनाथ भला क्या चिन्ता करता है ? इस उद्यान के बीच में किसी के चलने की आहट मालूम होती है परन्तु वह कौन है ? रघुनाथ इसे नहीं जानते । अब तक रघुनाथ बालक थे अतएव उनके शान्त और शुद्ध हृदय पर प्रेम का यह पहला ही आघात है । इसीलिए मानो उनके नील जीवन आकाश में विद्युत्‌रूपी एक शुभ्रप्रतिमूर्त्ति स्थापित हो गई ।

सैकड़ों, हज़ारों बार वही आनन्दमयी मूर्त्ति मनमें फिरने लगी। वह चित्रलिखित भ्रूयुगल, वह कृष्ण उज्ज्वल नेत्र, पुष्पविनिन्दित मधुमय दोनों अधर, निविड़ केशपाश, सुगोल बाहु, वही स्नेहपूर्ण विशाल नयन, और वही चिरस्थायी अतुल लावण्य! रघुनाथ! क्या, यह सुन्दरी तुम्हारी हो सकती है? तुम तो एक साधारण हवलदार हो। जनार्दनदेव बड़ा कुलीन राज्यपूज्य ब्राह्मण है। उसकी पालित कन्या को राजा लोग भी चाहते हैं, क्यों इस प्रकार की मृगाशा से वृथा हृदय को जलाते हो? रघुनाथ हम फिर कहते हैं, क्यों वृथा जले जा रहे हो?

किन्तु जवानी के दिनों में आशा ही बलवती होती है। हमें शीघ्र नैराश्य नहीं होना चाहिए। हम असाध्य को साध्य, और असम्भव को सम्भव समझते हैं। रघुनाथ आकाश की ओर देख देख कर क्या विचार रहे हैं? हठात् खड़े होकर अपने हाथों को हृदय पर रख गर्वसहित दिल में सोचने लगे—"भगवन्! आपकी सहायता से मैं अवश्यमेव कृतकार्य्य हूँगा। यश, मान, ख्याति सभी कुछ मनुष्य के वश में हैं फिर मुझे यह क्यों न प्राप्त होगी? क्या मैं औरों से कमज़ोर हूँ। क्या मेरी भुजायें निर्बल हैं? देवगण मेरी सहायता करें। मैं युद्ध में क्षात्रधर्म का भली प्रकार से निर्वाह करूँगा और अपने पिता के नाम और मान को बढ़ाऊँगा? यदि मैं अपने इस प्रण में कृतकार्य हुआ तो क्या सरयू! मैं तुम्हारे अयोग्य हूँगा। कदापि नहीं। तुम्हारे सुन्दर हाथ हमारे इस कम्पित हृदय को स्थिर करेंगे और प्यारी तुम्हें पाकर फिर और विश्वविनिन्दित दोनों होठों को:—रघुनाथ! रघुनाथ! उन्मत्त मत हो जाओ।"

रघुनाथ थोड़ी देर के बाद कुछ चित्त को स्थिर करके मन्दिर की ओर सोने को चला। सहसा देखता क्या है कि जहाँ सरयूबाला कल बैठी थी वहाँ एक मोतियों का कण्ठहार पड़ा हुआ है। उस हार में दो दो मोतियों के बाद एक एक मूँगा पिरोया हुआ है। रघुनाथ ने समझ लिया कि इसी हार को तो कल सरयूबाला अपने कण्ठ में डाले हुए थी। कदाचित् असावधानता के कारण यह यहीं छूट गया है। फिर रघुनाथ आकाश की ओर देखकर कहने लगा—"भगवन्! यह क्या मेरी आशा के पूर्ण होने का प्रथम लक्षण दिखाया? फिर इन्होंने सहस्रों बार उस माला को चूमा, फिर वस्त्रों के नीचे छाती पर पहन लिया, फिर शीघ्र ही उसी स्थान पर आशा की नींद में सो गये। दूसरे दिन रघुनाथ की आँख खुली। जनार्दनदेव के पास जाकर देवी की आज्ञा सुनी, "म्लेच्छों के साथ लड़ाई करने में जय, परन्तु स्वधर्म्मियों के युद्ध में पराजय होगी।"

दुर्ग के छोड़ने के प्रथम रघुनाथ ने एकबार फिर सरयूबाला को देखा कि वह फिर उद्यान में फूल तोड़ने आई है। धीरे धीरे रघुनाथ भी वहीं पहुँच गया। हृदय को कुछ क़ाबू में करके कम्पित स्वर से रघुनाथ ने कहा—"भद्रे! कल रात के समय यह हार मैंने इसी स्थान पर पड़ा पाया था, वही आपको देने आया हूँ सो अपरिचित की यह धृष्टता क्षमा कर देना।"

इस विनीत वचन को सुनकर सरयूबाला ने फिर कर जो देखा तो वही कमनीय उदार मुख-मण्डल, वही केशावृत उन्नत ललाट, वही उज्ज्वल दोनों नेत्र और वही तरुण

योद्धा ! रमणीय का गौर मुख-मण्डल फिर रक्तवर्ण हो आया ।

रघुनाथ फिर धीरे धीरे बोलने लगा—"यदि अनुमति हो तो इस सुन्दर हार को तुम्हें पिन्हाकर अपना जीवन सफल करूँ ।"

सरयूवाला ने लजावनी आँखों से एकवार फिर रघुनाथ को निहारा । निहारते ही विशाल आयत नयनों के प्रेममद ने रघुनाथ के हृदय को उन्मत्त कर दिया । इस प्रकार सम्मति के लक्षण को जानकर रघुनाथ ने धीरे धीरे उसी कण्ठमाला को सरयू-बाला के गले में डाल दिया, परन्तु कन्या का पवित्र शरीर स्पर्श नहीं किया ।

थोड़ी देर के बाद रघुनाथ ने धीरे में कहा—"तब अब अतिथि को विदा न कर दो !"

इसबार सरयूवाला ने लज्जा और उद्वेग को रोका और धीरे धीरे रघुनाथ की ओर देखकर फिर पृथ्वी की ओर देखने लगी, फिर हौले हौले पृथ्वी से आँख उठाकर बहुत मधुर परन्तु स्पष्ट स्वर से कहने लगी—"तुमने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है । फिर भी कभी कभी इस कोट में आते जाते रहना ?"

ओह ! प्यासे पपीहे के लिए प्रथम वृष्टि की बूँद की तरह, और रात भर मार्ग भूले हुए थके पथिक के लिए उषा की प्रथम ललाई की भाँति, सरयूवाला के मुख से निकले हुए प्रथम प्रथम के मधुर शब्दों ने, रघुनाथ के हृदय सागर को तरंगों से लहरा दिया, उन्होंने उत्तर दिया—"भद्रे ! मैं दूसरे का नौकर हूँ । युद्ध करना मेरा काम है । मैं नहीं कह

सकता कि आ सकता हूँ कि नहीं; परन्तु जब तक जीवित रहूँगा आपकी देवनिन्दित मूर्त्ति मुहूर्त्त भर के लिए भी हृदय-मन्दिर से अलग न होगी ।"

सरयूबाला कुछ उत्तर न दे सकी । रघुनाथ ने देखा कि उसके दोनों आयत नैनों में प्रेम का जल उमड़ आया है । आप भी अपने आँखों से मोतियों का झड़ना न रोक सके ।

—o—

पाचवाँ परिच्छेद

शाइस्ताखाँ

यद्यपि कई वर्षों से महाराज शिवाजी की क्षमता, राज्य एवं दुर्गों की संख्या दिन दिन बढ़ती जाती थी तथापि सन् १६६२ ई० के पहले दिल्ली के बादशाहों के मनमें शिवाजी को वश में करलेने की कोई विशेष चिन्ता नहीं थी। परन्तु इसी वर्ष शाइस्ता ख़ाँ दिल्ली के बादशाह से अमीरुलुमरा का ख़िताब लेकर एक-बारगी शिवाजी को परास्त करने के लिए नियुक्त हुआ। शाइस्ताख़ाँ ने उसी साल ही पूना, चाकनदुर्ग और अन्य कई स्थानों को अपने अधिकार में कर लिया। दूसरे साल अर्थात् सन् १६६३ ई० में शाइस्ताख़ाँ ने शिवाजी को परास्त करने का पूरा पूरा बन्दोबस्त कर लिया और दिल्ली के बादशाह के आज्ञानुसार माड़वाड़ के प्रसिद्ध राजा यशवन्तसिंह भी अपने दलबल सहित शाइस्ताख़ाँ की मदद को आगये। महा-राज शिवाजी को चतुर्दिक् से मुसीबतों का सामना था। मुग़ल और राजपूत सैन्य ने पूना के निकट डेरे डाले थे और शाइस्ताख़ाँ ख़ुद उस घर में रहता था कि जो दादाजी कन्हैदेव के नाम से प्रसिद्ध था और जिसमें कि शिवाजी लड़कपन में रहते और खेला करते थे। शाइस्ताख़ाँ शिवाजी की चतुरता को भले प्रकार से जानता था। इसलिए उसने प्रबन्ध कर लिया था कि विना परवाने के कोई महाराष्ट्र-देशीय पूना में न आने

पावे। पास ही के सिंहगढ़ नामक दुर्ग में शिवाजी भी अपने सैन्य के साथ रहते थे। उस समय तक मरहठे युद्ध करने में चतुर नहीं हुए थे;फिर दिल्ली की पुरानी सेना के सङ्ग सम्मुख युद्ध करना किसी प्रकार सम्भव नहीं था। इसलिए शिवाजी ने एक चतुरता के सिवाय स्वाधीन-रक्षा और हिन्दूराज्य के विस्तार करने का दूसरा कोई उपाय नहीं देखा।

चैत्र महीने के अन्त में एक दिन सन्ध्या के समय शाइस्ताख़ाँ ने अपने इष्टमित्रों और मंत्रियों को बुला भेजा। सब इकट्ठे होकर दादाजी कन्हाइ के मन्दिर में सभा कर रहे हैं और उसमें इस बात पर विचार हो रहा है कि शिवाजी को किस हिकमत से पराजय करना चाहिए? चारों ओर उज्ज्वल दीपावली जल रही है। जंगले के भीतर से वाटिका की सुगन्ध में सना हुआ मन्द-मन्द वायु चल रहा है। सब लोग पुलकित हो रहे हैं। आकाश में अन्धकार छा रही है किन्तु वहाँ भी दो एक तारे जल रहे हैं।

अनवरी नामक शाइस्ताख़ाँ के एक ख़ुशामदी ने कहा—"जहाँपनाह! वल्ला मैं रास्त कहता हूँ कि दिल्ली की फ़ौज के सामने मरहठों की क्या हक़ीक़त है। भला तूफ़ान के मुक़ाबिल तिनके की क्या बिसात है? वह तो फ़ौरन परागन्दा हो जायँगे, इन्शाँअल्लाताला—मरहठे तो पैवन्दे ज़मीन हो जायँगे।"

चाँदख़ाँ नामक एक पुराना बहादुर सिपाही भी इन बातों को सुन रहा था। उसके जीवन का अधिकांश महाराष्ट्रों के सम्मुख लड़ाई करने में व्यतीत हुआ है। उसे महाराष्ट्रों के बल-विक्रम का भले प्रकार अनुभव प्राप्त है। उसने धीरे से

कहा—"मैं ख़ूब जानता हूँ, उनमें ज़ोर और हिक़मत के अलावा अक़लमन्दी भी है।"

शाइस्ताख़ाँ—किस में?

चाँदख़ाँ—जहाँपनाह! मरहठों में। हजूर को ख़ूब याद होगा कि गुज़श्ता साल जब कुछ कोहस्तानी मरहठे चाकन के क़िले में घुस गये थे, तब हमारी फ़ौज को कैसी मुसीबतों के साथ उनको बाहर करना पड़ा था। एक ही क़िले के फ़तह करने में हज़ारों मुग़ल शहीद हुए। इससाल जब कि हर चहार तरफ़ हमारी फ़ौज का जाल बिछा हुआ है, मगर फिर भी मरहठों ने निताईजी, अहमदनगर और औरङ्गाबाद को बराबर बरबाद कर डाला तो क्या उन्हें हम तिनके से मुशाबेहत दे सकते हैं?"

शाइस्ताख़ाँ—चाँदख़ाँ ज़ईफ़ हो गये हैं, बस यही सबब है कि वह पहाड़ी चूहों से इस क़दर ख़ौफ़ खाते हैं! वरना पहले तो ऐसी दहशत नहीं थी?

चाँदख़ाँ का मुख-मण्डल आरक्त हो गया, परन्तु उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

महाराष्ट्रों के विषय में अनेक प्रकार का रहस्य हुआ; फिर किस प्रकार से युद्ध करना चाहिए—यही विषय स्थिर होने लगा। शाइस्ताख़ाँ ने चाकनदुर्ग के हस्तगत करते समय यह निश्चय कर लिया था कि बस और क़िलों का फ़तह करना बहुत ही कठिन है। यहाँ तो पहाड़ी पहाड़ी पर क़िले हैं, भला इनको कब तक फ़तह करते रहेंगे? इस प्रकार नहीं मालूम कितना समय लगेगा और बादशाह के हुक्म की तामील भी महाल

है। इसका क्या क़याम? मुमकिन है कि क़िले धीरे धीरे हाथ आते रहें, ख़्वाह न भी आ सकें।"

चाँदख़ाँ—जहाँपनाह! दुर्गही महाराष्ट्रोंकी शक्ति है। लड़ाई करना अथवा उनको लड़ाई में हरा देना महाराष्ट्रों के निकट कोई हानि नहीं है, क्योंकि यह देश पहाड़ी है। वह सब स्थानों से भले प्रकार विज्ञ हैं, एक जगह हार खाकर भाग जायँगे, दूसरी जगह पर इकट्ठा होकर फिर उपद्रव करने लगेंगे। क्या इसकी ख़बर हमें मिल सकती है? परन्तु एक एक करके क़िला अपने क़ब्ज़े में करने से लाचार होकर उन्हें हार माननी पड़ेगी और वह दिल्ली की अधीनता स्वीकार करेंगे।

शाइस्ताख़ाँ—क्या मरहठों के लड़ाई से भाग जाने पर हम उनका पीछा नहीं कर सकते? क्या हमारे पास सवार नहीं हैं कि जो धावा करके उनको ख़ाक में मिला दें?

चाँदख़ाँ ने फिर निवेदन किया, जहाँपनाह! अगर फ़र्ज़ कर लिया जाय कि मुग़लों को फ़तह नसीब हो जाय तो ज़रूर हम मरहठों को धावा करके पकड़ लेंगे और उन्हें क़तल भी करेंगे। मगर इन पहाड़ी मरहठे सवारों को ख़देड़ कर पकड़नेवाले सवार हमारे हिन्दुस्तान में तो नहीं हैं। यह हम मानते हैं कि हमारे घोड़े बहुत बड़े बड़े हैं। सवार भी मुसल्लह और बड़े जवाँमर्द हैं और उनकी तेज़ी को महाराष्ट्रगण बर्दाश्त नहीं कर सकते; मगर, पीरमुर्शिद! यह पहाड़ी ज़मीन हमारे सवारों के रास्ते में रोड़े अटकाती है। यहाँ के छोटे छोटे घोड़ों के सवार मेढ़ों की तरह उछलते और हिरनों की मुआफ़िक़ छलाँगें भरते हैं। दम के दम में नौ दो ग्यारह हो जाते हैं। जहाँपनाह! मेरी बात मानिए, शिवाजी सिंहगढ़ में हैं, एकबारगी

वहाँ की चढ़ाई कर दीजिए, एक महीने ख़ाह दो महीने में क़िला फ़तह हो जायगा, और शिवाजी क़ैद में आजायगा। फिर दिल्ली के बादशाह की विजय होगी। नहीं तो उनकी इन्तज़ारी करने से क्या होगा? बिलफ़र्ज़ अगर उनका तअक्कुब भी किया गया, तो इससे कौन सा मक़सद हल होगा? खयाल फ़रमाइए, निताईजी को तो शुरू ही में हम लोगों को दे दिया, लेकिन अहमदनगर, औरङ्गाबाद की उसने किस तरह बिदअत की, रुस्तमे ज़मान ने भी उसका तअक्कुब करके क्या कर लिया?

शाइस्ताख़ाँ क्रोधित होकर बोला—"रुस्तमे ज़मान ने बग़ावत की है। उसने दीदा-दानिस्ता निताईजी से भागने दिया है। मैं उसको मुनासिब सज़ा दूँगा। चाँदख़ाँ! तुम भी मक़ाबिल की लड़ाई के ख़िलाफ़ हो? क्या दिल्ली के बादशाह की फ़ौज में कोई जवाँमर्द सिपाही नहीं है?

प्राचीन योद्धा चाँदख़ाँ का मुख-मण्डल और भी आरक्तवर्ण हो गया। पीछे की ओर मुख फेरकर एक दो बूँद जो आँसू आँखों में आ गया था पोंछ डाला। फिर सेनापति की ओर दृष्टि करके कहने लगा—"मुझ में सलाह मशविरा देने की तमीज़ नहीं हुज़ूर लड़ाई की तदबीर सोचें फिर जैसी इजाज़त होगी, बन्दा तामील में दरेग़ न करेगा।

इसी समय एक प्रतिहारी ने आकर समाचार दिया कि, सिंहगढ़ का दूत महादेवजी न्यायशास्त्री नामक ब्राह्मण आया है और वह नीचे खड़ा है। शाइस्ताख़ाँ उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। इसी कारण उसे सभा में लाने की आज्ञा दी। समस्त सभासद्‌गण इस दूत के देखने को उत्कण्ठित हो गये।

क्षणभर के उपरान्त ही महादेवजी न्यायशास्त्री सभा में आ पहुँचे। शास्त्री जी की अवस्था अभी ४० वर्ष से अधिक नहीं है। आकार महाराष्ट्रों की भाँति कुछ नाटा और रङ्ग साँवला है। ब्राह्मण का मुखमण्डल सुन्दर है, वक्षःस्थलविशाल, वाहु-युगल, दीर्घ नयन, गम्भीर विचारशक्ति है। शिर में चन्दन का तिलक है। कन्धे में जनेऊ पड़ा है, शरीर मोटी अमेद कुरती से ढका हुआ होने से गठन स्पष्ट नहीं देखी जाती। शाइस्ताख़ाँ ने आदरपूर्वक इस आये हुए दूत को बैठाया।

शाइस्ताख़ाँ ने पूछा—"सिंहगढ़ की क्या हालत है?"

महादेवजी ने एक श्लोक पढ़कर उसका उत्तर दियाः—

"सन्ति नद्यो दण्डकेषु तथा पञ्चवटीवने।
सरयूविच्छेदजं शोकं राघवस्तु कथं सहेत्॥

अर्थात् दण्डकराज्य और पञ्चवटीवन में शत शत नदियाँ हैं, किन्तु उन्हें देखकर क्या रघुनाथ को सरयू नदी के विच्छेद का दुख भूल सकता है? सिंहगढ़ इत्यादि सैकड़ों दुर्ग अब भी शिवाजी के आधीन हैं किन्तु पूना आपके हाथ में है क्या इस सन्ताप को वे भूल सकते हैं?

शाइस्ताख़ाँ परितुष्ट होकर बोला—"हाँ, तुम अपने स्वामी से कह देना कि जब प्रधान क़िला हमारे क़ाबू में है तो लड़ना बेफ़ायदा है। मगर बादशाह की इताअत क़बूल कर लेने से अब भी उम्मीद है।"

ब्राह्मण ने कुछ हँस कर फिर एक श्लोक का पाठ किया,

"न शक्तोहि स्वाभिलाषं गिरा वक्तुञ्च चातकः।
ज्ञाता दयालुर्मेघस्तु संतोषयाति याचकम्॥"

अर्थात् "चातक वचनों द्वारा अपनी अभिलाषा मेघों को नहीं ज्ञात करा सकता, परन्तु मेघ अपनी दया ही के वश हो वह अभिलाषा पूर्ण करते हैं। याचकों को देने के लिए बड़ों की यही रीति है। महाराज शिवाजी पूना और चाकन के दुर्गों के निकल जाने से सन्धि करते हुए भी लजाते हैं, परन्तु आप जैसे सज्जन के अनुग्रह से जो कुछ दान हो जायगा वही शिवाजी को शिरोधार्य है।"

अब शाइस्ताख़ाँ अपने आनन्द को नहीं रोक सका। बोला, "पण्डितजी! तुम्हारी पण्डिताई से मैं अज़हद .खुश हुआ हूँ, तुम्हारी यह संस्कृत ज़बान बड़ी मीठी और मतलब ख़ेज़ होती है, क्या वाक़ई शिवाजी सुलह करना चाहता है?

महादेव जी ने कहाः—

"केशरिणः प्रतापेन भयसंदग्धचेतसः।
त्राहि देव! त्राहि राजन्! इति श्रृण्वन्ति भूचराः॥

अर्थात् दिल्लीश्वर के सैन्य के दौर्दण्ड प्रताप से भयभीत होकर केवल त्राहि त्राहि के शब्द हमलोग उच्चारण करते हैं।

अब की बार तो शाइस्ताख़ाँ मारे आनन्द के आपे से बाहर हो गया और ब्राह्मण से कहने लगा—"पण्डितजी! आपके शासतर्र से तो मैं बड़ा .खुश हुआ, अगर आप सुलह ही का पयाम लेकर आये हैं तो वाक़ई में शिवाजी ने आपको इस जगह के लायक़ बहुत अच्छा इन्तिख़ाब किया"। मगर इसका सबूत क्या है?

ब्राह्मण ने गम्भीर भाव धारण कर वस्त्र के भीतर से एक निदर्शनपत्र निकाला। बहुत देर तक शाइस्ताख़ाँ उसको देखकर बोला

"हाँ, मैंने इस परवाने को देख लिया, और वाक़ई मुझे बड़ी ख़ुशी हुई। मगर क्या क्या अहदो पैमान करने की ज़रूरत है?

महादेव—"हमारे प्रभु ने कहा है कि जब पहले ही आप लोगों की जीत हुई है तो अब युद्ध करना वृथा है।"

शाइस्ताख़ाँ—बेहतर, ख़ूब।

महादेव—"अब महाराज सन्धि करना चाहते हैं परन्तु यह जानना चाहते हैं कि क्या दिल्लीश्वर भी सन्धि के इच्छुक हैं! यदि हैं, तो किन नियमों का पालन शिवाजी से कराना चाहते हैं?"

शाइस्ताख़ाँ—"अव्वल बादशाह की मातहती। क्या इसके लिए तुम्हारे महाराज तैयार हैं?

महादेव—"उनकी सम्मति वा असम्मति जताने का मुझ को अधिकार नहीं है। आप जो जो मुझसे कहेंगे मैं उन बातों को शिवाजी से निवेदन कर दूँगा।"

शाइस्ताख़ाँ—ख़ैर, अव्वल शर्त तो मैंने कह ही की कि दिल्ली के बादशाह की इताअत करनी पड़ेगी। दोयम यह कि, जिन जिन क़िलों को बादशाह की फ़ौज ने फ़तह किया है वह बादशाही के क़ब्ज़े में रहें। सोयम यह कि, सिंहगढ़ वग़ैरह और दूसरे क़िले भी छोड़ देने पड़ेंगे।"

महादेवजी—"वह कौन कौन?"

शाइस्ताख़ाँ—"वह दो एक दिन बाद ख़त के ज़रिये मालूम हो जायगा। चहारम यह कि और दीगर क़िले जो शिवाजी अपने क़ब्ज़े में रक्खेंगे वे बतौर जागीर के होंगे और उनपर

ख़िराज देना होगा। यही सब बातें तुम अपने महाराज से जाकर कहो और रज़ामन्दी व नारज़ामन्दी से हमें बहुत जल्द इत्तला करो।"

महादेवजी—"जो आपकी आज्ञा है वही मैं करूँगा, परन्तु जब तक सन्धि के प्रस्ताव स्थापन और निश्चित न हो जायँ तब तक लड़ाई बन्द रहे?"

शाइस्ताख़ाँ—हरगिज़ नहीं, दग़ाबाज़ और फ़रेबी मरहठों का मैं कभी यक़ीन नहीं कर सकता, ऐसी कोई दग़ाबाज़ी नहीं जिसे मरहटे न कर सकें। जब तक अच्छी तरह सुलह मज़बूत न हो जायगी, यह ना मुमकिन है कि लड़ाई बन्द कर दी जाय, और तुम्हें हम नुक़सान न पहुँचावें।

"एवमस्तु" कह कर ब्राह्मण ने विदा माँगी। परन्तु उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। वह धीरे धीरे दरबार से बाहर हुआ। प्रत्येक द्वार, घर, भली प्रकार से देखता हुआ चला।

एक मुग़ल पहरेदार ने कुछ विस्मित होकर पूछा—"जनाब आप देखते क्या हैं?"

दूत ने उत्तर दिया—"शिवाजी जब बालक थे, यहाँ खेला करते थे। वही मुझे स्मरण हो आया है। परन्तु वही अब तुम्हारे अधीन है और ऐसा मालूम होता है कि इसी तरह एक एक करके सभी दुर्ग तुम्हारे हस्तगत होते जायँगे। हा, भगवन्!"

पहरेदार ने हँसकर कहा—"ठीक है, मुफ़्त में रञ्ज मत करो। अपने काम पर जावो। ब्राह्मण शीघ्र ही मनुष्यों की भीड़ से होता हुआ पूना के बाज़ार के मनुष्यों में मिल गया।"

छठाँ परिच्छेद

शुभकार्य्य का पुरोहित

आ

ब्राह्मण ने एक एक करके पूना के वहुत से रास्ते देख लिये। जिन स्थानों से वह होकर जाता था उसको भली प्रकार समझ लेता था। सौदा ख़रीदने के वहाने वहुत सी वातें दूकानदारों से जान ली। फिर वाज़ार से वाहर होकर चौड़ी सड़कों से आगे वढ़ने लगा। रात होने के कारण यहाँ लोग अपने अपने दरवाज़े वन्द करके घरमें सो रहे थे परन्तु दीपक जल रहे थे।

ब्राह्मण एकायकी वहुत दूर आगे वढ़ गया। आकाश अन्धकार मय था। केवल दो,एक तारे दिखाई देते थे। नगरनिवासी सव सो रहे थे और जगत् सुनसान प्रतीत होता था। यहाँ ब्राह्मण को किसी के पग की आहट मालूम हुई और तुरन्त ही वह खड़ा हो गया, परन्तु अव वह आहट थम गई।

ब्राह्मण फिर चलने लगा, परन्तु फिर मालूम हुआ कि, पीछे कोई आता है। अवकी वार ब्राह्मण का हृदय चञ्चल हो उठा और वह सोचने लगा कि "भगवन्! रात्रि के समय में कौन मेरे पीछे लगा हुआ है? न जाने मित्र है अथवा शत्रु? क्या शत्रु ने मुझे जान लिया?" इस प्रकार की उधेड़वुन में कुछ देर तक वह खड़ा हुआ सोच रहा था, परन्तु निश्चय करके कि

"यदि शत्रु है तो अभी इसका काम तमाम करता हूँ" और आस्तीन से एक तेज़ छुरा निकाल कर रास्ते के बगल में खड़ा हो गया। बहुत देर दम रोके हुए हो गया, परन्तु शब्द मात्र भी नहीं सुनाई पड़ता है, चारों ओर मार्ग, बाट, कुटी, अट्टालिका किसी से कोई शब्द नहीं आता है, आकाश अभेद अन्धकार से जगत् को आच्छादित किये हुए है। सहसा एक चिल्लाने का शब्द सुनाई दिया, ब्राह्मण का हृदय काँप उठा और वह चुपचाप खड़ा हो गया।

क्षणभर पर फिर वही चिल्लाहट सुन पड़ी। परन्तु अब महादेवजी की शङ्का दूर हो गई क्योंकि यह चौकीदारों की आवाज़ थी। दुर्भाग्यवश महादेवजी जिस गली में छिपे थे पहरेदार उसी गली में आ गया। वह गली बड़ी सँकरी थी। महादेवजी फिर उसी छूरी को हाथ में लेकर खड़ा हो गया।

पहरेदार धीरे धीरे इधर उधर देखते हुए उसी जगह पर आ गया जहाँ महादेवजी खड़े थे,परन्तु पहरेदार को अन्धकार के कारण कुछ दीख नहीं पड़ा और वह धीरे धीरे आगेको बढ़ता गया। महादेवजी ने भी वहाँ से खसक कर माथे के आये हुए पसीने को पोंछा, फिर पास ही के एक द्वार को खड़खड़ाया, दरवाज़े से शाइस्ताख़ाँ का एक दक्षिणी सिपाही बाहर आया। अब दोनों साथ साथ बड़े गुप्त भाव से नगर के बीच में होकर चलने लगे और थोड़ी देर बाद एक अगम्य स्थान में जा पहुँचे।

ब्राह्मण—"सब ठीक है?"

सिपाही—"हाँ, सब ठीक है ।"

ब्राह्मण—"परवाना मिल गया ?"

सिपाही—"मिल गया ।"

अब फिर ज़रा ज़रा सी पैरोंकी आहट होने लगी । इसबार महादेवजी को बड़ा क्रोध आया । दोनों आँखें लाल हो गईं, फिर उसी छुरे को निकाल कर सँभाला । बहुत देर तक प्रतीक्षा करते रहे परन्तु कुछ भी दिखाई नहीं दिया और लौटकर सिपाही से कहा—"ख़ाली हाथ तो नहीं आये हो ?"

सिपाही ने छाती के नीचे से छुरी निकाल कर दिखाई । ब्राह्मण ने कहा—"ख़ैर, सावधान रहना । विवाह कब है ?"

सिपाही—"कल ।"

ब्राह्मण—"आज्ञा मिल गई है ?"

सिपाही—"हाँ" ।

ब्राह्मण—"कितने आदमियों की ?"

सिपाही —"बजावाले १०, और अस्त्रधारी ३० । बस इससे अधिक की आज्ञा नहीं है ।"

ब्राह्मण —"यही बहुत है, परन्तु समय कौन सा है ?"

सिपाही—"एक पहर रात बीते ।"

ब्राह्मण—"अच्छा, तो बरात इधर ही से नकलेगी ?"

सिपाही—"याद है ।"

ब्राह्मण—"बजानेवाले ज़ोर ज़ोर से बाजा बजाव ।"

सिपाही—"अच्छा।"

ब्राह्मण—"जहाँ तक सम्भव हो जाति-कुटुम्बियों को इकट्ठा करना।"

सिपाही—"समझ लिया है।"

तब ब्राह्मण कुछेक हँसकर बोला—"हम उसी शुभकार्य्य के पुरोहित!" उस शुभकार्य्य की घटा सारे भारतवर्ष में छा जायगी।

सहसा एक तीर तीव्र वेग से आकर ब्राह्मण की छाती में लगा। उस तीर से निश्चय ही प्राण-नाश सम्भव था, परन्तु ब्राह्मण की कुर्ती के नीचे के बख़्तर से लगकर तीर उचट गया। फिर एक बर्छे का आघात हुआ, जिसके वेग को ब्राह्मण सहन न करके भूमि पर गिर पड़ा, परन्तु वह दुर्भेद बख़्तर टूटा नहीं। किन्तु क्षणभर के बाद महादेव फिर उठबैठा। परन्तु सामने अब क्या देखता है कि, एक योद्धा मुग़लों के फ़ौज का सशस्त्र खड़ा है। ओह! यह तो चाँदख़ाँ है!

जब शाइस्ताख़ाँ ने चाँदख़ाँ को सभा के अन्दर भीरु इत्यादि वचनों से उसे रुष्ट कर दिया था तभी चाँदख़ाँ ने यह सङ्कल्प कर लिया था कि "यातो अपने भीरुपने को दिखाऊँगा नहीं तो इसी समर में लड़कर प्राण दूँगा।"

ब्राह्मण का आचरण देखकर चाँदख़ाँ को सन्देह हुआ था। वह शिवाजी को भली प्रकार से जानता था। शिवाजी की असाधारण क्षमता, बहु-संख्यक दुर्ग, अपूर्व और द्रुतगामी अश्वारोही सैन्य, उसका हिन्दूधर्म्म से प्रेम, हिन्दूराज्य के स्थापन

करने का अभिलाष, हिन्दू-स्वाधीनता-साधन में उसकी प्रतिज्ञा यह सब विषय चाँदख़ाँ से छिपा हुआ नहीं था। चाँदख़ाँ ने दिल में सोचा कि यह असम्भव है कि मुग़लों से लड़ाई शुरू होते ही शिवाजी हार मानकर सन्धि कर ले। परन्तु इस ब्राह्मण ने शिवाजी का परवाना दिखाया है। यह कौन ब्राह्मण है। इसका छिपकर हाल जानना चाहिए ?

ब्राह्मण की बातों हीं से चाँदख़ाँ को सन्देह हुआ था। जब महाराष्ट्रों की निन्दा होते हुए ब्राह्मण का मुख-मण्डल आरक्तवर्ण हो गया था उसे भी चाँदख़ाँ ने देखा था। परन्तु इन तमाम बातों को उसने शाइस्ताख़ाँ से नहीं कहा था। क्योंकि सत्य बोलकर कौन विपत्ति मोल ले ? परन्तु उसने दिल ही दिल में स्थिर कर लिया था कि इस दूत को अवश्य पकड़ूँगा। बस, यही कारण है कि चाँदख़ाँ दूत के पीछे पीछे छिपा हुआ फिर रहा था। एक सैकण्ड के लिए भी ब्राह्मण उसकी नज़रों से ओझल नहीं होने पाता था। उस सिपाही के साथ ब्राह्मण की जो वार्तालाप हुई थी उसे भी चाँदख़ाँ ने सुना था। और बुद्धिमान् चाँदख़ाँ ने उसी समय समझ लिया था कि इस दूत का विनाश करना ही मेरे लिए सर्वोत्तम है। फिर शाइस्ताख़ाँ से जब इन बातों को कहूँगा तब वह अपनी भूलों को स्वीकार करेगा कि "चाँदख़ाँ भीरु नहीं है और न वह दिल्लीश्वर का अनिष्टकारी"। जब इस षड्यन्त्र को पकड़ा दूँ तब यह जीवन सफल होगा। फिर शाइस्ताख़ाँ समझेगा कि चाँदख़ाँ की बातें इस प्रकार अवहेलना के योग्य नहीं हैं।" परन्तु यह आशा दुराशा थी, स्वप्नवत् राज्यप्राप्ति के तुल्य थी। महादेव को भूमि से उठते देख चाँदख़ाँ ने समझ लिया कि तीर और

पट्ठों का आघात निष्फल गया इसी कारण उसने तुरन्त ही छलाँग मारकर बड़े ज़ोर से महादेव पर तलवार चलाई परन्तु आश्चर्य की बात है कि बख़्तर में लगकर तलवार खण्ड खण्ड हो गई।

"छुरे क्षण में मेरा अनुसरण किया था" यह कह महादेवजी ने अपने आस्तीन के भीतर से छुरे को निकाला, फिर आकाश की ओर उठाया और पलमात्र में उसे चाँदख़ाँ के शरीर में भोंक दिया। धड़ाम से चाँदख़ाँ का मृतक देह पृथ्वी पर गिर पड़ा।"

ब्राह्मण ने दाँत से होठों को दबा लिया। उसके नेत्रों से चिनगारियाँ निकलती थीं। फिर धीरे धीरे महादेवजी वह छुरी छिपा कर बोला—"शाइस्ताख़ाँ! महाराष्ट्रों की निन्दा करने का यह प्रथम फल है। भवानी की कृपा से दूसरा फल कल मिलेगा।"

वीरोचित कार्य्य करते हुए चाँदख़ाँ ने जीवन-दान किया। परन्तु शाइस्ताख़ाँ उस समय बड़ी सुखनिद्रा ले रहा था, और स्वप्न ही में देख रहा था—शिवाजी, वह बन्दी होकर आ रहा है। इत्यादि।

महाराष्ट्रीय सैनिक ने इन तमाम व्यापारों को देखा और कहने लगा, "महाराज, अब क्या करना होगा? कल तो इस बात के प्रकट होने से हमारा सब करा कराया नष्ट जायगा।"

ब्राह्मण—"नहीं, कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। मैं जानता हूँ, चाँदख़ाँ आज सभा में अपमानित हुआ था। अब कई दिन तक उसके सभा में न जाने से कोई सन्देह न करेगा। यह मृतदेह

इस गम्भीर कुएँ में डाल दो, और याद रक्खो कि, कल एक पहर रात गये ।

सिपाही—"हाँ, एक पहर रात गये ।"

ब्राह्मण चुपचाप पूना नगर से चल दिया। तीन चार स्थानों में पहरेवालों ने उसे पकड़ा, परन्तु उसने शाइस्ताखाँ का दस्तख़ती परवाना दिखा दिया और सकुशल पूना के बाहर हो गया ।

सातवाँ परिच्छेद

राजा यशवन्तसिंह

आधी रात हो गई है। राजा यशवन्तसिंह अकेले किले में बैठे हैं। हाथ पर गाल रखकर इस निशा-काल में नहीं मालूम क्या विचार रहे हैं। सामने एक दीपक जलता है और डेरे में दूसरा कोई नहीं है। सन्देसा आया, "महाराष्ट्रीय दूत" आपसे मिलना चाहता है। महाराज ने आज्ञा दी, "आने दो, हम उन्हीं की तो प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

महादेवजी न्यायशास्त्री डेरे में आये। महाराज यशवन्तसिंह ने उठकर उनको आदर-सत्कार के साथ बैठने को कहा। फिर दोनों जने बैठ गये।

कुछ देर तक यशवन्तसिंह चुप रहे। शायद कोई बात सोच रहे थे, परन्तु इसी दशा में महादेव यशवन्तसिंह की ओर बड़ी सावधानी से देख रहे थे। फिर यशवन्तसिंह ने कहा, "हमने तुम्हारे स्वामी का पत्र पढ़ा था। उसको भले प्रकार समझ भी लिया है। क्या उसके अतिरिक्त और कुछ कहना है?"

महादेवजी—"हमारे स्वामी ने किसी प्रस्ताव को लेकर नहीं भेजा है। हाँ, केवल खेद प्रकाश करने के लिए अवश्य भेजा है।"

यशवन्तसिंह—"केवल पूना और चाकनदुर्ग हमारे हस्तगत होजाने से ही तुम्हारे महाराज ने खेद प्रकट करने को तुम्हें भेजा है ?"

महादेव—"वे केवल दुर्गों के निकल जाने से खिन्न नहीं हैं, उनके पास तो असंख्य दुर्ग हैं।"

यशवन्त—"तो फिर क्या मुग़लों के युद्धरूपी विपद् में फँस कर खेद कर रहे हैं ?"

महादेव—"विपद् में पड़कर उनको खेद करने का अभ्यास नहीं।"

यशवन्तसिंह—"फिर किस लिए खेद है ?"

महादेवजी—"वह हिन्दूराज-तिलक, जो क्षत्रिय-कुलावतंस, सनातनधर्मरक्षक है उसको इस समय म्लेच्छों का दास देखकर हमारे प्रभु शोकाकुल हो रहे हैं।"

यशवन्तसिंह का मुखमंडल लाल हो आया। महादेवजी ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया और गम्भीर स्वर से कहने लगे:—

"जिसने उदयपुराधीश राना प्रतापसिंह के वंश में विवाह किया हो, जिसकी सुख्याति से राजस्थान परिपूर्ण हो रहा हो, माड़वार राजछत्र जिसके सिर पर विराजमान हो, सिप्रानदी के तीर पर जिसका पराक्रम देख औरङ्गज़ेब भी भयभीत हुआ हो, ऐसे हिन्दूधर्म के स्तम्भ को, जिसके लिए ग्राम ग्राम मंदिरमंदिर में जय मनाया जाता हो, मुसलमानों की ओर से हिन्दुओं से लड़ना क्या अभिप्राय रखता है ? क्षत्रियकुलर्षभ ! मैं एक साधारण ब्राह्मण हूँ, फिर दूतों का काम करता हूँ। मुझे अधिक ज्ञान नहीं है। यदि मुझसे असभ्य वचन निकलते हों तो आप क्षमा करें। परन्त क्या आपका यह उद्योग हिन्दुओं को स्वतंत्र करने के लिए

है ? यह समस्त विजयपताका क्या हिन्दुओं के स्वराज्य की उड़ रही है ? महाराज, आप ही विवेचना करें। मैं कुछ नहीं जानता।"

यशवन्तसिंह सिर नीचा ही किये रह गये। महादेवजी फिर बोलने लगे,"आप राजपूत हैं। महाराष्ट्रगण भी राजपूत-पुत्र हैं। पिता-पुत्र का युद्ध सम्भव नहीं। स्वयं भवानी ने इस युद्ध का निषेध किया है। राजपूतों ही का गौरव एक मात्र अनाथ भारत वर्ष का गौरव है। राजपूत-यशोगीत हमारे यहाँ की स्त्रियाँ अभी तक गाती हैं। राजपूतों ही के आदर्श पर हम लोग अपने लड़कों को शिक्षा देते हैं। क्षत्रियकुलतिलक! राजपूतों के शोणित से हमारे खड्ग रञ्जित होने के प्रथम ही महाराष्ट्रों का नाम लुप्त हो जायगा। राज्य को छोड़ छाड़ कर हम लोग फिर वही हल चलाना सीखेंगे। महाराज! परन्तु हमसे आपसे युद्ध न होगा।"

यशवन्तसिंह ने आँख उठाकर धीरे धीरे कहा—"प्रधानदूत! तुम्हारी कथन-प्रणाली बड़ी रोचक है किन्तु मैं दिल्लीश्वर के अधीन हूँ। महाराष्ट्रों से युद्ध करूँगा, ऐसा कहकर वहाँ से चला हूँ। अतएव उनसे युद्ध करूँगा।"

महादेवजी—"फिर, इस प्रकार तो, शत शत स्वधर्मियों का नाश होगा। हिन्दू हिन्दुओं के सिर काटेंगे। ब्राह्मण ब्राह्मणों के हृदय में तलवार भोकेंगे और क्षत्रिय क्षत्रियों के शरीर से रक्तपात करके म्लेच्छों की विजय-कीर्ति विस्तारित करेंगे।"

यशवन्तसिंह का मुखमण्डल आरक्त हो गया, किन्तु उद्वेग को रोक कर उसने कर्कश शब्दों में कहा,"केवल दिल्लीश्वर की

जय के हेतु युद्ध नहीं। मैं तुम्हारे महाराज से किस प्रकार मित्रता करूँ? शिवाजी विद्रोहाचारी हैं। वे जिस विषय को आज स्वीकार करते हैं कल ही उसको भङ्ग कर देते हैं।"

इस बार ब्राह्मण के नेत्र प्रज्वलित हो उठे। उसने धीरे धीरे कहा—"महाराज! सावधान, अलीकनिन्दा आपको शोभा नहीं देती। शिवाजी कब हिन्दुओं के साथ वाक्यदान करके पलट गया? उसने कब क्षत्रियों के सम्मुख प्रण करके उसको भुला दिया? उसने कब ब्राह्मणों से शपथ खाकर उसका प्रतिपालन नहीं किया? देश में सैकड़ों गाँव हैं, और वहाँ हज़ारों देवालय हैं, आप अनुसन्धान करके देख लें, शिवाजी सत्य-पालन करता है अथवा नहीं। वह ब्राह्मणों को आश्रय देता है अथवा नहीं। गोवत्सादि की रक्षा में वह तत्पर है कि नहीं और क्या वह देव-देवियों की पूजा देने में पराङ्मुख तो नहीं है? फिर मुसलमानों के साथ युद्ध क्यों? जेता और विजितों में परस्पर का प्रेम किस देश में है? क्या सिंह अपने वज्र तुल्य नखों से साँप पर आक्रमण करके उसे मृतवत् समझ छोड़ दे तो सर्प का अवसर पाकर उसे डँस लेना विद्रोहाचरण है? कदापि नहीं। यह तो स्वाभाविक रीति है। यदि कुत्ता ख़रगोश को पकड़ना चाहे और वह जीवित-रक्षा के लिए इधर उधर भाँति भाँति की चतुरता करके भागने में समर्थ हो जाय तो क्या ख़रगोश अराजक है? कदापि नहीं। यह आत्मगौरव और आत्मरक्षा मात्र है। जिस जगदीश्वर ने प्राणीमात्र को आत्म-रक्षा की शिक्षा दी है क्या उससे मनुष्य वञ्चित किया जा सकता है? हमारे निकट प्राणों का प्राणेश्वर जीवनाधार तो स्वाधीनता है। जिसको मुसलमानों ने सैकड़ों वर्षों के प्रयत्न से नाश किया है उसे हम क्या सहन कर सकते हैं? आप

हिन्दू के जीवन की रक्षावाले केवल एक ही मात्र उपाय की निन्दा न करें, विशेषतः शिवाजी की निन्दा न करें" यह कह महादेवजी के ज्वलन्त नयनों में आँसू भर आये।

ब्राह्मण के नेत्रों में जल भरा हुआ देखकर यशवन्तसिंह के हृदय में वेदना हो उठी। उन्होंने कहा, "दूतप्रवर! यदि मेरे कुछ वाक्य कटु निकल गये हों कि जिससे आपको कष्ट हुआ हो तो, कृपया क्षमा कीजिए। हमारे कहने का भी तात्पर्य्य यही है कि राजपूतगण भी स्वाधीनता की अभिलाषा रखते हुए रण के सिवाय और कुछ नहीं जानते। महाराष्ट्रीयगण भी उसी पथ का अवलम्बन करके सम्मुख रणक्षेत्र में जयलाभ कर सकते हैं।"

महादेवजी—"महाराज! राजपूतों में पुरातन स्वाधीनता है। वे बहुत धन रखते हैं। उनके पास दुर्गम पर्वतों और मरुस्थलों की कमी नहीं है। राजधानी भी उनकी सुन्दर और सुदृढ़ है। उनमें सहस्रों वर्ष की अपूर्व रणचातुरी है, परन्तु महाराष्ट्रियों में इनमें से क्या है? ये तो दरिद्री और चिरपराधीनस्थ हैं। इनके निकट तो वह पहली ही रणशिक्षा है। आपका देश आक्रमण करने पर पुरातन रीति के अनुसार युद्ध करता है और स्मरणीय पुरातन दुर्द्धर तेज व विक्रम का प्रकाश करता है। असंख्य राजपूतसैनिक दिल्लीश्वर की सेना को सामने से परे भगा देते हैं। परन्तु हमारे देश पर आक्रमण होने से हम क्या कर सकते हैं? न तो हमारी पूर्वरीति की रणशिक्षा है, और न सैनिकों की अधिकता है। जो कुछ भी महाराष्ट्रीय सैन्य है उसने युद्ध कभी देखा ही नहीं, फिर उनमें युद्ध का अनुभव कहाँ से हो? परन्तु दिल्ली की सेना, काबुल, पञ्जाब, अयोध्या,

विहार, मालवा, वीरप्रसविनी राजस्थान भूमि इत्यादि सहस्रों स्थानों के पुरतन रणदर्शी योद्धाओं से अनुभव प्राप्त कर चुकी है । उसके सम्मुख दरिद्री महाराष्ट्र सैन्य क्या कर सकती है ? न तो हमारे पास असंख्य सेना है और न अश्वारोहियों की अधिकता है । फिर हम उनके भेजे हुए, धनुष्बाण, शतघ्नी, बारूद, गोले, रुपयों और अशर्फ़ियों की तुलना ही क्या है ? जब हमारे पास वैसे हाथी घोड़े इत्यादि कुछ भी नहीं हैं तब पृथ्वीनाथ ! जीवन के प्रारम्भ में दरिद्र जाति ऐसे आचरण के अतिरिक्त और कर ही क्या सकती है । जगदीश्वर ! आप कृपा करें, महाराष्ट्रीय जाति दीर्घजीवित हो । जब वह दो तीन सौ वर्षों के पश्चात् अपनी रणकुशलता और असाधारण योग्यता का प्रकाश करेंगे तब इन दिनों के दुःखों का प्रतिफल प्राप्त होगा ।

यह समस्त वार्तालाप सुनकर यशवन्तसिंह चिन्तायुक्त हो गये । हाथों पर सिर टेककर कुछ विचारने लगे । महादेव जी ने देखा कि, मेरे शब्द नितान्त निष्फल नहीं गये हैं इसलिए धीरे धीरे वे फिर कहने लगे—"आप हिन्दुओं में श्रेष्ठ हैं। क्या हिन्दू-गौरव-साधन में आपको सन्देह होना चाहिए ? हिन्दू-धर्म की जय-प्राप्ति के लिए अवश्य आप इच्छा करते हैं । शिवाजी की भी आकांक्षा कुछ दूसरी नहीं है । मुसलमानों के शासन का ध्वंस करना ही हिन्दू-जाति का गौरव-साधन है। स्थान स्थान पर देवालय स्थापित करना, हिंदू-शास्त्रों की आलोचना, ब्राह्मणों को आश्रयदान, और गौवत्सादि की रक्षा करना ही है । यदि इन विषयों में आप शिवाजी को सहायता देने से विमुख हैं तो अपने ही हाथों से इन कार्य्यों का सम्पादन कीजिए । आप इस देश का राजत्व स्वीकार कीजिए, मुसलमानों को परास्त कर डालिए और महाराष्ट्रीय हिन्दू-स्वाधीनता पुनःस्थापित कीजिए ।

आप अङ्गीकार करें तो अभी दुर्गद्वार खोल दिये जायँ। प्रजा आपको कर देगी और शिवाजी की अपेक्षा सहस्रगुण बलवान् दूरदर्शी और उपयुक्त समझेगी और शिवा जी भी सन्तुष्ट चित्त से आपका एक सैनिक बन कर मुसलमानों के ध्वंश-साधन में दत्तचित्त होगा।"

इन प्रस्तावों को सुनकर उच्चाभिलाषी यशवन्तसिंह के नयन आनन्द से परिपूर्ण हो गये। अनेक क्षण चिन्ता करने के पश्चात् उसने धीरे से कहा—"परन्तु मारवाड़ और महाराष्ट्र पास पास नहीं हैं इसलिए एक राजा के अधीन असम्भव प्रतीत होता है।"

महादेवजी—"फिर आप अपने किसी सुयोग्य पुत्र के अधीन यह राज्य कर दीजिए अथवा अपने किसी अन्य आत्मीय को सौंप दीजिए। शिवाजी क्षत्रिय राजा के अधीनस्थ कार्य्य कर सकते हैं परन्तु कदापि किसी क्षत्रिय से युद्ध न करेंगे।"

यशवन्तसिंह—"इस विपद्काल के अवसर पर कोई ऐसा आत्मीय नहीं दीख पड़ता जो औरङ्गज़ेब से लड़कर देश की रक्षा कर सके।"

महादेवजी—"फिर किसी क्षत्रिय सेनापति को ही नियुक्त कीजिए। हिन्दूधर्म और स्वाधीनता की रक्षा होते हुए शिवाजी की मनोकामना पूर्ण होगी और वह सानन्दचित्त राज्य परित्याग करके संन्यास ग्रहण करलेंगे।"

यशवन्तसिंह—"इस प्रकार का कोई सेनापति भी नहीं है।"

महादेव—"फिर जो ऐसे महान् कार्य्य का सम्पादन कर रहा है उसे आप मदद दें। आपकी मदद और आशीर्वाद से शिवाजी अवश्य ही स्वदेश और स्वधर्म के गौरव साधन में कृतकार्य्य होगा। क्षत्रियराज! क्षत्रिय योद्धा को सहायता दीजिए। भूमण्डल में ऐसा कोई हिन्दू नहीं, आकाश में ऐसा कोई देवता नहीं जो आपकी प्रशंसा न करता हो।"

यशवन्तसिंह—"द्विजवर, तुम्हारी तर्कना अलंघनीय है परन्तु दिल्लीश्वर मुझसे स्नेह रखता है, और यही कारण है कि उसने मुझे इस कार्य्य के साधन में नियुक्त किया है फिर उसके साथ विश्वास घात कैसे करूँ? क्या यह भद्रोचित है?"

महादेवजी—"जिस दिल्लीश्वर ने हिन्दूगणों का नाम काफ़िर रख छोड़ा है और जिज़िया जारी किया है क्या उसके यह कार्य्य भद्रोचित हैं? जो देश देश में हिन्दू-मंदिरों और देवालयों का अपमान करता है क्या यह भद्रोचित है? काशी जैसी पवित्र नगरी में विश्वनाथ के मन्दिर को भग्न करके उसके पत्थर से मस्जिद बनवाना क्या भद्रोचित है?"

क्रोध और कम्पित स्वर से यशवन्तसिंह कहने लगे,"द्विज-श्रेष्ठ! अब और मत कहिए। आज से शिवाजी हमारे मित्र हैं। हम शिवाजी के मित्र हुए। इस समय हमारा प्रण शिवाजी के प्रण के सदृश है। हमारी और उनकी चेष्टा अभिन्न नहीं। इस समय तक हिन्दू-विरोधी दिल्लीश्वर के विरुद्ध जिसने युद्ध किया है वह महाशय कहाँ है? एकबार उन्हें आलिङ्गन करके हृदय के सन्ताप को दूर करूँ।"

ब्राह्मण वेशधारी दूत ने ब्राह्मण के वेष को परित्याग कर दिया। अब दूत एक हृष्टपुष्ट योद्धा के आकार में दीख पड़ता

कुर्ते के नीचे से छिपा हुआ छुरा दीख पड़ने लगा और महाराष्ट्र वीर धीरे धीरे कहने लगा—"राजन् ! छद्मवेष धारण करके आपके पास आने का अपराध मेरा क्षमा कीजिए। यह दास ब्राह्मण नहीं, महाराष्ट्रीय क्षत्रिय है। नाम भी महादेवजी नहीं किन्तु शिवाजी है !"

राजा यशवन्तसिंह विस्मय और हर्षोत्फुल्ल लोचन से प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय योद्धा की ओर देखने लगे। हाय ! क्या दिल्लीश्वर का प्रतिद्वन्द्वी यही वीर है ! फिर कुछ देर के बाद गद्गद् हृदय से यशवन्तसिंह ने ख्यातनामा वीर शिवाजी का आलिङ्गन किया।

सारी रात वार्तालाप में व्यतीत हुई। युद्ध की सभी बात निश्चित हुई। इसके पश्चात् शिवाजी वहाँ से विदा हुए। परन्तु चलते समय शिवाजी ने कहा—"महाराज ! अनुग्रह कीजिए। कल पूना से दो चार कोस दूर ही रहने में भला है।"

यशवन्तसिंह—क्यों, क्या कल तुम पूना को हस्तगत करने की चेष्टा करोगे ?

महाराष्ट्रीय योद्धा ने हँस कर कहा—"नहीं, एक विवाह के कार्य्य का सम्पादन करना है। आपके रहते हुए कुछ व्याघात हो जाने की सम्भावना है।"

यशवन्तसिंह—अच्छा, दूर ही रहूँगा। विवाह कार्य्य के मंत्रादि क्या न्यायशास्त्री महाशय को इस समय स्मरण हैं ?

शिवाजी—याद है क्या ! मेरी शास्त्रविद्या देखकर दिल्ली का सेनापति शाइस्ताख़ाँ विस्मित हो गया था। कल तो विदा होना भी भले प्रकार से जान लेंगे।

विदा करते समय राजा यशवन्तसिंह न्याय शास्त्री को दर-वाज़े तक पहुँचाने चले आये और फिर विदा करते समय कहा—"युद्ध के विषय में जैसा वार्तालाप हुआ है, कार्य्य करते समय उसी का अनुकरण कीजिएगा।"

शिवाजी—हाँ, उसी प्रकार अपने स्वामी शिवाजी से निवे-दन करूँगा !

यशवन्तसिंह—हाँ, मैं भूल गया था। 'उसी प्रकार कार्य्य करने का अपने प्रभु से अनुमोदन कीजिएगा', इतना कह कर हँसते हँसते यशवन्तसिंह दुर्ग में चले गये।

—o—

आठवाँ परिच्छेद

शिवाजी

पूर्व की दिशा में रक्तिमाच्छटा शोभित हो रही है। इसी समय ब्राह्मण-वेषधारी शिवाजी ने सिंहगढ़ में प्रवेश किया। छद्मवेष के वस्त्रों को परे फेंक दिया। प्रातःकाल के सूर्य्य की किरणों के पड़ने से शिवाजी का शरीर चमकने लगा। वक्षःस्थल में तीक्ष्ण छुरी थी, "भवानी" नामक प्रसिद्ध तलवार भी पड़ी थी। वक्षःस्थल विशाल; शरीर की पेशियाँ दृढ़ और सुबद्ध झलक रही थीं। पेशवा मूरेश्वर त्रिमूल ने शिवाजी को देखते ही आनन्द में मग्न होकर कहा—"भवानी की जय हो! आप इतनी देर के बाद सकुशल तो लौटे।"

शिवाजी—भला आपके पुण्यप्रताप से किस विपद् से उद्धार न होगा?

मूरेश्वर—सब ठीक हो गया?

शिवाजी—हाँ सब।

मूरेश्वर—आजही रातको विवाह है न?

शिवाजी—हाँ आज ही।

मूरेश्वर—शाइस्ताखाँ ने तो कुछ जान नहीं लिया? तीक्ष्ण-बुद्धि चाँदखाँ ने तो कुछ नहीं समझ लिया?

शिवाजी—शाइस्ताख़ाँ तो भयभीत शिवाजी से सन्धि करने की प्रतीक्षा कर रहा था ।

योद्धा चाँदख़ाँ चिरनिद्रा निद्रित है । अब वह और लड़ाई नहीं कर सकता ।

मूरेश्वर—राजा यशवंतसिंह ?

शिवाजी—आपने जिन युक्तियों को मुझे बताया था उन्हीं युक्तियों से यशवंतसिंह विचलित हो गये । मैंने जाकर देखा तो वे वास्तव में किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये हैं । सुतराम् अनायास ही हमारा कार्य्य सिद्ध होगा ।

मूरेश्वर—भवानी की जय हो ! आपने एक ही रात में अकेले जितने कार्य्य साधन किये वे सहस्रों से असाध्य थे । जब इन असीम साहसी कार्य्यों पर ध्यान देता हूँ तब हृदय काँप जाता है । प्रभो ! यह दुस्साध्य कार्य्य औरों के मान का नहीं था ।

शिवाजी—मूरेश्वर ! विपदों से यदि अब तक भय करता तो वही साधारण जागीरदार बना रहता । विपद् में भय करने से यह महत्कार्य्य किस प्रकार सिद्ध होता ? चिरजीवन विपदाच्छन्न है, परन्तु क्या करें महाराष्ट्र-देश स्वाधीन हो जाय ।

मूरेश्वर—वीरश्रेष्ट ! आपका जय अनिवार्य्य है । स्वयं भवानी आपकी सहायता करेंगी, परन्तु आधी रात के समय शत्रु के शिविर में अकेले छद्मवेशधारण करना !

शिवाजी—यह तो शिवाजी का अभ्यस्त कार्य्य है । परन्तु वास्तव में आज एक बड़े विपद् में फँस गया था ।

सूरेश्वर—"किस में ?"

शिवाजी—भला ऐसे मूर्ख को आपने संस्कृत के श्लोक सिखा दिये थे ? जो व्यक्ति कि अपना नाम लिखना नहीं जानता उसे संस्कृत के श्लोक कब स्मरण रह सकते हैं ?

सूरेश्वर—क्यों, क्या हुआ ?

शिवाजी—और कुछ नहीं, शाइस्ताखाँ की सभा में न्याय-शास्त्री महाशय प्रायः समस्त श्लोक भूल गये थे।

सूरेश्वर—तत्पश्चात् ?

शिवाजी—परन्तु दो एक याद थे। उन्हीं से कार्य्य सिद्ध हुआ।

शिवाजी के साथ हमारा यह प्रथम परिचय है। इसलिए यहाँ हम उनका कुछ हाल लिखना चाहते हैं। इतिहासज्ञ पाठक गण यदि चाहें तो उसे छोड़ सकते हैं।

शिवाजी ने सन् १६२७ ई० में जन्म लिया था। इस आख्यायिका के समय उनकी अवस्था ३६ वर्ष की थी। उनके पिता का नाम शाहजी और पितामह का मालोजी था। हम पहले ही परिच्छेद में फुलतन देश के देशमुख प्रसिद्ध निम्बालकर वंश की कथा कह आये हैं। उसी वंश के योगपाल नायक की वहिन दीपाबाई से मल्लजी का विवाह हुआ था। वहुत दिनों तक मल्लजी के कोई सन्तान नहीं हुई परन्तु अहमदनगर निवासी शाहशरीफ़ नामक एक मुसलमान फ़क़ीर और मल्लजी से बड़ी मैत्री था। शाहसाहिव ने भी अपने मित्र के सुखसाधन में ईश्वर से वन्दना की। कुछ दिनों के वाद ईश्वर की कृपा से

दीपावाई के गर्भ से एक लड़का उत्पन्न हुआ और उस लड़के का नाम मल्लजी शाहजी रक्खा।

यादवराव अहमदनगर के एक प्रसिद्ध सेनापति थे। यादवराव १० हज़ार सवारों के नायक और एक बड़ी जागीर का उपभोग करते थे। सन् १५९९ ई० के होली के दिन मल्लजी अपने पुत्र शाहजी को लेकर यादवराव के यहाँ गये थे। उस समय शाहजी ५ वर्ष के थे और यादवराव की कन्या जीजी वाई भी तीन अथवा ४ ही वर्ष की थी। यही कारण है कि शाहजी और जीजीवाई कुछ वालक्रीड़ा करने लगे। इसे देखकर यादवराव ने मज़ाक के तौर पर अपनी कन्या जीजीवाई को सम्बोधन करके कहा "क्या तू इस वालक से विवाह किया चाहती है?" फिर दूसरों को सम्बोधन करके कहा "भाई, देखो तो क्या मनोहर जोड़ी है!" उसी समय शाहजी और जीजीवाई ने परस्पर फाग खेल कर लोगों को हँसा दिया, किन्तु मल्लजी ने जल्दी से खड़े होकर कहा, "वन्धुगण! साक्षी रहिए हम और यादवराव सम्बन्धी होना चाहते हैं"। सभों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। यादवराव उच्चवंशज थे। इसलिए उन्होंने अपनी कन्या का विवाह मल्लजी के घर में करने का कभी विचार भी नहीं किया परन्तु मल्लजी की इस चतुरता को देख कर वह विस्मित हो गये।

दूसरे दिन यादवराव ने मल्लजी को निमंत्रण दिया, परन्तु मल्लजी ने कहला भेजा कि "जव तक विवाह का विषय स्थिर न हो जाय, हम तुम्हारे यहाँ भोजन नहीं कर सकते" परन्तु इस प्रस्ताव को यादवराव ने भी स्वीकार नहीं किया। मल्लजी निमन्त्रण में नहीं आये। यादवराव की स्त्री यादवराव से भी

बढ़कर वंश-मर्य्यादा की अभिमानिनी थीं। एक दिन यादवराव ने हँसी हँसी में यह कह दिया कि शाहजी से मैं जीजी बाई का विवाह करना चाहता हूँ, परन्तु इस विषय पर उनकी स्त्री ने बड़ा क्रोध किया और दोचार खरी सुनाईं। मल्लजी इन बातों से रुष्ट होकर एक गाँवमें चले गये और वहाँ जाकर उन्होंने प्रकाश किया कि भवानी ने स्वयं प्रकट होकर हमको बहुत सा धन प्रदान किया है। महाराष्ट्र देश में अभी तक यह विषय प्रसिद्ध है कि भवानी ने मल्लजी से कहा था कि "तुम्हारे वंश में एक ऐसा पुत्र होगा कि जो शिवजी की भाँति प्रभावशाली और शत्रुओं के दलन करने में बड़ा वीर होगा। वह महाराजा होकर महाराष्ट्र देश में पुनः स्वराज्य स्थापित करेगा एवं ब्राह्मणों और देवालयों का पुनरोद्धार करने में फलीभूत होगा। उसके वंश में २७ पीढ़ियों तक लोग राज्य करेंगे और वह अपने नाम का संवत् जारी करेगा।

सो वास्तव में वही हुआ। मल्लजी ने विपुल अर्थ पाकर अपने को कृत्यकार्य समझा, और उसी धन की बदौलत आत्मोन्नति की चेष्टा करने लगे। इस महान् कार्य के साधन में उसके साले भोगपाल ने बड़ी सहायता की। इस प्रकार मल्लजी अहमदनगर के मुसलमान राजा की अधीनता में पाँच हज़ार सवारों के सेनापति बन गये और राजा की उपाधि से विभूषित किये गये। कुछ दिनों के बाद सुवर्णी और चाकनदुर्ग और उसके आस पास के देश के मालिक भी हो गये। पूना और सोपा नगर जागीर के उपलक्ष में मिला। अब यादवराव को कोई भी भय शेष नहीं रहा। सन् १६०४ ई० में बड़े समारोह के साथ शाहजी का जीजी बाई के साथ विवाह हुआ।

इस विवाहोत्सव में अहमदनगर के मुसलमान स्वयं उपस्थित थे। इस समय शाहजी की अवस्था केवल १० वर्ष की थी। संसार के नियमानुसार मल्लजी की मृत्यु के पश्चात् शाहजी को पैतृक जागीर और पद प्राप्त हुआ।

इस समय दिल्लीश्वर अकबरशाह अहमदनगर के राज्य को दिल्ली के अधीन करने के लिए युद्ध कर रहा था और बहुत कुछ जयलाभ भी कर चुका था, परन्तु उसी बीच में उसकी मृत्यु हो गई। फिर भी जहाँगीर ने लड़ाई को जारी रक्खा। इस युद्धकाल में शाहजी सोये हुए नहीं थे। सन् १६२० ई० में अहमदनगर के प्रधान सेनापति मलिकअम्बर के अधीन शाहजी ने बड़ा नाम पैदा किया और इस महायुद्ध में वह अपने बल-विक्रम का प्रकाश करके सबके सम्मान-भाजन बन गये। जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् सम्राट् शाहजहाँ ने शाहजी को पाँच हज़ार सवारों का सेनापति करके बहुत कुछ जागीरें प्रदान की। परन्तु यह अनुग्रहीत चिरस्थायी नहीं था। तीन ही वर्षों के पश्चात् शाहजहाँ ने बहुत सी जागीरें निकाल लीं। अब शाहजी ने विस्मित होकर मुग़लों का साथ छोड़ दिया और अहमदनगर के मुसलमानों के पक्ष में हो गये और आजन्म उन्हीं की ओर से कार्य्य करते रहे।

दिन दिन पतन की ओर बढ़ते हुए अहमदनगर राज्य की स्वाधीनता के लिए भी शाहजी ने दिल्ली की सेना के साथ लड़ाई की। सुलतान शत्रु के हाथों मारा गया परन्तु शाहजी ने उसी वंश के एक दूसरे व्यक्ति को सुलतान बनाकर सिंहासनारूढ़ कराया और अनेक विज्ञ ब्राह्मणों द्वारा देश के शासन का सुदृढ़ प्रबन्ध किया। सुलतान की ओर से बहुत से दुर्गों को विजय किया

और मुसलमानों के नाश के लिए बहुत बड़ी सेना एकट्ठी करने लगे।

शाहजहाँ ने इन समस्त कार्रवाइयों को देखकर बड़ा क्रोध किया और शाहजी और शाहजी के प्रभु के दमन करने के लिए बहुत सी फ़ौज रवाना की। दिल्लीश्वर के सम्मुख युद्ध करना सुलतान अथवा शाहजी के वित्त के बाहर था। कई वर्षों के पश्चात् परस्पर सन्धि-स्थापना हुई और अहमद-नगर के राज्य का दीपक बुझ गया (सन् १६३१ ई०)। शाहजी विजयपुर के अधीन भी जागीरदार व सेनापति थे एवं सुल-तान के आदेशानुसार कर्नाट देश के अनेक भागों को जय किया। विजयपुर के उत्तर पूना के निकट जिस प्रकार जागीर थी उसी प्रकार कर्नाटदेश के दक्षिण ओर भी शाहजी ने बहुत सी जागीरें प्राप्त की।

जीजीबाई के गर्भ से शम्भुजी और शिवाजी दो पुत्र हुए। लिखा हुआ तो ऐसा है, कि जीजीबाई के पिता के पुरुषागण देवगढ़ के हिन्दूराज्यवंश से थे। यह बात यदि सच्ची है, तो इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि शिवाजी उसी पुरातन राज-वंशोद्भूत हैं। सन् १६३० ई० में शाहजी ने टुकाबाई नामी एक और कन्या का पाणिग्रहण किया। अभिमानिनी जीजीबाई को शाहजी के इस कार्य्य से बड़ा क्रोध हुआ, इसलिए उसने शाहजी का संसर्ग छोड़ दिया और अपने पुत्र शिवाजी को साथ लेकर पूना की जागीर में आकर रहने लगीं। शाहजी टुकाबाई को लेकर कर्नाट की जागीर में रहने लगे और वहाँ टुकाबाई के गर्भ से वेङ्काजी नामक एक पुत्र हुआ।

शाहजी के दो ब्राह्मण बड़े विश्वस्त मन्त्री और कर्मचारी थे। उनमें दादाजी कन्हाई खास करके पूना की जागीर और जीजीबाई के शिशु शिवाजी का रक्षणान्वेषण करते थे।

सन् १६२७ ई० में सुवर्णी दुर्ग में शिवाजी का जन्म हुआ था। यह स्थान पूना से लगभग २५ कोस उत्तर की ओर है। शिवाजी की अवस्था जब ३ वर्ष की थी, तब शाहजी ने टुका बाई के साथ विवाह किया था। जीजीबाई के साथ ही शिवाजी भी अपने बाप से अलग हुए। जीजीबाई अपने पुत्रके साथ दादाजी कन्हाई की देख रेख में पूना के दुर्ग में रहने लगीं। शिवाजी के रहने के लिए दादाजी ने पूना नगर में एक विशाल भवन निर्माण कराया था। हमारे पाठकगण शाइस्ताख़ाँ को उसी भवन में देख चुके हैं।

माता-पुत्र उसी स्थान में रहने लगे। लड़कपनही से शिवाजी दादाजी से शिक्षा ग्रहण करने लगे, परन्तु लिखने पढ़ने को उन्होंने अपने नाम तक का लिखना भी नहीं सीखा किन्तु बचपन से ही तीर-कमान चलाने, बर्छी फेंकने भाँति भाँति के खड्ग और छुरियों के चलाने, और अश्वारोहण में विशेष क्षमता प्राप्त की। यद्यपि महाराष्ट्रगण सभी घोड़े की सवारी करने में बड़े निपुण होते हैं, परन्तु शिवाजी ने जो सुख्याति लाभ किया वह औरों को प्राप्त करना ज़रा कठिन है। इस प्रकार व्यायाम और युद्धशिक्षा के कारण बालक शिवाजी का शरीर शीघ्र ही सुदृढ़ और बलिष्ठ हो गया।

किन्तु केवल अस्त्र-विद्या ही में शिवाजी अपना समय नहीं बिताते थे। जब कभी अवसर मिलता था तब वे दादाजी के पैताने बैठकर महाभारत और अन्यान्य पुस्तकों के महान् पुरुषों

और वीरों के उद्योगों को भी सुना करते थे। यही कारण है कि बालक का हृदय साहसी हो गया और उसने अपने जी में स्थिर कर लिया कि हिन्दू-धर्म को फिर से स्थापित करूँगा। यही कारण है कि उसने मुसलमानों से द्वेष करना निश्चय कर लिया था। शिवाजी ने शीघ्र ही शास्त्रानुसार सब क्रिया-कर्म सीख लिए। कथा श्रवण करने की ऐसी इच्छा थी कि, जब कुछ काल के पीछे उन्होंने देश और प्रतिष्ठा प्राप्त की; तब भी जहाँ कहीं कथा होती वह बहुत कष्ट और विपदें सहन कर भी वहाँ जाने की चेष्टा करते थे।

इस प्रकार दादाजी के प्रयत्न से शिवाजी अल्पकाल ही में स्वधर्मानुरक्त और मुसलमानों से अतिशय विद्वेषी हो गये। वह केवल सोलहीं वर्ष की अवस्था में स्वाधीन होने के लिए तरह तरह का उपाय सोचने लगे। अपने समान उत्साही लड़कों से मित्रता करने लगे, और उन्हें चारों ओर से एकत्रित करने लगे। पहाड़ों से घिरे हुए कङ्कणदेश में उन्हीं साथियों के साथ बराबर आने जाने लगे। वे यह भी विचारने लगे कि इन पहाड़ों को कैसे पार करना चाहिए, कहाँ से होकर रास्ता गया है, किस रास्ते पर कौन दुर्ग है? कौन कौन से दुर्ग अतिशय दुर्गम हैं, किस प्रकार दुर्गों पर आक्रमण किया जाता है और किस प्रकार उनकी रक्षा की जाती है। ज्यों ज्यों बालक की अवस्था बढ़ती गई वह इन विचारों में अतिवाहित होता गया। कभी कभी शिवाजी यों ही उन दुर्गों पर जाकर उनका निरीक्षण किया करता। अन्त में उसने निश्चय किया कि किसी प्रकार एक दो दुर्गों को हस्तगत करना ही चाहिए।

बालक की इन चेष्टाओं को सुनकर वृद्ध दादाजी को भय होने लगा और उन्होंने अनेक प्रबोध-वाक्यों द्वारा शिवाजी को

समझाना प्रारम्भ किया। दादाजी के इस प्रकार समझाने का अभिप्राय यह था कि जिसमें जागीर भले प्रकार रक्षित रहे, परन्तु शिवाजी के हृदय में वीरत्व का वीज अंकुरित हो गया था, इसलिए इस समझाने बुझाने का कुछ भी फल न निकला। यद्यपि शिवाजी दादाजी को पिता के समान जानते थे, तथापि जिस पथ के वे पथिक थे उसे परित्याग करना उन्होंने उचित न समझा।

माउली जातियों की कष्ट-सहिष्णुता और विश्वासयोग्यता से शिवाजी बड़ा आह्लादित हो गया था और उनमें से यशजी कंक, तन्नजी मालश्री और वाजी फसलकर उसके परम मित्र और अग्रगण्य हो गये थे। अन्त में इन्हीं की सहायता से (सन् १६४६ ई० में) किसी प्रकार तोरण दुर्ग के क़िलेदार को अपने वश में करके शिवाजी ने उस दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रथम विजय के समय शिवाजी का वयःक्रम केवल १६ वर्ष का था। अगले वर्ष शिवाजी ने इस क़िले के डेढ़ कोस दक्षिण-पूर्व तुङ्गगिरिशृंग के ऊपर राजगढ़ नामक एक कोट वनवाया।

विजयपुर के सुलतान ने जब इन समाचारों को सुना तब उसने शिवाजी के पिता शाहजी को बुलाकर उनका तिरस्कार किया और उनसे इन तमाम उपद्रवों का कारण पूछने के लिए उन्हें शिवाजी के पास भेजा। विजयपुर के विश्वस्त कर्मचारी शाहजी को इन बातों की कुछ भी ख़बर न थी इसलिए उन्होंने दादाजी से इसका कारण पूछा। दादाजी कनाई देव ने शिवाजी को फिर बुलाकर समझाया कि इन आचरणों का परित्याग कर दो नहीं तो इनसे सर्वनाश हो जायगा।

उन्होंने यह भी समझाया कि "तुम्हारे पिता ने विजयपुर के अधीन रह कर किस प्रकार से जयलाभ किया है, कितनी जागीरें और ख्याति प्राप्त की हैं"। शिवाजी ने पितृ-सदृश दादाजी से और कुछ न कहकर केवल मिष्टवाक्य द्वारा उत्तर दिया, परन्तु अपने संकल्प से विमुख नहीं हुए। इसके कुछ ही दिनों बाद दादाजी का परलोक-गमन हुआ । मृत्यु होने के पहले ही दादाजी ने शिवाजी को एकबार और बुला भेजा था। शिवाजी ने यह समझ कर कि बस एकबार और डाँट फटकार सुनेंगे उनके पास चले आये परन्तु अब की बार उनके वाक्यों को सुन कर शिवाजी को विस्मित होना पड़ा। मृत्युशय्या पर पड़े हुए दादाजी ने एकबार फिर अपने विद्याभण्डार के द्वार को शिवाजी के प्रति खोल दिया और प्रेमपूर्वक शिवाजी को उपदेश करने लगे—"वत्स! तुम जिस चेष्टा के उपासक हो उससे बड़ी चेष्टा अन्य कोई नहीं है । इस उन्नत पथ का अनुसरण करके देश की रक्षा करो। ब्राह्मण, गोवत्सादि एवं कृषकगणों की रक्षा में तत्पर हो जाओ। देवालयों के कलुषित कारियों को उचित दण्ड दो। ईशानी ने तुम्हें जिस स्वराज्य स्थापन की आज्ञा दी है उसमें तुम तत्पर हो जाओ" इन शब्दों को सुनाकर वृद्ध चिरनिद्रा में निद्रित हो गया। शिवाजी का हृदय इस दिव्य उपदेश को पाकर उत्साह और साहस से दशगुणा हो उठा। इस समय शिवाजी २० वर्ष का था।

उसी वर्ष शिवाजी ने चाकन और कान्दाना दुर्गों के क़िलेदारों को धन की लालच दिलाकर अपने वश में कर लिया और उभय दुर्ग हस्तगत करके कान्दाना का नाम बदल कर सिंहगढ़ रक्खा। इन दुर्गों का विवरण हमने पूर्व ही के परिच्छेदों में दे दिया है। शिवाजी की विमाता तुकाबाई के भ्राता बाजी मोपा

को इस दुर्ग का भार प्राप्त हुआ था। एक दिन आधीरात के समय अपनी माउली सेना को साथ लिये हुए शिवाजी ने सहसा दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। अपने मामा के साथ कोई अत्याचार न करके उसे सीधा कर्नाट अपने पिता शाहजी के पास भेज दिया। इस प्रकार ये दुर्ग उसके हस्तगत हो गये। कुछ दिनों के बाद पुरन्दर दुर्ग का स्वामी मर गया। उसके लड़कों में झगड़ा पैदा हो गया। शिवाजी ने कार्य्य-साधन का सुअवसर समझ कर छोटे दो लड़कों का तरफ़दार बन कर दुर्ग पर अपना अधिकार जमा लिया। इस अनुचित व्यवहार पर उसके तीनों भाई उससे नाराज़ हो गये, परन्तु जब उनसे देश की स्वाधीनता के प्रति सहायता माँगी तब जाकर उन लोगों का क्रोध शान्त हुआ। शिवाजी तर्क-वितर्क में बड़े निपुण थे। जब उन्होंने अपने आशय को भले प्रकार से समझा दिया तब तीनों भाइयों ने शिवाजी के अधीन कार्य्य करना स्वीकार किया।

इसी प्रकार शिवाजी ने एक एक करके अनेक दुर्गों को अपने अधिकार में कर लिया। उन सब दुर्गों का विवरण देकर इस आख्यायिका को भरना स्वीकार नहीं है। अतः उन्हें यहीं छोड़े देते हैं। सन् १६४६ ई० में शिवाजी के कर्म्मचारी आबाजी स्वर्णदेव ने कल्याण दुर्ग और समस्त कल्याणी प्रदेश को विजय कर लिया। इस विषय से विजयपुर के सुलतान को क्रोध हुआ और उन्होंने शिवाजी के पिता शाहजी को क़ैद कर लिया और शिवाजी को यह सन्देशा भेज दिया कि "यदि तुम अमुक तारीख़ तक अधीनता स्वीकार नहीं करोगे तो तुम्हारे बाप जिस घर में क़ैद हैं उसका दर्वाज़ा सदा के लिए बन्द कर दिया जायगा।"

शिवाजी ने दिल्लीश्वर से प्रार्थना करके अपने पिता के प्राण बचाये, परन्तु फिर भी चार वर्ष तक शाहजी नज़रबन्द रक्खे गये।

जौली के राजा चन्द्रराव को शिवाजी ने अपने पक्ष में लाने और मुसलमानों की अधीनता की बेड़ी के चूर्ण करने के लिए अनेक प्रयत्न किये। परन्तु चन्द्रारावमोर के अस्वीकार करने पर शिवाजी ने उसके भाई को मरवा डाला और सहसा उसके दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार समस्त जौली प्रदेश अधिकार में आ गया और उसी वर्ष शिवाजी ने प्रतापगढ़ नामक एक नये दुर्ग का निर्माण कराया। इसके दो वर्ष के पश्चात् शिवाजी ने मूरेश्वर और त्रिमूलपिङ्गली को पेशवा बनाया और समस्त कङ्कणप्रदेश को विजय करने के लिए बहुत सी सेना एकत्रित की।

इस बार विजयपुर के सुलतान ने निश्चय कर लिया कि अब शिवाजी को एक बारगी ध्वंस कर डालना चाहिए। सन् १६५६ ई० में अबुलफ़ज़ल नामक एक प्रसिद्ध योद्धा ने ५००० सवार और ७००० पैदल और बहुत सी कमानों के साथ शिवाजी पर चढ़ाई की और उसने बड़े गर्व से प्रकाशित किया कि बहुत जल्दी शिवाजी को पकड़ कर उसे बेड़ियों से जकड़ दूँगा और सुलतान के पाये तख़ के सामने पेश करूँगा।

इतनी बड़ी सेना से लड़ाई करना शिवाजी ने उत्तम नहीं समझा और सन्धि करने के लिए प्रस्तुत हो गये। अबुलफ़ज़ल ने गोपीनाथ नामक एक ब्राह्मण को शिवाजी के पास भेजा। प्रतापगढ़ के क़िले में भरी सभा के बीच शिवाजी गोपीनाथ से

मिले। परस्पर बहुत सी बातें हुई, पश्चात् रात बिताने के लिए शिवाजी ने उन्हें एक मकान में ठहरा दिया।

रात के समय शिवाजी गोपीनाथ से मिलने आये। शिवाजी बातचीत करने में बड़े निपुण थे। उन्होंने या प्रकार से गोपीनाथ को समझाने बुझाने के लिए कहा कि आप ब्राह्मण हैं, हमारे श्रेष्ठ हैं, परन्तु हमारी बातों को ज़रा सुनिए। हम जो कुछ करते हैं वह समस्त हिन्दू जाति के हित के लिए करते हैं, स्वंय भवानी ने हमको ब्राह्मण, गोवत्सादि की रक्षा के लिए उत्तेजित किया है, हिन्दू देवालयों के निग्रह-कारियों को दण्ड देने के लिए आज्ञा दी है और हिन्दू धर्म के शत्रुओं के विरुद्धाचरण करने के लिए आदेश किया है। आप ब्राह्मण हैं। भवानी की आज्ञाओं का समर्थन कीजिए और अपने जातीय और स्वधर्मीय राज्य में रहकर स्वच्छन्द होकर विचरण कीजिए।

गोपीनाथ ने इन कथनोपकथन से तुष्ट होकर शिवाजी को सहायता देना स्वीकार कर लिया। कार्य्य सिद्ध होने के लिए यह निश्चय हो गया कि अबुलफ़ज़ल को किसी न किसी जगह शिवाजी से अवश्य मिल जाना चाहिए।

कई दिनों के बाद प्रतापगढ़ दुर्ग के निकट मुलाकात हो गई। अबुलफ़ज़ल ने १५०० सवारों को क़िले के पास खड़ा करा दिया, और ख़ुद पीनस में चढ़कर केवल एक नौकर के साथ शिवाजी से मिलने चला आया। शिवाजी उस दिन बड़ी पूजा और अर्चना के पश्चात निश्चित घर में अबुलफ़ज़ल से मिलने आया। चलते समय स्नेहमयी माता के चरण पर सिर

रखकर उनके आशीर्वाद से विभूषित हो लिए थे कुर्ती और मिर्ज़ई को पहन लिया और उसके नीचे तीक्ष्ण छुरी को भी छिपा लिया। कुछ देर के बाद शिवाजी क़िले से बाहर हुए और अपने बाल्यकाल के मित्र तन्नजी और मालश्री को साथ लेकर अबुलफ़ज़ल से मिलने चले। सहसा आलिंगन के बहाने तेज़ छुरी द्वारा मुसलमान को ज़मीन पर गिरा दिया तत्पश्चात् शिवाजी की सेना ने अबुलफ़ज़ल की सेना को मार भगाया और बहुत से क़िलों को शिवाजी ने अपने क़ब्ज़े में कर लिया। शिवाजी की फ़ौज विजयपुर के राजमहलों के सामने तक लूटमार करती चली गई।

विजयपुर के साथ इस प्रकार तीन वर्ष तक और लड़ाई ठनी रही, परन्तु किसी पक्ष को विजयलाभ नहीं हुआ। सन् १६६२ ई० के अन्त में शाहजी ने मध्यस्थ बनकर शिवाजी और विजयपुर में परस्पर का सन्धि-स्थापन करा दिया। शाहजी जब शिवाजी को देखने आये थे, उस समय शिवाजी ने पितृ-भक्ति की पराकाष्ठा कर दिखाई थी। अपने घोड़े से उतर कर राजा के तुल्य उनका अभिवादन किया था। पिता की पीनस के साथ साथ पैदल दौड़ते चले आते थे और उनके कहने पर भी उनके सम्मुख आसन पर नहीं बैठ सके। पुत्र के पास कई दिन रह कर शाहजी बड़े अनन्दित हुए और तत्पश्चात् विजयपुर जाकर दोनों में संधि करा दी। शिवाजी ने पिता की स्थापित संधि के कभी विरुद्धाचरण नहीं किया, और उनके जीवन पर्य्यंत फिर विजयपुर से कोई लड़ाई नहीं हुई। परन्तु शाहजी की मृत्यु के पश्चात् जो लड़ाई विजयपुर से हुई उसमें शिवाजी आक्रमणकारी नहीं थे।

सन् १६६२ में यह संधि स्थापित हुई थी। पहले ही कह आये हैं कि उसी साल मुग़लों से भी लड़ाई प्रारम्भ होगई थी। अब हमारी आख्यायिका भी उसी समय से प्रारम्भ हो रही है। मुग़लों की लड़ाई के प्रारम्भकाल में शिवाजी के अधीन समस्त कंकण देश था और उनके पास ७ हज़ार सवार और ५ हज़ार पैदल सेना थी। शिवाजी उस समय २५ वर्ष के थे।

नवाँ परिच्छेद

शुभकार्य्य-संपादन

सूर्य्य भगवान् अस्ताचलचूडावलम्बी हुए हैं। सिंहगढ़ के दुर्ग के भीतर चुपचाप सेना सज्जित हो रही है। दुर्ग के बाहर के मनुष्य यह नहीं जान सकते कि क़िले में क्या हो रहा है।

क़िले के एक ऊँचे टीले पर कई एक बड़े योद्धा खड़े हैं। इस टीले से बड़ा मनोहर दृश्य देखा जाता है। पूर्व की ओर सुन्दर नीरा नदी बह रही है। उसके तटस्थ जंगली वृक्ष वसंत-ऋतु की कृपा से फूले नहीं समाते। चारों ओर नये खिले हुए पुष्पों और दुर्वादलों की शोभा प्रकाशमान है। उत्तर की ओर विस्तृत भूमि पड़ी है और उसकी हरियाली सूर्य्य की किरणों से सोने का समुद्रकी प्रतीति हो रही है। बहुत लम्बा चौड़ा बसा हुआ पूना शहर भी अपना गौरव जता रहा है और योद्धागण प्रायः उसी ओर देख रहे हैं और दिलमें यह विचार रहे हैं "देखना है कि आज इस शहर के भीतर कौन सी घटना घटित होती है और इसी चिंता में वे सब निमग्न हैं। दक्षिण की ओर जहाँ तक नज़र उठाकर देखते हैं पहाड़ ही पहाड़ दीख पड़ता है। पहाड़ की चोटियाँ छिपते हुए सूर्य्यभगवान् की किरणों से बड़ी अपूर्व शोभा प्राप्त कर रही हैं। परन्तु हमारा

विश्वास है कि योद्धागण पर्वत के इस मनोहर दृश्य को नहीं देख रहे हैं, किन्तु उन्हें कुछ और ही चिन्ता है।

जिस बड़े साहस अथवा युद्ध की तैयारी हो रही है वह कोई महान् कार्य्य है। जब मनुष्य किसी ऐसे कार्य्य में तत्पर होनेवाला होता है कि कार्य्य सिद्ध होने पर वह आजन्म स्वच्छन्दता से रहेगा अथवा निहत होने पर उसकी जीवन-आशा समूल नष्ट होने की सम्भावना होती है तब धैर्य्यवान् मनुष्य का साहस रुक जाता है। आज या तो शाइस्ताख़ाँ मारा जायगा और मुग़लों की सेना पराजित होकर महाराष्ट्रदेश से निकल भागेगी, अथवा महाराष्ट्र-जीवनसूर्य्य सर्वदा के लिए अस्त हो जायगा और भारतवर्ष में स्वराज्य की आशा जड़मूल से विनिष्ट हो जायगी ? इसी प्रकार की चिन्ता से आज शिवाजी भी चिंतित हैं। जब योद्धा योद्धा की ओर देखता है तब उसकी आन्तरिक भावना छिपी नहीं रहती। केवल बीस अथवा पच्चीस मात्र सेना लेकर शिवाजी शत्रुकी सेना में प्रवेश करेंगे,यह एक भीषण कार्य्य है। इसमें सन्देह है कि इसके पहिले भी शिवाजी ने ऐसा कार्य्य किया है। किस योद्धा के मस्तक और ललाट से क्षण भर के लिए मेघाच्छन्न नहीं हो गया ?

उस वीर मौली सेना के मध्य में वह दूरदर्शी मूरेश्वर त्रिमूल पेशवा थे। मूरेश्वरजी ने अल्पवयस ही से शिवाजी के पिता शाहजी की अध्यक्षता में युद्ध का कार्य्यसंपादन किया था। उसके पश्चात् शिवाजी के अधीन रहकर प्रताप-गढ़ जैसे चमत्कारी-दुर्ग को बनवाया था। बारही वर्ष के भीतर भीतर पेशवा का पदप्राप्त कर लिया और तत्पश्चात्

अपने पद के कार्य्य-साधन में बड़ी क्षमता का प्रकाश किया। अबुलफ़ज़ल की जब शिवाजी ने हत्या की थी सूरेश्वर ही ने उसकी सेना पर आक्रमण करके उसे मार भगाया था। मुसलमानों से युद्ध आरम्भ होने के अवसर से वही पैदल सेना के सेनापति थे। सूरेश्वरजी युद्ध के समय साहसी, विपद्काल में स्थिर और अविचलित, परामर्श देने में बुद्धिमान् और दूरदर्शी थे और उनकी अपेक्षा कार्य्यदक्ष और प्रकृतबन्धु शिवाजी का और अन्य कोई नहीं था।

आवाजी स्वर्णदेव शिवाजी के एक दूरदर्शी और युद्धकुशल ब्राह्मण थे। उनका प्रकृत नाम नीलपन्त स्वर्णदेव था, परन्तु आवाजी के नाम से विख्यात थे। उन्होंने सन् १६४८ ई० में कल्याण दुर्ग और कल्याणी प्रदेश को हस्तगत किया था और सम्प्रति रायगढ़ के प्रसिद्ध दुर्ग का निर्माण कराना आरम्भ कर दिया था।

प्रसिद्ध अन्नजी दत्त भी सिंहगढ़ के दुर्ग में आज उपस्थित थे। चार वर्ष हुए कि उन्होंने पवनगढ़ नामक दुर्ग को हस्तगत किया था और उनकी गणना शिवाजी के प्रधान अधिकारियों में है।

सवारों के सेनापति निताई आज सिंहगढ़ में नहीं थे। वे किसी प्रकार से पहुँच कर मुग़लों की उस सेना को जो औरंगाबाद और अहमदनगर में पड़ी थी हरा आये थे जिसको कि हमारे पाठक चाँदख़ाँ की ज़बानी शाइस्ताख़ाँ की मजलिस में सुन चुके हैं। इस समय सिंहगढ़ से एक छोटे नायक के अधीन थोड़ी संख्या में सवारों की सेना थी।

पूर्व परिच्छेद में शिवाजी के तीन मौली जाति के बाल्य-काल के सखाओं का वर्णन हो चुका है, जिनमें तीन वर्ष हुए कि बाजी फसलकर का देहान्त होगया, परन्तु आजके दिन तन्नजी मालश्री और यशजी कान्ह सिंहगढ़ के क़िले में मौजूद हैं। इन्हें बाल्यकाल का सौहार्द, यौवनावस्था का विषम साहस अभी तक विस्मृत नहीं हुआ है। सैकड़ों बार माउली सेना लेकर शिवाजी के साथ हज़ारों बार पहाड़ों पर चढ़े हुए हैं।

सूर्य्य अस्त हो गया। सन्ध्या की छाया धीरे धीरे जगत् में प्रवेश कर रही है। वह वीरमंडली अबतक कोठे के ऊपर खड़ी है, कि इतने में शिवाजी वहाँ आगये। उनका मुखमंडल गम्भीर और दृढ़ प्रतिज्ञा से युक्त था। भय का लेश मात्र भी दृष्टि नहीं आता था। वह अपने वस्त्रों के नीचे बख़्तर और अस्त्र लगाये हुए थे। प्रतीत होता था कि आज की रात में वह कोई असम साहस का कार्य्यसाधन किया चाहते हैं। इस वीर के नयनद्वय उज्ज्वल, और दृष्टि स्थिर और अविचलित थी।

शिवाजी ने कहा—"भाई! सब ठीक है, चलो चलें।"

मूरेश्वर ने कहा—"क्या आपने यह निश्चय कर लिया है कि आज की रात में स्वर्णदेव, या अन्नाजी अथवा मैं आपके साथ नहीं जाने पावेंगे? महात्मन्! विपद्काल में कब हम लोगों ने साथ छोड़ दिया है?"

शिवाजी—"पेशवाजी! क्षमा कीजिए, और अनुरोध मत कीजिएगा। आपका साहस, विक्रम और आपकी विज्ञता हमसे छिपी नहीं है किन्तु आज क्षमा कीजिए। भवानी के आदेश से आज हमने विषम प्रतिज्ञा की है। आज मैं ही उस कार्य्य

का साधन करूँगा नहीं तो इन अकिञ्चनकर प्राणों को नहीं रक्खूँगा। आप आशीर्वाद कीजिए कि जयलाभ हो; किन्तु यदि अमङ्गल हो, अथवा कार्य्यसाधन में मेरे प्राण चले जायँ तो भी आप तीनों महाशयों के होते हुए महाराष्ट्रदेश को कोई क्षति नहीं पहुँचेगा। यदि आप लोग भी मेरे साथ प्राण दे देंगे तो देश किसकी बुद्धि-बल से रहेगा? स्वाधीनता को फिर कौन स्थापित करेगा? हिन्दूगौरव की रक्षा कौन करेगा? अतः यात्राकाल में अब और कुछ न कहिए।

पेशवा ने समझ लिया कि अब और कुछ कहना वृथा है। वे और कुछ न बोले। शिवाजी ने पेशवा को सम्बोधन करके कहा—"प्रिय मूरेश्वर! आपने पिताजी के निकट काम किया है। आप मेरे पिता के तुल्य हैं, आशीर्वाद दीजिए आपके आशीर्वाद से जय होगा। ब्राह्मण का आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता। आबाजी! अन्नजी! आशीर्वाद दीजिए, मैं कार्य्य के निमित्त प्रस्थानित होता हूँ।"

मूरेश्वर, आबाजी और तन्नजी ने सजल नयनों से आशीर्वाद दिया, तत्पश्चात् शिवाजी ने अपने मौउली सुहृद् तन्नजी और यशजी को संबोधन करके कहा, "बाल्य सुहृद्! आज्ञा दीजिए।"

तन्नजी—"प्रभो! किस अपराध के कारण मुझे आप अपने संग नहीं ले चलते हैं? वह किस रात की बात है अथवा वह कौन सा दुर्ग है कि जिसके विजय करने में मैं साथ नहीं था? पहली वार्त्ता स्मरण करके देखिए, कंकणदेश में आपके साथ कौन भ्रमण कर रहा था? पहाड़ों की चोटियों पर, तलहटियों में, पर्वतों की कन्दराओं में, नदियों के तीर में कौन आपके साथ रहकर शिकार कराता था? रात के समय कौन दुर्गों के विजय का परामर्श किया करता था? विचार करके देखिए; यशजी,

मृत वाजी और यही दास-तन्नजी यही तीनों रहते थे। वाजी प्रभु के कार्य्य करने में हत हुआ था; हमारी उससे अन्य और कोई इच्छा नहीं है। आज्ञा दीजिए मैं भी आप के साथ चलूँ कि जिस में जयलाभ होने पर प्रभु के आनंद से आनन्दित होऊँ और यदि, प्रभु विनष्ट हों तो हमारा यहाँ का जीता रहना वृथा है। हमें यह नहीं सूझता कि मैं जीवित रह कर राज्य का कैसे कार्य्य ठीक कर सकूँगा। आशा है कि आप अपने बाल्यकाल के सहृदय को वंचित नहीं करेंगे।

शिवाजी ने देखा कि, तन्नजी की आँखों में जल भर आया है। अतः मुग्धभाव से शिवाजी ने तन्नजी और यश जी को आलिंगन करके कहा "भ्रातः! मोरे पहिं अदेय कछु तोरे" शीघ्र रण के लिए तैयरी करदो।

पत्पश्चात् शिवाजी ने अन्तःपुर में प्रवेश किया। दुःखिनी-जीजी अकेली बैठी हुई चिन्ता कर रही है, और देवी से प्रार्थना कर रही है "माता! पुत्र को आजकी विपदों से रक्षित रखिए, कि उसी समय शिवाजी आकर बोले—"माता! आशीर्वाद दीजिए, जाना चाहता हूँ।"

जीजीबाई ने स्नेहमयी स्वर में कहा—"वत्स! आ एकबार मुझे प्यार करलूँ। कब तेरी विपदायें शेष होंगी और यह दुःखिनी शोक और चिंता से विमुक्त होगी।"

शिवाजी—"माता! आपके आशीर्वाद से कब नहीं विपदों से उद्धार हुआ? और किस युद्ध में जयलाभ नहीं हुआ?"

जीजीबाई—"वत्स! दीर्घजीवी हो, ईशानी तुम्हारी रक्षा करें" इतना कहकर माता ने शिवाजी के मस्तक पर स्नेहमयी हाथ फेर दिया और आँखों से टपटप आँसू चूने लगे।

शिवाजी ने सबसे विदा लेली थी; परन्तु अब तक उनकी दृष्टि स्थिर और स्वर कंपित था, और अधिक न सँभाल सके, दोनों नेत्र डबडबा आये और गद्गद स्वरों में कहा—"माता, तुम्हीं हमारी ईशानी हो, आपही की भक्तिभाव से आजन्म सेवा करूँगा, आपही के आशीर्वाद से सारी विपदों से मुक्त हूँगा।"

वृद्धा जीजी ने बहुत अश्रुपात करके शिवाजी को विदा किया और कहने लगीं—"वत्स! हिन्दूधर्म्म के जय का साधन करो। स्वयं महादेव शम्भु तुम्हारी रक्षा करेंगे। हमारे पितृकुल देवगढ़ के अधिपति थे, हिन्दू धर्म्मावलम्बी थे। वत्स! मैं आशीर्वाद देती हूँ तुम महाराष्ट्रदेश के राजा हो, और दाक्षिणात्य लोग हिन्दूधर्म अवलम्बन करें।

समस्त सेना सजी सजाई तय्यार है। शिवाजी चुपचाप घोड़े पर चढ़ गये और सारी सेना क़िले के दरवाज़े की ओर चलने लगी।

क़िले से बाहर होते ही समय, एक अति अल्पवयस्क योद्धा ने शिवाजी के सामने आकर शिर नवाया। शिवाजी ने उसे पहचान लिया और जिज्ञासा की—"रघुनाथजी हवलदार! इस समय तुम्हारी क्या प्रार्थना है?"

रघुनाथ—प्रभु! उस दिन जब कि मैंने तोरणदुर्ग से पत्रादि लाकर दिया था उससे आपने प्रसन्न होकर कुछ पुरस्कार देना स्वीकार किया था। शिवाजी—"हाँ, क्या आज इस कठिन कार्य्य के प्रारम्भ में पुरस्कार लेने आये हो?"

रघुनाथ—मैं यही पुरस्कार चाहता हूँ कि आज मुझे भी अपने साथ ले चलिए, और जब २५ मौली सेना के साथ आप

पूना नगर में प्रवेश करेंगे, यह दास भी साथ ही रहेगा, यही इच्छा है।

शिवाजी—राजपूतबालक ! क्यों इच्छापूर्वक इस संकट में फँसते हो ? तुम छोटे हो, तुम्हारा अधिकार भी प्राण देने का नहीं है।

रघुनाथ—राजन् ! आपके साथ रहकर प्राण दूँगा, फिर इस दशा में संसार में कोई रोने वाला भी हमारा नहीं है और यदि समर में आपका कार्य्य तिलमात्र भी साध सका तो अपने को अमर समझूँगा। इस प्रकार चलने में उभयपक्ष का लाभ है।

रघुनाथ के वही काले काले घुँघराले भ्रमरविनिंदित केश-गुच्छ आँखों के ऊपर छिटके हैं। बालक के सरल, उदार मुख-मंडल पर वीरों की शोभा देने वाली प्रतिभा विराजमान है। अल्पवयस्क योद्धा की इस कथा को सुनकर और उसके उदार मुखमंडल को देखकर शिवाजी परम संतुष्ट हुए। उन्होंने सेना दल में सम्मिलित होने की उसे आज्ञा दे दी। रघुनाथ सिर को झुकाकर तुरंत घोड़े पर चढ़ लिया।

सिंहगढ़ से लेकर पूना पर्य्यन्त समस्त पथों पर शिवाजी की सेना बैठ गई। ज्यों ज्यों सायंकालीन अंधकार जगत् में प्रविष्ट होता गया त्यों त्यों शिवाजी की सेना अपना अधिकार करती गई। यदि इस अवसर पर एक भी दीपक जलता अथवा कोई शब्द होता, तुरंत सारी करतूत पूनावालों को प्रकाशित हो जाती, सुतरां निःशब्द अंधकार में सैन्य-सन्निवेशन करने लगी। यह कार्य्य समाप्त हुआ। रजनी ने जगत् में गाढ़ अंधकार का विस्तार किया। शिवाजी, तन्नजी और यशजी सहित २५ सैनिकों

को लेकर पूना के निकट एक बाग़ में छिप गये। रघुनाथ छाया की भाँति अपने प्रभु के पीछे पीछे था।

अधिक अंधकार के कारण वह आम का बाग़ छिप गया। संध्या समय का शीतल वायु वह कर बाग़ में मरमर शब्द को उत्पन्न कर रहा था। रात हो जाने के कारण पूना के लोग बाग़ से हो होकर नगर में जारहे थे, परन्तु उनके निविड़ अंधकार के अतिरिक्त उन्हें और कुछ नहीं सूझता था, और न मरमर शब्द के विभिन्न कुछ सुनाई पड़ता था।

क्रमानुसार पूना नगर का गोलमाल निस्तब्ध हुआ, लोगों के घरों में दीपक जलने लगा। निस्तब्ध नगर से केवल चौकी दारोंकी आवाज़ कभी कभी सुनाई देती थी अथवा वायु केझोंकों के समान शृगालों का चिल्लाना भी सुन पड़ता था। सहसा चूँ चूँ का शब्द हो उठा कि शिवाजी का हृदय भी एक बारगी उमड़ आया और उसी ओर देखने लगे। गली के भीतर शब्द होता था, इस कारण नगर के बाहर बालकों को दिखाई नहीं पड़ता था।

चूँ०, चूँ० चूँ० का फिर शब्द हुआ। फिर शिवाजी उसी ओर देखने लगे। बहुत से दीपक जलाते हुए लोग इसी तरफ़ आरहे थे। यही बरात है!

बरात पास आगई। पूना के चारों ओर खाईं अथवा प्राचीन (शहरपनाह) नहीं है इससे वह अस्पष्ट रूप से दीख पड़ता है। बरात के साथ विविध प्रकार के बाजे बज रहे थे। साथ ही सवार भी थे परन्तु पैदलों की संख्या अधिक थी।

शिवाजी ने चुपचाप अपने बाल्य सुहृद तन्नजी और यशजी को गले से लगा लिया। एक दूसरे की ओर देखने लगा। यही भाव प्रत्येक के अन्तःकरण में जागृत हो आया और नयनों में

आँसू भर आये, किन्तु शब्द निकालना अनावश्यक था। उसी निःशब्दावस्थामें शिवाजी और उसके साथीगण वरात में मिलगये।

वराती लोग शाइस्ताख़ाँ के महलों के पास ही से होकर जाने लगे। महल की ललनायें झरोखों से होकर वाजेगाजे का अवलोकन करने लगीं। धीरे धीरे यात्रीगण चले गये। कामिनी भी महलों में सोने चलीं गईं, परन्तु यात्रियों में से २५ मनुष्य ख़ाँसाहिव के घरके पास ही छिपरहे जिनको कि किसी ने भी नहीं देखा। धीरे धीरे वरात का जुलूस भी बन्द हो गया।

रजनी और भी गम्भीर होती गई। शाइस्ताख़ाँ के शयनागार में एक खिड़की थी। उसी में धीरे धीरे कुछ शब्द होने लगा। ख़ाँ साहिव के घर की अधिकांश स्त्रियाँ निद्रित थीं अथवा कोई ऊँघ भी रही थी। इसी कारण उन लोगों ने उस शब्द को सुनकर भी उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

एक ईंट, फिर एक ईंट इसी प्रकार इटों पर ईटैं खिसकने लगीं। हटात् चोर! चोर!! कह कर स्त्रियाँ चिल्लाने लगीं, फिर उन्होंने जो चिराग़ लेकर देखा तो सहम गईं। "एक के पीछे एक योद्धा चीटियों की भाँति घर में घुसे चले आ रहे हैं।" फिर क्या था, शोर शरावा मच गया शाइस्ताख़ाँ भी जग पड़ा और उसे लोगों ने इस आपत्ति की सूचना दी।

कहाँ तो ख़ाँसाहिव ख़्वाव देख रहे थे—कि शिवाजी सामने खड़ा हाथ वाँधे सुलह का मुलतजी है, कहाँ एकवारगी चौंककर जगने पर क्या मालूम होता है "शिवाजी ने पूना को अपने अधिकार में कर लिया है और अव उसके घरपर चढ़ आये हैं!

भागने की सुविधा के लिए ख़ाँसाहिब एक दरवाज़े की ओर निकल गये, परन्तु देखते क्या हैं कि वहाँ एक योद्धा बर्च्छा लिए हुए खड़ा है। दूसरे दरवाज़े को भागे। वहाँ भी वही दशा देखी। जब उन्होंने देखा कि समस्त द्वार रुद्ध है। खिड़की की राह से भागना चाहा कि उसी समय उन्होंने सुना "हर हर महादेव।" पास का मकान महाराष्ट्र-योद्धागणों से भर गया।

बापरे बाप ख़ाँसाहिब का घर लुट गया इस प्रकार का गुल मच गया। राजमहलों के रक्षकगण सहसा आक्रांत होकर हत-ज्ञान हो गये, बहुसे हताहत हुए, परन्तु फिर भी स्वामी की रक्षा के लिए बहुत लोग दौड़े दौड़े आगये और उन २५ माउली को चारों ओर से घेर लिया।

थोड़ी ही देर में भीषणरूप से वह महल परिपूरित हो गया। चिराग़ जलाया गया, परन्तु अंधकार में माऊलीगण चीत्कार करके युद्ध करने लगे। अन्धकार ही में हिन्दू मुसलमान लड़ रहे हैं। दरवाज़ों से झनझनाने का शब्द हो रहा है। आक्रमण-कारियों की ओर से धीरे धीरे खिलखिलाने का शब्द हो रहा है। आहत लोग आर्तनाद कर रहे हैं। सारांश यह कि सारा प्रासाद इन्हीं शब्दों से परिपूर्ण है। उसी समय शिवाजी हाथ में बर्च्छा लिए हुए योद्धाओं के बीच में आ खड़े हुए, "हर हर महादेव" कहकर लोग चिल्लाने लगे। साथ ही माऊलीगण हुंकार देने लगे। मुग़लों के पहरीगण भाग खड़े हुए, अथवा सब के सब हतआहत हुए। शिवाजी भीषण बर्च्छाघात से द्वार को तोड़कर शाइस्ताख़ाँ के शयनागार में घुस गए।

सेनापति की रक्षा के लिए कई एक मुग़ल उस घर में दौड़कर पहुँच गये। शिवाजी ने देखा कि सामने मृत चाँदख़ाँ

का विक्रमशाली पुत्र शमशेरख़ाँ खड़ा है। पिता यद्यपि अपमानित होकर प्राण-त्याग कर गया है तथापि पुत्र उसी स्वामी की रक्षा के लिए प्राण त्यागने को प्रस्तुत होकर अग्रसर है। शिवाजी एक क्षणभर खड़े रहे, फिर खड्ग निकाल कर कहा, "युवक! तुम्हारे पिता की हत्या करके इस समय मेरा हाथ कलुषित है। अतः हम तुम्हें मारना नहीं चाहते, रास्ता छोड़ दो।"

शमशेरख़ाँ ने उत्तर नहीं दिया परन्तु उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। शिवाजी को आत्मरक्षा करने का भी अवकाश नहीं मिला कि उसके पूर्व ही शमशेर ख़ाँ का उज्ज्वल खड्ग उनके सिरपर आगया।

शिवाजी ने मुहूर्त भरके लिए जीवन की आशा त्यागकर भवानी का नाम लिया, सहसा देखा कि पीछे से एक बर्छी ने आकर खड्गधारी को भूतलशायी कर दिया। पीछे फिर कर जो देखा, रघुनाथजी हवलदार!

शिवाजी—"हवलदार! तुम्हारा यह कार्य्य हमें आजन्म विस्मृत नहीं होगा"। केवल इतनाहीं कह वह आगे बढ़ गये।

इसी समय झरोखे में रस्सी डाल कर शाइस्ताख़ाँ नीचे उतर रहा था। कई एक माऊलीगण उस झरोखे की ओर बढ़े। उनमें से एक ने खड्ग का आघात किया, जिससे शाइस्ताख़ाँ की एक उंगली कट गई, परन्तु शाइस्ताख़ाँ ने फिर पीछे मुड़ कर नहीं देखा और भाग निकला, परन्तु उसका लड़का अबुलफ़तह और सारे प्रहरी निहत हुए। उस समय शिवाजी ने देखा कि सारा घर और बरण्डा रक्त से रञ्जित हो रहा है। जगह जगह

पर चौकीदार मरे पड़े हैं। स्त्रियों और बालकों के आर्तनाद से प्रासाद परिपूर्ण हो रहा है । मऊलीगण मुग़लों को ध्वंस करने के लिए चारों ओर दौड़ रहे हैं । मशालों से हताहतों की दशा साफ़ मालूम पड़ने लगी। किसी का शिर अलग पड़ा है,कोई रक्त में सराबोर है, कोई मारे आघातों के पहिचाना नहीं जाता, रक्त की नाली बह रही है। ऐसी दशा देख कर शिवाजी ने माऊली गणों को अपने पास बुलाया । सभी अवसरों पर शिवाजी के योद्धाओं ने जयलाभ किया था परन्तु वृथा प्राण नाश होते हुए देख कर शिवाजी विरक्त हो उठे और उन्होंने सब को संबोधन करके कहा—"अब व्यर्थ और हत्या न की जाय । हमारा कार्य्य सिद्ध हो गया । भीरु शाइस्ताख़ाँ भाग गया, अब वह हमारे साथ लड़ाई नहीं कर सकता । अब जल्दी से सिंहगढ़ चलना चाहिए ।"

अंधकारमय रजनी में शिवाजी अनायास ही पूना से निकल कर सिंहगढ़ की ओर दौड़ने लगे । जब दो कोस निकल आये तब मशाल के जलाने की आज्ञा दी । बहुत सारे मशाल जलने लगे । पूना से शाइस्ताख़ाँ ने देखा—महाराष्ट्रों की सेना निरापद सिंहगढ़ को चली जा रही है ।

दूसरे दिन कुछ मुग़लों ने सिंहगढ़ पर चढ़ाई कर दी, किन्तु लड़ने को कौन कहे थोड़े थोड़े गोलों में भागने लगे । कर्ताजी गुज्जर और उनके अधीन महाराष्ट्रीय सेना, और सवारों ने बहुत दूर तक मुग़लों का पीछा किया ।

साहसी योद्धागणों को युद्ध की पिपासा और बढ़ गई, किन्तु शाइस्ताख़ाँ उस प्रकार का वीर नहीं था । उसने औरङ्ग़ज़ेब के नाम एक ख़त लिखा; और अपनी सेना की उसमें

यथेष्ट निन्दा का और यशवंतसिंह का शिवाजी की ओर हो जाने का भी उल्लेख किया। औरङ्गज़ेब ने सब बातों को सोच समझ लिया। दो सेनानायकों को अकर्म्मण्य विवेचना देकर अपने पुत्र को सुलतान मवज्ज़म साथ दक्षिण की लड़ाई पर भेजा और फिर उनकी सहायता के लिए यशवंत को दोबारा भेजा।

इसके एक साल बाद तक कोई लड़ाई नहीं हुई। सन् १६६४ ई० के आरम्भ ही में शिवाजी के पिता का शरीरान्त हो गया। श्राद्धादिकार्य्य सिंहगढ़ ही में समापन करके वे रायगढ़ चले गये, वहाँ राजा की उपाधि ग्रहण करके अपने नाम का रुपया ढलवाया था। अब हम अपने इस नये राजा से यहाँ विदा लेते हैं।

पाठकगण! बहुत दिन हो गये, तोरणदुर्ग की कोई ख़बर नहीं मिली, आइए वहीं चलें और देखें, वहाँ क्या हो रहा है।

दसवाँ परिच्छेद

आशा

जिस दिन से रघुनाथ तोरण दुर्ग से वापस आये हैं उसी दिन से उनके हृदय में प्रेम की विकाश हो गया है। इस प्रेम का भाजन वही बालिका है। उधर सरयूबाला ने जब उद्यान में सन्ध्या के समय रघुनाथ को देखा था तभी से वह अपने देशीय युद्धभेषधारी युवक के प्रेम में तन्मयी हो गई है। अभी तक उसके हृदय-पट पर उदार वदन-मण्डल, घूँघरवाले बाल अङ्कित हैं। रह रह कर वह पिछली बातों का ध्यान करती है।

पाठकगण! आइए, हम उस दिन की बातें सुना दें। "जब उस रात को सरयूबाला अपने देशीय तरुण-योद्धा को भोजन करा रही थी तब आप भी पास ही बैठी, उसके देव-निन्दित अवयवों को देख रही थी। जब चार आखें हुईं लज्जा-वन वदना धीरे धीरे खिसक गई।

जाने को तो खिसक गई परन्तु उसके हृदय में एक नूतन-भाव का अविष्कार हो गया। रघुनाथ ने क्यों मेरी ओर सोद्वेग दृष्टि की है? क्या रघुनाथ ने स्वदेशीय बालिका के ऊपर स्नेह-सहित नयनक्षेप किया है? क्या उसने वास्तव में मेरा आदर किया है?

दूसरे दिन फिर उसने तरुण-योद्धा को देखा था। फिर उसके हृदय में उद्विग्नता हो उठी थी। फिर जब उसने रघुनाथ की आनन्दमयी बातों को सुना और रघुनाथ ने अपने हाथों से उसके गले में कण्ठमाला पिन्हा दी तब फिर बालिका का शरीर सिहरा उठा था, हृदय आनन्दित हो गया था। जब विदा होकर योद्धा घोड़े पर सवार होकर चलने लगा तब सरयूबाला उसे जङ्गले की राह से देखती थी।

बहुत देर तक बालिका खिड़की ही में बैठी थी। अश्व और अश्वारोही चले जा रहे थे, परन्तु बालिका उधर ही टकटकी लगाये थी। दीवारों की भाँति पर्वतों की अनेक श्रेणियाँ बहुत दूर तक फैली हुई देख पड़ती थीं, पर्वत-वृक्षसमूह वायु के वेग से समुद्र के तुल्य लहराते थे। ऊपर पहाड़ों की चोटियों से जगह जगह पर जलप्रपात और झरने गिर रहे थे, जिनके जल से एक सुन्दर और स्वच्छ नदी वह रही थी। नीचे मनोहर जङ्गलों के बीच में हरियाली की अजब बहार थी। नदी के जल में सूर्य्य की किरणों से हरियाली का विम्ब बड़ा ही शोभायमान हो रथा था। इन सब प्राकृतिक दृश्यों के होते हुए भी सरयूबाला कुछ और ही देख रही थी।

सरयूबाला उस दिन अनाहार ही रह गई थी। सन्ध्या के समय पिता को भोजन करा उनकी शय्या को ठीक करने के पश्चात् वह धीरे धीरे अपने शयनागार में चली गई। निस्तब्ध रजनी में उठकर सरयूबाला फिर उसी झरोखे में आ बैठी थी और वहीं बैठी बैठी चन्द्रावलोकन करने लगी।

—o—

ग्यारहवाँ परिच्छेद

चिन्ता

जनार्दनदेव स्वभाव ही से सरल मनुष्य थे। सारा दिन शास्त्र-विचार और देव-पूजा में व्यतीत होता था। प्रभात और सायंकाल क़िलेदार के पास मिलने जाया करते थे और शायद ही कभी घर भी रह जाया करते थे। वे पालित कन्या को बड़ा प्यार करते थे। यहाँ तक कि यदि भोजन करते समय सरयूवाला वहाँ नहीं होती तो जनार्दनदेव आहार भी नहीं करते। रात के समय कभी शास्त्र की बातें कहते और सरयूवाला बैठकर उसे बड़े चाव से सुना करती थी। अब तक वह अपने में रत थी, परन्तु एक दिन उसके हृदय में एक नूतनभाव उत्पन्न हुआ था। भला उसे जनार्दनदेव किस प्रकार जान सकते थे?

वालिका के हृदय में सहसा एक दिन जो भाव उत्पन्न हुआ था वह अधिक काल के लिए स्थायी नहीं था, परन्तु फिर भी वह एकबार ही लीन नहीं हुआ, कभी कभी उसी तरुण, उसी योद्धा की कथा सरयूवाला के हृदय में जागृत हो जाया करती थी। विशेष रीति पर जन्मकाल ही से सरयूवाला अकेली थी, जनार्दनदेव के अतिरिक्त उसने और किसी अपने आत्मीय को देखा ही नहीं था, और न किसी अन्य व्यक्ति को जानती ही थी। उसके वाल्यकाल की अवधि, धीर, शान्त और चिन्तन शीलता की थी। प्रथम यौवनावस्था की तरङ्गें अब उसे गुदगुदाने लगीं।

एक दिन सरयूबाला का हृदय उसी प्रेम से उमड़ आया। तबसे वह सायंकाल प्रभात और अन्धेरी रात में भी उसी मूर्ति का प्रेम हृदय में छिपाने लगी।

कल्पना बड़ी मायाविनी होती है। अकेले में सरयूबाला जब कभी जंगले में बैठ जाती, अथवा रात के समय फुलवाड़ी में जाकर चन्द्रावलोकन करती, तभी उसके हृदय में कल्पना का समुद्र तरंगें लेने लगता। वही तरुणयोद्धा, वही उसके युद्ध के उल्लास, दुर्ग के हस्तगत करने की लालसा, और शत्रुओं के नाश करने की इच्छा एक एक करके सामने आजातीं। फिर सरयू यह सोचती कि क्या इन उत्साहों के होते हुए भी वह कभी मेरा ध्यान करते होंगे? पुरुष का हृदय, नानाकार्य्य, अनेक चिन्तायें, भाँति भाँति के शोक और विविध प्रकार के उल्लासों से परिपूर्ण रहता है। जीवनाधार आशा ही है। उद्योग करना मनुष्य का कर्तव्य है। फलाफल उसके कर्मानुसार मिलता है। राजा के द्वार, युद्ध-क्षेत्र, शोक के स्थान और नाट्यशालाओं में भाँति भाँति के कार्य्य हुआ करते हैं, कई अवसरों पर चिन्ता और करुणा का पूर्ण समावेश हो जाता है। क्या चिन्ता चिरकाल स्थायिनी हो सकता है?

और चिन्ता हुई—क्या योद्धा को तो रणदुर्ग की कथा अभी तक याद होगी? भला ऐसे समय में और ऐसी अवस्था में उसका मन स्थिर होगा? हाय! नदी के प्रवाह के कारण तटवर्ती पुष्प उसमें मिलकर बड़ा आनन्दित हो जाता है और मा आनन्द के नाचने लगता है, फिर प्रवाह कहीं से कहीं चला जाता है। फूल पड़ा पड़ा वहीं सूख जाता है परन्तु जल फिर कर वापस नहीं आता। तथापि मायाविनी आशा सरयू को कभी

कभी चेता देती—मालूम है,एक दिन फिर वही तरुण योद्धा तोरणदुर्ग में वापस आवेंगे। रात के समय वही उन्नत दुर्ग और चारों ओर की पर्वतमालायें, जब चन्द्रमा की सुधारूपी किरणों से सिंचकर निस्तब्ध और सुप्तावस्था में आ जाते, तब नील आकाश और शुभ्र चन्द्रमा की ओर देखते देखते बालिका का हृदय अनेक प्रकार की चिन्ताओं से आच्छादित हो जाता। कहाँ तक बयान करें ? ऐसा मालूम होता कि पर्वत के रास्ते से एक नया अश्वारोही आ रहा है, घोड़ा श्वेतवर्ण का है, सवार के घूँघरवाले बाल उसके विशाल और उन्नत ललाट और आँखों को ढके हुए हैं। वह दुर्ग के निकट पहुँच गया है।उसके कपड़े सब सुनहले रंग के हैं। मस्तक सुगोल, बाँह में सुवर्ण के बाज़ूपड़े हैं और दाहिने हाथ में बर्छी लिये हुए है। वही योद्धा फिर आहार करने के लिये बैठ गया, सरयू उसे भोजन करा रही है। अथवा लजाकर सरयूबाला फिर उसी के पास खड़ी है, और योद्धा भी इस आनन्द से आनन्दित होकर युद्ध की कथा वर्णन कर रहा है।

कल्पना अवशेष नहीं हुई। अगाध समुद्रतरङ्गवत् एक पर दूसरी, दूसरे पर तीसरी होते ही जाती है, सरयूबाला ने फिर समझा, जब युद्ध समाप्त हो चुका था, तरुण सेनापति बड़े यश का भागी हुआ, बहुत सी उपाधियाँ मिलीं परन्तु उसने सरयूबाला को विस्मृत नहीं किया। इसीलिए जनार्दनदेव ने उसके साथ सरयूबाला को विवाह देना स्थिर कर लिया है। घर में चारों ओर से प्रकाश हो रहा है।गाना भी सुनाई पड़ता है और जो जो कुछ हो रहा है सरयूबाला उसे नहीं जानती और न भले प्रकार से उसे देख सकी।

सरयूबाला जिस प्राणेश्वर की अब तक आराधना कर रही थी वही देव-मूर्ति पास ही विराजमान है और उन्होंने सरयू-बाला को स्नेह के साथ सम्बोधन किया है। बालिका को जो आनन्द हो रहा है उसका कुछ वही अनुभव कर रही है! सरयूबाला ! सरयूबाला !! क्या तू पागल तो नहीं हो गई है।

फिर कल्पना हुई—"रघुनाथ प्रसिद्ध नहीं हुए, और न उन्हें कोई उपाधि ही मिली। वे बड़े दरिद्र हैं परन्तु सरयूबाला से विवाह किया है। पर्वत के नीचे एक सुन्दर उपवन देखा जाता है। उसी के पास से शन्तवाहिनी नदी वह रही है। नदी के जल में चन्द्रकिरणों के प्रतिबिम्ब से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो रौप्य जल प्रवाहित हो रहा है। पास हरे हरे खेत खड़े हैं, यहाँ बहुत सी कुटी बनी हैं। उनमें सबसे छोटी कुटी सरयूबाला की है। वहाँ बैठी हुई वह अपने हाथों भोजन बना रही है और अपने जीवनाधार की प्रतीक्षा कर रही है। रघुनाथ पास ही हरियाली में सैर करने निकल गये हैं। सारा दिन व्यतीत हो गया परन्तु अभी तक कोई आया गया नहीं; परन्तु वह देखो! उत्तर की ओर से एक दीर्घकाय पुरुष कुटी की ओर चला आता है। सरयूबाला का हृदय नाचने लगा। यह तो वही पुरुषश्रेष्ठ हैं जिन्होंने उस दिन कण्ठमाला पहराई थी। मारे आनन्द के बालिका का हृदय प्रफुल्लित हो उठा। सरयूबाला ! सरयूबाला!!! क्या तू पगली तो नहीं हो गई है?

इसी प्रकार एक मास, दो मास, तीन मास करके वर्षों व्यतीत हो गया परन्तु सरयूबाला के करुणा की लहरों का अन्त नहीं हुआ। एक स्वदेशीय तरुण योद्धा को विदेश में रहते हुए

भी सरयूबाला ने उसका आदर सत्कार किया था। वही कमनीय मुखमण्डल बार बार ध्यान में जमा रहता। वही दीर्घकाय पुरुष जिसने सरयूबाला को कण्ठमाला पहनाई थी सदा आँखों के सामने विराजमान रहता। इन्हीं सब काल्पनिक आनन्दों के वश में सरयूबाला वशीभूत थी! कल्पना क्या मायाविनी तो नहीं है?

बारहवाँ परिच्छेद ।

पुनर्म्मिलन ।

कल्पना मायाविनी नहीं। सरयूवाला की चिन्ता मिथ्यावादिनी भी नहीं और न उसकी आशा विश्वासघातिनी है। एक दिन संध्या के समय सरयू फिर उसी उद्यान में फूल तोड़ रही थी और दिल ही दिल में नहीं मालूम उसी कण्ठमाला को देख कर कह रही थी। सरयूवाला का रूप-गौरव पूर्व प्रशंसित की भाँति स्निग्ध और आनन्दमय है। उसका मुखमण्डल पूर्ववत् कमनीय और शान्त, तथापि एक वर्ष के भीतर ही भीतर कुछ उसमें परिवर्तन हो गया है। अब नईआशा और नये उल्लास ने उसके मुखमण्डल पर अधिकार जमालिया है। आँखें उसकी प्रेम से रसमयी हो रही हैं। उसका शरीर नूतन उद्वेग और नूतन लावण्य से प्रकाशित हो रहा है। अब सरयूवाला का हृदय और उसकी इच्छा भी इस नये उद्वेग से परिवर्तित हो गये हैं। सरयूवाला अब वालिका नहीं है। उसने अब यौवनावस्था में पदार्पण किया है। रूपवती, यौवनसम्पन्ना सरयूवाला पुष्प तोड़ रही है, और मन ही मन अपनी कण्ठमाला को देखकर चिन्ता कर रही है कि उसी समय दरवाज़े पर एक तरुण योद्धा घोड़े से उतर पड़ा। फूल तोड़ते तोड़ते राजपूतकुमारी की दृष्टि आगन्तुक की ओर चली गई। सारा बदन सिहरा उठा। उधर से अब आँखें उठती ही नहीं।

राजपूत-योद्धा ने फिर उसी उद्यान में उसी राजपूतबाला को देखा। एक दिन वह था कि वे रात के समय उसका मुख-मण्डल देखकर विमोहित हो गये थे और उसी दिन के सवेरे उसके पवित्र कंठ में उसी की कण्ठमाला पहिना दी थी। युद्ध में, संकट में, शिविर अथवा सैन्य में उसी की चिन्ता से युवक का हृदय उमड़ा करता था। स्वप्न में भी उसका लज्जावती मुख सर्वदा उसके सम्मुख ही रहता था। आज बहुत दिनों के बाद वही आनन्दमयी, रूपलावण्यमयी, लज्जारञ्जित मुख को रघुनाथ ने देखा है। रघुनाथ थोड़ी देर के लिए वाक्यशून्य और निश्चेष्ट से हो गये।

चन्द्रमा! तुम रघुनाथ और सरयू के ऊपर सुधा की वृष्टि करो। यद्यपि तुम सारी रात जाग कर सब कुछ देखते हो, परन्तु संसार भर में तुमने ऐसा दृश्य कदापि न देखा होगा।

संध्या के समय रघुनाथ ने पुरोहित के साथ बैठ कर समस्त सामाचार उनसे कह सुनाया कि "शाइस्ताखाँ हार कर दिल्ली को लौट गया। शिवाजी ने राजगढ़ पहुँच कर राजा की उपाधि धारण की और देश के शासन के लिए उन्होंने बहुत उत्तम प्रबन्ध किया है। किन्तु दिल्लीश्वर ने शिवाजी को परास्त करने के लिए बहुत सी सेना के साथ महाराज यशवन्तसिंह को फिर भेजा है और इस वार्ता को सुन कर महाराष्ट्र के राजा को बड़ी चिन्ता हुई है और सम्भव है कि वह महाराजा यशवंत-सिंह के साथ सन्धि करलें क्योंकि उन्होंने अंबरदेश के शास्त्रज्ञ जनार्दनदेव को बुला भेजा है। इसी कारण पीनस साथ लेता आया हूँ। यदि आपको दो चार दिन का अवकाश हो तो राज-गढ़ चले चलिए। राजा ने भी यही आज्ञा दी है।"

घर के बग़ल ही में एक ओर सरयूबाला भोजन का प्रबन्ध कर रही थी। इस कारण रघुनाथ ने जो कुछ कहा था सरयू उसे भले प्रकार सुन चुकी थी। सरयू यह विचार कर कि पिता राजधानी को जायँगे और राजा के आदेशानुसार यह तरुण योद्धा हम लोगों को बुलाने आया है, उसका हृदयकमल खिल गया, हाथ से जलपात्र गिर पड़ा, पुलकितगात्रा, लज्जावनतमुखी सरयूबाला घर से निकल पड़ी।

अब रघुनाथ थोड़ी देर के पश्चात् जनार्दन से धीरे धीरे अपने देश की कथा कहने लगे। पहले अपने माता, पिता, जाति और कुल का परिचय दिया, फिर शिवाजी के साथ अपना सम्बन्ध प्रकट किया। जब जनार्दन ने रघुनाथ के उन्नत कुल का परिचय पालिया और उसके वीर्य्य, बल, सौन्दर्य्य, विनय इत्यादि पर विचार किया तब वह बड़े प्रसन्न हुए और रघुनाथ को पुत्र कह कर सम्बोधन किया। रघुनाथ के भोजन करने का समय आ गया था इस लिए सरयू ने भोजन के पदार्थों को लाकर रख दिया। वृद्ध जनार्दन ने आचमन करके बड़े प्रेम से रघुनाथ को आलिङ्गन किया और कहने लगे, "वत्स रघुनाथ! तुम भी आहार करो। मैं आज तुम्हारा परिचय पाकर बड़ा आनन्दित हुआ। तुम्हारा वंश हम से अपरिचित नहीं है। तुम भी अपने वंश के सुयोग्य पुत्र हो। तुम्हारा गुण सर्वथा वंशोचित है। सरयू को मैंने कन्या कह कर ग्रहण किया है। तुम्हें भी आज पुत्र कह कर ग्रहण करता हूँ। यदि भगवान की इच्छा हुई तो इस भावी युद्ध के पश्चात् तुम्हारे जैसे उपयुक्त पात्र के लिए सरयूबाला को समर्पण करूँगा। इस प्रकार निश्चिन्त होकर इस मानवलीला का संवरण करूँगा। जगत्पिता तुम्हें और सरयूबाला को सुख से रक्खें।"

इस कथा को सुनकर रघुनाथ की आँखों में जल भर आया और धीरे धीरे पुरोहित के पैरों पर गिर कर विनीत स्वर से उसने कहा—"पिता, आशीर्वाद दीजिए। यह दरिद्री सैनिक अपनी अभिलाषा पूर्ण करें। रघुनाथ केवल एक दरिद्री हवलदार है। इस समय न तो उसका नाम है और न उसके पास अर्थ ही है, परन्तु परमेश्वर की आशा है। पिता! आशीर्वाद दीजिए। जिसमें रघुनाथ इस अमूल्य रत्नलाभ करने में यत्नवान् हो।"

इस आनन्दमयी कथा को सरयूबाला ने भी सुना। वायु से ताड़ित पत्ते की भाँति उसकी देहलता कम्पित हो गई। उस दिन रघुनाथ से कुछ भी खाया नहीं गया और न सरयू ही ने कुछ भोजन किया।

तेरहवाँ परिच्छेद

राजगढ़यात्रा

यात्रा की तैयारी करने में पाँच सात दिन की देरी लग गई। इन दिनों में रघुनाथ पुरोहित जी के ही घर में रहने लगे। नित्य प्रति प्रातःकाल और संध्या के समय सरयूबाला को उद्यान में फूल तोड़ते देखा करते, और मध्याह्न और अपराह्न का भोजन सरयूबाला के प्रिय हस्तों से पाते। इन पाँच सात दिनों के भीतर रघुनाथ साहस करके भी सरयूबाला से कुछ वार्तालाप नहीं कर सके। सरयूबाला को देखते ही रघुनाथ का हृदय धड़कने लगता। कुमारी भी रघुनाथ को देखकर कम्पितवदना हो उठती।

तोरण दुर्ग से राजगढ़ जाते समय सरयूबाला की डोली के साथ साथ एक अश्वारोही भी लगा हुआ था। पर्वतपथ वा जंगल-वृक्ष-रहित मैदान अथवा नदी-तट किसी क्षण भी वह सवार डोली को छोड़कर अलग नहीं होता। जब अपनी सह-चरियों के साथ रात के समय सरयूबाला किसी मन्दिर, दुकान अथवा किसी भद्रगृह में वास करती। तब भी कभी कभी एक योद्धा हाथ में बर्छी लिए हुए आ जाया करता और उसे देख कर ऐसा प्रतीत होता था कि मानों रात भर उसे नींद ही नहीं आती।

इस विषय को नारीमात्र ख़ूब समझती हैं। पुरुष के यत्न, उसके आग्रह, पुरुष के हृदय का आवेग स्त्रियों की आँखों से

छिपा नहीं रह सकता। सरयूबाला डोली के भीतर ही से अविश्रान्त अश्वारोही,को देख रही थी। रात को उसके अनिद्रित रहने का कारण भी खूब जानती थी और जब देवविनिन्दित आकृति को देखती, आँखों में जल भर लाती। इस दुर्दमनीय आग्रह-चिह्न को देख कर सरयूबाला का हृदय आनंद और प्रेम के उद्वेग से प्लावित हो जाता।

संध्या के समय जब सरयूबाला उसी योद्धा को भोजन कराने आती तब मौनावलम्बी युवक के दर्शन से वह स्वयं भी अवनतमुखी हो जाती और भले प्रकार से आहार नहीं करा सकती। प्रातःकाल जब सरयूबाला शिविकारोहण करती और योद्धा को घोड़े पर सवार देखती तब उसके म्लान मुखमण्डल से सरयूबाला सहज ही में अपनी आँखों को नहीं लौटा सकती थी।

कई दिन इसी प्रकार चलते चलाते सब के सब राजगढ़ पहुँच गये। संध्या के समय जनार्दनदेव दुर्ग के नीचे एक गाँव में ठहर गये और महाराष्ट्रीय राजा के पास अपने आ जाने का संदेशा भेज दिया। दूसरे दिन राजा की अनुमति से जनार्दनदेव ने दुर्ग में प्रवेश किया।

उस दिन रात के भोजन की तैयारी में कुछ विलम्ब हो गया इसलिए जनार्दनदेव कुछ जलपान करके सो रहे थे परन्तु एक प्रहर रात व्यतीत होते होते सरयूबाला ने रघुनाथ को भोजन करा दिया।

दूसरे दिनों की भाँति आज भोजन करने के पश्चात् रघुनाथ घर से बाहर न होकर जहाँ सरयूबाला बैठी हुई थी उधर ही सिर नीचा किये हुए चले गये, परन्तु अपने हृदय के उद्वेग को

दमन करके स्थिर भावसे बोल उठे, "देवि ! इस समय अब मुझे बिदा कीजिए।"

रघुनाथ के उच्चारित किये हुए यह शब्द सरयूबाला के कानों तक पहुँचे, मानो प्यासे पपीहे को स्वाती का जल मिल गया। सरयूबाला का हृदय फड़कने लगा और वह अपने आरक्त मुख को नीचा करके खड़ी हो गई।

रघुनाथ ने फिर कहा, "देवि ! विदा दीजिए, कल अपने राजा की सेवा में उपस्थित हूँगा। अब यह दरिद्री सैनिक फिर अपने कार्य्य पर नियुक्त होना चाहता है।"

इन शब्दों को सुनकर सरयूबाला की लज्जा विस्मृत हो गई। आँखों में जल भरकर सरयू न्यायपूर्ण स्वर से बोल उठी, "आपनेमेरे साथ, मेरे पिता के साथ जो यह सद्व्यवहार किया है, भगवान उसी के प्रतिफल में आप को युद्धविजयी करें इसके अतरिक्त मैं और क्या आपको दे सकती हूँ ?"

रघुनाथ ने विनीत स्वर में उत्तर दिया, "राजा के अदेशानुसार मैं आपको राजगढ़ तक निरापद ला सका हूँ, यह मेरा परम सौभाग्य है। इस में मेरा कुछ गुण नहीं है। तथापि इस दरिद्री सैनिक से यदि आप तुष्ट हैं तब, यह दरिद्री सैनिक आपको सर्वदा स्मरण करेगा।

इस विषय को सरयूबाला ने भले प्रकार से समझ लिया अतः उसने अपने सिर को झुका दिया। अब रघुनाथ को साहस हो गया। लज्जा विस्मरण करके वह कहने लगा—"यदि यह दरिद्री सैनिक कोई उच्च अभिलाष करता हो तो आप उस अपराध को क्षमा करेंगी। आप के पिता ने प्रसन्न हो कर मुझे

आशा दिलाती है। आप भी अप्रसन्न न होंगी। यदि भगवान ने मनोवाँञ्छा पूर्ण की, यदि जीवन-चेष्टा और आशा फलवती हुई तब एक दिन अपने मनकी कथा आपको सुनाऊँगा परन्तु तब तक इस तुच्छ सैनिक को कभी कभी स्मरण करती रहना।"

विनीतभाव से विदा लेकर रघुनाथ चल खड़े हुए। सरयू एक घड़ी तक उसी ओर निहारती रही और मनहीमन चिन्ता करने लगी—"ओह! आधी रात का समय है। सैनिकश्रेष्ठ! तुम चिरकाल तक इस दासी के स्मरणपथ में जागृत रहोगे। भगवान, तुम साक्षी हो।"

चौदहवाँ परिच्छेद

राजा जयसिंह

हम यह पहले ही कह आये हैं कि औरङ्गज़ेब ने शाइस्ताख़ाँ और यशवन्तसिंह इन दोनों को अकर्मण्य समझ कर वापस बुला लिया था, और अपने पुत्र सुलतान मुअज्जम को दक्षिण मुहासिरे पर भेजा था। फिर कुछ सोच विचार कर यशवन्तसिंह को उसकी मदद के लिए वापस कर दिया। परन्तु दूरदर्शी औरङ्गज़ेब ने समझ लिया कि इन लोगों से बहुत कुछ आशा नहीं है। अतः उसने अम्बराधिपति प्रसिद्ध राजा जयसिंह को मय उनकी सेना के रवाना किया। सन् १६६५ ई० के चैत्र मास के अन्त में जयसिंह अपने दल बल के साथ पूना पहुँच गये। जयसिंह शाइस्ताख़ाँ की भाँति निरुत्साह होकर क़िले ही में नहीं पड़ गये, किन्तु इन्होंने दिलामरख़ाँ को पुरन्दर के मुहासिरे पर तैनात किया और स्वयं सिंहगढ़ को घेर कर राजगढ़ पर्यन्त सेना को अग्रसर कर दिया।

शिवाजी हिन्दू-सेनापति के साथ युद्ध करना उचित नहीं समझते थे, विशेषतः जयसिंह की ख्याति, सैन्य-संख्या, तीक्ष्ण बुद्धि और उनके दोर्दण्ड प्रताप शिवाजी से छिपे नहीं थे। इस प्रकार औरङ्गज़ेब के निकट दूसरा कोई पराक्रमी सेनापति नहीं था। तत्कालीन भ्रमणकारी फ़राँसीसी वेर्नी ने लिखा है कि "सारे भारतवर्ष में जयसिंह की भाँति दूसरा कोई भी

बुद्धिमान्, विचक्षण और दूरदर्शी व्यक्ति नहीं है। शिवाजी पहले ही से हतोत्साह होकर वार वार सन्धि की प्रार्थना करने लगे, परन्तु तीक्ष्णबुद्धि जयसिंह ने इन समस्त प्रस्ताओं पर विश्वास नहीं किया।

अन्त में शिवाजी के विश्वस्त मन्त्री रघुनाथपंत न्यायशास्त्री दूत वन कर जयसिंह के निकट उपस्थित हुए। उन्होंने राजा को इस प्रकार से समझाना प्रारम्भ किया कि "महाराज! शिवाजी आपके साथ चालाकी नहीं किया चाहते। वे भी क्षत्रिय हैं। क्षत्रियोचित सम्मान वे भी जानते हैं।" शास्त्रज्ञ ब्राह्मण के इन वाक्यों को राजा जयसिंह ने सत्य समझा और उन पर विश्वास किया। फिर ब्राह्मण का हाथ पकड़ कर वे कहने लगे—"द्विजराज! मुझे आपके वाक्यों पर विश्वास है। राजा शिवाजी को यह जता देना कि दिल्ली के सम्राट उनके विद्रोहाचरण की मार्ज्जना किया चाहते हैं, परन्तु उनका विशेष सम्मान भी किया चाहते हैं। मैं इसकी प्रतिज्ञा करता हूँ। आप भी अपने स्वामी से कह दीजिएगा कि "मैं भी राजपूत हूँ। राजपूतों के वाक्य अन्यथा नहीं होते।"

वर्षा के समय एक दिन जव राजा जयसिंह अपनी सभा में विराजमान थे तव एक द्वारपाल ने आकर संवाद दिया—"महाराज की जय हो। राजा शिवाजी स्वयं द्वार पर खड़े हैं और महाराजा से मिलना चाहते हैं।"

सभी सभासद् विस्मित हो गये और राजा जयसिंह शिवाजी के लाने के लिए स्वयं शिविर से वाहर चले आये। वे वड़े आदर के साथ उनसे मिले और शिवाजी को साथ लेकर

शिविर में चले गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने शिवाजी को अपनी गद्दी के दाहिनी ओर बैठाया।

इस प्रकार समादृत होकर शिवाजी बड़े प्रसन्न हुए। राजा जयसिंह ने कुछ देर मिष्टभाषण करने के पश्चात् कहा—"राजन्! आपने मेरे यहाँ पदार्पण करके मुझे बड़ा सम्मानित किया। इसे आप अपना ही घर समझिए।

शिवाजी—"राजन्! यह दास कब आपकी आज्ञा के पालन से विमुख हुआ? आपने रघुनाथपंत से मेरे आने के लिए आदेश किया था। दास उपस्थित हो गया। मैं भी आपके आचरणों से सम्मानित हो गया।"

जयसिंह—"हाँ, रघुनाथ न्यायशास्त्री से जो कुछ मैंने कहा था वह मुझे स्मरण है। वही करूँगा। दिल्लीश्वर आपके विद्रोहाचरण की मार्जना किया चाहते हैं, परन्तु आपकी रक्षा करेंगे। आपका यथेष्ट सम्मान करेंगे—इस विषय में मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। राजपूतों की कही हुई बातें अन्यथा नहीं होतीं।"

इस प्रकार थोड़ी देर तक बात चीत होती रही। तत्पश्चात् सभा भंग हो गई। अब शिविर में शिवाजी और जयसिंह के अतिरिक्त और कोई न था। उस समय शिवाजी ने झूँठे आनन्द भाव को त्याग दिया और हाथ को गंडस्थल में स्थापित करके चिन्ता करने लगे। जयसिंह ने देखा कि उनकी आँखों में जल भर आया है।

जयसिंह—"राजन्! यदि आप आत्मसमर्पण करने में खिन्न होते हों, तो यह निष्प्रयोजन है। आप विश्वास करें। मेरे पास

चले आइए। राजपूत विश्वासघात नहीं करते। अभी आप मेरी अश्वशाला से घोड़ा लेकर रातोंरात पूना चले जाइए। जिस प्रकार आप निरापद आये थे, उसी प्रकार निरापद चले जाइए। आप आज्ञा करें ; मैं आपके ऊपर कभी हस्तक्षेप नहीं करूँगा। हाँ, युद्धलाभ भले ही कर लूँ। उसमें कोई क्षति नहीं समझता, परन्तु क्षत्रियधर्म कदापि विसरण नहीं करूँगा।"

जयसिंह—"तो फिर आप इस समय खिन्न क्यों हैं ?"

शिवाजी—"मैं बाल्यकाल ही से आपके गौरव-गीत को गाकर बड़ा आनन्द पाता था। आज उसी प्रकार आपको देखता हूँ। वह गीत मिथ्या न था। जगत् में यदि महात्मा, सत्य, धर्म है तो वह राजपूत-शरीर ही है। परन्तु क्या ऐसा राजपूत यवनों की अधीनता स्वीकार कर सकता है ? क्या महाराज जयसिंह वास्तव में औरङ्गज़ेब के सेनापति हैं ?"

जयसिंह—"महाराज ! इसका कारण प्रकृत दुःख है। क्योंकि राजपूत सहज ही में अधीनता स्वीकार नहीं करते। जब तक साध्य था दिल्ली के साथ युद्ध करता रहा, परन्तु ईश्वर की माया, पराधीन होना पड़ा। प्रातःस्मरणीय प्रताप ने असाध्य-साधन द्वारा यत्न किया था, परन्तु उनकी सन्तानों को भी दिल्ली को कर देना पड़ा। मैं यह सब जानता हूँ।"

शिवाजी—"मैं भी जानता हूँ। इसीलिए तो जिज्ञासा करता हूँ कि जिसके साथ आपसे वैरभाव है, उसके कार्य्यसाधन में आप तत्पर क्यों हैं ?"

जयसिंह—"जब मैंने दिल्ली की सेना का सेनापति होना स्वीकार किया था तभी कार्य्यसाधन के प्रति सत्यदान किया था। इसीलिए आज तक उसका पालन करता हूँ।"

शिवाजी—"क्या सब के साथ सभी अवसरों पर सत्यपालन करना चाहिए ? जो हमारे देश का शत्रु, और धर्मविरुद्धाचारी है उसके साथ भला सत्यसम्बन्ध कैसा ?"

जयसिंह—"भला आप क्षत्रिय होकर ऐसी बातें कर रहे हैं ? क्या कभी राजपूतों को ऐसी बात कहनी चाहिए ? राजपूतों के इतिहास को पढ़िए, कितने सौ वर्षों तक मुसलमानों के साथ वे युद्ध करते रहे किन्तु कभी सत्य का उल्लंघन न किया। बहुत बार हारे थे, अनेकों बार जयलाभ किया था, परन्तु जय-पराजय में, सम्पद्-विपद् में, उन्होंने सर्वदा सत्य का पालन किया था। इस समय हमारा गौरव स्वाधीनता नहीं है किन्तु सत्यपालन ही गौरव है। देश, विदेश, मित्र के बीच और शत्रु के बीच राजपूत नाम का गौरव तो है। क्षत्रियराजटोडरमल ने वङ्गदेश को विजय किया था, मानसिंह ने काबुल से उड़ीसा पर्य्यंत दिल्लीश्वर की विजय पताका उड़ाई थी, परन्तु किसी ने विश्वास के विरुद्ध आचरण नहीं किया और मुसलमान-बादशाहों से जो कुछ कहा वही किया। महाराष्ट्रराज ! राजपूतों का वचन ही सन्धिपत्र है। अनेक सन्धिपत्रों का लंघन किया जाता है परन्तु राजपूतों का वचन कभी उल्लंघनीय नहीं होता।"

शिवाजी—"महाराज यशवन्तसिंह हिन्दूधर्म के एक प्रधान प्रहरी हैं। उन्होंने भी मुसलमानों के अर्थ हिन्दुओं से युद्ध करना अस्वीकार किया था।"

जयसिंह—"यशवन्तसिंह वीरशिरोमणि, हिन्दूधर्म के रक्षक हैं, इसमें कोई भी सन्देह नहीं। वे माड़वारदेश की मरुभूमि के योद्धा हैं। उनकी माड़वारी सेना के सदृश जगत् में दूसरी कोई

जाति साहसी नहीं है। यदि यशवन्तसिंह उसी मरुभूमि से वेष्टित होकर मारवाड़ी सेना द्वारा हिन्दू-स्वाधीनता की रक्षा के लिए उद्योग करते तो हम उनको अवश्य साधुवाद देते। यदि वे जयी होकर औरङ्गज़ेब को परास्त करते और दिल्ली में हिन्दूपताका फहराते तो हम उनको सम्राट् कहकर सम्मानित करते, और यदि वे युद्ध में परास्त होकर स्वदेश और स्वधर्म्म के रक्षार्थ रणभूमि में प्राण त्याग करते, तो हम उनकी देव-तुल्य पूजा करते; परन्तु जिस दिन से वे दिल्लीश्वर के सेनापति बने उसी दिन से मुसलमानों के कार्य्यसाधन में तत्पर हो गये। जिसको ग्रहण किया उसका लंघन करना क्षात्रधर्म्म के प्रतिकूल है। यशवन्तसिंह अपनी यशोराशि से मलिन होकर कलङ्कित हो गये हैं। जब से वे शिप्रा नदी के तीर औरङ्गज़ेब से परास्त हो गये तभी से वे उसके विद्वेषी हो गये हैं। नहीं तो वे ऐसा गर्हितकार्य्य कदापि न करते।"

चतुर शिवाजी ने देखा कि जयसिंह यशवन्तसिंह नहीं हैं। फिर थोड़ी देर के बाद कहा—"क्या हिन्दूधर्म की उन्नति की चेष्टा करना गर्हित कार्य्य है? हिन्दुओं को भाई समझकर उनकी सहायता करना क्या गर्हितकार्य्य है?"

जयसिंह—"हम यह नहीं कहते। यशवन्तसिंह ने क्यों नहीं औरङ्गज़ेब का कार्य्य छोड़ कर आपका पक्ष ले लिया? ले लेते तो सारे संसार और ईश्वर के निकट वे यशी होते। आप जिस प्रकार स्वाधीनता की चेष्टा करते हैं उसी प्रकार उन्होंने क्यों नहीं की? सम्राट् के कार्य्य में निरत रह कर गुप्तभाव से विरुद्धाचरण करना कपटता है। क्षत्रियराज! कपटाचरण क्षात्रोचित कार्य्य नहीं है।"
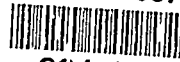
शिवाजी—"यदि वे हमारे साथ प्रकट होकर मिल जाते तो सम्भव था कि औरङ्गज़ेब दूसरे सेनापति को भेजता और जिससे लड़कर हम दोनों परास्त हो मारे जाते।"

जयसिंह—"युद्ध में प्राणत्याग करना क्षत्रियों का सौभाग्य है; परन्तु कपटाचरण क्षत्रियधर्म के विरुद्ध है।" इतना सुनतेही शिवाजी का मुख-मण्डल लाल हो गया। वे कहने लगे—"राजपूत! महाराष्ट्रीय वीर भी मृत्यु से नहीं डरते। यदि इस अकिञ्चन जीवन दान करने से हमारा उद्देश सिद्ध हो जाय, और हिन्दू स्वाधीनता, हिन्दू-गौरव पुनः स्थापित हो जाय, तो भवानी की सौगन्ध, इसी समय अपने वक्षःस्थल को विदीर्ण कर डालूँ। अथवा हे राजपूत! तुम्ही अपने बर्छे से मेरे हृदय में आघात करो। मैं हर्षपूर्वक शरीर त्याग कर दूँगा। किन्तु जिस हिन्दू-गौरव के विषय का मैं बाल्यकाल में स्वप्न देखा करता था, जिस के कारण मैंने सैकड़ों युद्ध किये, बीस वर्ष पर्य्यंत, पर्वत में, उपत्यका में, शिविर में, शत्रुओं के बीच में, सायं प्रातः, गम्भीर निशा में, चिन्ता करता रहा, उस गौरव और स्वाधीनता का क्या फल होगा? क्या युद्ध में प्राण त्याग देने से उसकी रक्षा हो जायगी?"

जयसिंह ने शिवाजी की तेजस्विनी वाणी को सुना और उनके जलपूर्ण नेत्रों को देखा, परन्तु पूर्ववत् स्थिर भाव से उसका उत्तर देने लगे—"सत्यपालन यदि सनातन हिन्दूधर्म-रक्षा नहीं है तो क्या सत्यलंघन ही है? यदि वीरों के शोणित से स्वाधीनता का वीज अंकुरित न हुआ, तो क्या वीर की चतुरता से कुछ होगा?"

शिवाजी परास्त हो गये। परन्तु थोड़ी देर चुप रहने के बाद फिर बोले—"महाराज! मैं आपको पिता के तुल्य समझता हूँ।

आपकी भाँति धर्म्मज्ञ, तीक्ष्णबुद्धि-योद्धा, मैंने कभी नहीं देखा। मैं आपके लड़के के समान हूँ। एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ। आप उचित परामर्श दीजिए। मैं जब लड़कपन में कङ्कण देश के असंख्य पर्वतों, उपत्यकाओं में भ्रमण कर रहा था, एक भवानी ने स्वयं मुझे स्वप्न में, स्वाधीनता स्थापन करने का उपदेश किया था। उन्होंने देवालयों की संख्या बढ़ाने में, गोवत्सादि की रक्षा में, ब्राह्मणों की सम्मान-वृद्धि में और धर्म-विरोधी मुसलमानों को दूर करने का साक्षात् परामर्श दिया था। मैं लड़का था। उस समय स्वप्न विस्मृत हो गया। परन्तु सदर्प खड्ग को ग्रहण किया और वीरशिरोमणियों को एकत्रित करने में फलीभूत हुआ। बहुत से दुर्गों पर अब तो अधिकार भी कर लिया है। लड़कपन में जो कुछ स्वप्न में देखा था, जवानी में भी उसे देखा है। हिन्दुओं के नाम का गौरव, हिन्दूधर्म की प्रधानता, हिन्दू-स्वाधीनता का सम्पादन सब कुछ मुझे स्मरण है। यथा-सम्भव परिश्रम भी किया है। क्षत्रियराज! हमारे ये उद्देश क्या मन्द हैं? स्वप्न क्या अलीक स्वप्न मात्र है? आप इस पुत्र को समझाइए।"

बहु-दूरदर्शी धर्मपरायण राजा जयसिंह कुछ समय तक चुप रहे। पश्चात्, धीर और गम्भीरस्वर में बोले—"राजन्, आपके महदुद्देश से बढ़ कर और दूसरे उद्देश को मैं नहीं जानता, और न आपके स्वप्न से बढ़कर प्रकृत शिक्षा ही मुझे कुछ दीख पड़ती है। शिवाजी! आपका यह बड़ा उद्देश मुझसे छिपा हुआ नहीं है। मैंने शत्रुओं के सम्मुख भी आपके उद्देशों की प्रशंसा की है। अपने पुत्र रामसिंह को आप ही का उदाहरण देकर शिक्षा दी है। राजपूत-स्वाधीनता और गौरव अभी विस्मृत

नहीं हुए हैं। शिवाजी ! तुम्हारा स्वप्न निरा स्वप्न ही नहीं है, चारों तरफ़ आँख उठाकर जब देखता हूँ तब यही निश्चय होता है कि मुग़लराज्य अब अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकता। उनके सारे उद्योग निष्फल हैं। मुसलमानों का राज्य कलङ्क-राशि से परिपूर्ण हो गया है। विलासप्रियता से अब वह जर्जरित हो उठा है। हिन्दुओं के प्रति अत्याचार करके उनके शाप से शापित हो गया है। बालू की दीवार की भाँति अब वह और नहीं ठहर सकता। चाहे देर में चाहे जल्दी में, मुग़लराज्य-प्रासाद अवश्य ही भग्न होकर धराशायी होगा और फिर हिन्दुओं की प्रधानता होगी। महाराष्ट्रीय-जीवन अंकुरित हो रहा है। इससे बोध होता है कि भारतवर्ष में इसी के तेज का विकाश होगा। शिवाजी ! आपका स्वप्न स्वप्न ही नहीं है। भवानी ने आपको मिथ्या उत्तेजना भी नहीं दी है।"

उत्साह और आनन्द के मारे शिवाजी का शरीर रोमाञ्चित हो आया। उन्होंने फिर जिज्ञासा की—"महाराजा, फिर आप उस गिरते हुए मकान के एकमात्र स्तम्भस्वरूप क्यों बने हैं ?"

जयसिंह—"सत्यपालन क्षत्रिय धर्म है। मैं उसी का पालन कर रहा हूँ। किन्तु असाध्य-साधन नहीं हो सकता। पतनोन्मुख प्रासाद का अवश्य ही पतन होगा।"

शिवाजी—"अच्छा, आप सत्यपालन कीजिए। कपटाचारी औरङ्ग़ज़ेब के निकट धर्माचारी जयसिंह को देवता लोग भी विस्मित हो साधुवाद करते हैं, किन्तु मैं तो कभी औरङ्ग़ज़ेब के निकट सत्यपालन नहीं कर सकता। यदि मैं उस दुराचारी

के निकट बुद्धिबल से भी स्वदेश के उन्नति-साधन में फली-भूत हो जाऊँ तो लोग मेरी निन्दा नहीं करेंगे।"

जयसिंह—"क्षत्रियराज! योद्धा के निकट चालाकी सर्वदा निन्दनीय है। विशेषतः बड़े उद्देश साधन के लिए तो चातुरी कलङ्क की टीका है। ऐसा मालूम होता है कि महाराष्ट्रीय गौरव अनिवार्य्य है। उनका बाहुबल नित्यप्रति बढ़ता जायगा, और वह दिन दूर नहीं है कि वह भारतवर्ष के अधीश्वर हो जायँगे। परन्तु शिवाजी, आज आप जो यह शिक्षा दे रहे हैं उसे लोग कभी नहीं भूलेंगे। हमारे कहने को आप बुरा न मानें। आज आप शहरों का लूटना सिखा रहे हैं, और उसके द्वारा आप तो जयलाभ करते हैं परन्तु यही लोग आपके पश्चात् शहरों और नगरों का लूट लेना ही सबसे प्रधानकार्य्य समझ बैठेंगे और भारतवर्ष में सिवा लूटमार के और कोई बात न रहेगी। आज आप सम्मुख युद्ध की अपेक्षा चालाकी सिखा रहे हैं। उसका प्रभाव यह होगा कि लोग सम्मुख होकर युद्ध कर ही नहीं सकेंगे। आप जिस जाति के नेता हैं वह जाति भारत की शासक होगी। अतः आप उसे गुरु की नाईं धर्म-शिक्षा दीजिए। आज आपकी मन्दशिक्षा का प्रभाव सौ वर्षों बाद सारे भारतवर्ष में फूट निकलेगा। आप हिन्दुओं में श्रेष्ठ हैं। आपके महान् उद्देश की मैं शतशतबार प्रशंसा करता हूँ, परन्तु आप इस वृद्ध, बहुदर्शी राजपूत की शिक्षा ग्रहण कीजिए, चालाकी भूल जाइए। यदि आप ही धर्म और सत्य-शिक्षा न देंगे तो और कौन देगा? महाराष्ट्र-शिक्षा-गुरु! सावधान! आपके प्रत्येक कार्य्य का फल बहुकाल व्यापी और बहुदेश व्यापी होगा।"

इन महत्तर वाक्यों को सुनकर शिवाजी क्षणभर स्तम्भित होगये, परन्तु फिर उन्होंने कहा—"आप गुरु के गुरु हैं। आपके उपदेश शिरोधार्य्य हैं। परन्तु आज हम यदि औरङ्गज़ेब की अधीनता स्वीकार करलें तो फिर शिक्षा कौन देगा ?"

जयसिंह—"जय-पराजय स्थिर नहीं है। आज मुझे जय प्राप्त हुआ है; कल आपको भी जय प्राप्त हो सकता है। आज आप औरङ्गज़ेब के अधीन हैं, कल स्वाधीन हो सकते हैं।"

शिवाजी—"ईश्वर करें यही हो। परन्तु जब तक आप औरङ्गज़ेब के सेनापति हैं मुझे स्वाधीनता मिलनी दुस्तर है और ऐसी आशा भी वृथा है। स्वयं भवानी ने भी तो हिन्दू-सेनापति के साथ लड़ने का निषेध किया है।" जयसिंह इस बार हँस पड़े, और कहने लगे, "शरीर क्षणभंगुर है। भला यह वृद्ध शरीर कब तक रह सकता है ? किन्तु जब तक है सत्यपालन से विचलित न होने पावेगा।"

शिवाजी—"आप दीर्घजीवी हों।"

जयसिंह—"शिवाजी ! अब विदा दीजिए। मैंने औरङ्गज़ेब के पिता के निकट कार्य्य किया है, और इस समय तो औरङ्गज़ेब का कार्य्य कर रहा हूँ। जब तक जीवन है, दिल्लीपति का यह वृद्ध सेनापति विरुद्धाचरण नहीं करेगा। किन्तु क्षत्रियराज ! निश्चिन्त रहिए। महाराष्ट्र-गौरव और हिन्दू-प्रधानता अनिवार्य्य है। वृद्ध के वचन को ग्रहण कीजिए। मुग़लों का राज्य अधिक दिन न रहेगा। हिन्दुओं का तेज अब अधिक दिन तक निवारण नहीं किया जा सकता। देशदेशान्तर में हिन्दू-गौरव के साथ ही साथ आपके गौरव और नाम की प्रतिध्वनि सुनाई देगी।"

शिवाजी ने आँखों में आँसू भर कर जयसिंह को आलिङ्गन किया और कहा—"धर्म्मात्मन्! आपके मुख में फूल चन्दन पड़ें। आपकी ये बातें सत्य हों। मैंने आत्म-समर्पण किया। अब मैं आपसे कभी लड़ाई न करूँगा। क्षत्रियप्रवर! यदि फिर कभी स्वाधीनता प्राप्त होगी तो एक बार फिर आपका दर्शनकरूँगा, और पिता के चरणों में शिर रख कर उपदेश ग्रहण करूँगा।"

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

दुर्ग-विजय

श्री यही सन्धि हो गई। शिवाजी ने मुग़लों के जिन जिन दुर्गों को विजय कर लिया था उन्हें वापस दे दिया। विलुप्त अहमदनगर राज्य के ३२ दुर्गों को जो उन्होंने बनवाये थे उन में से २० औरङ्गज़ेब को दे दिये और बाक़ी १२ दुर्ग औरङ्गज़ेब ने जागीर के तौर पर छोड़ दिये। शिवाजी ने जिन देशों को औरङ्गज़ेब को दिया था, उसके बदले में, दिल्लीश्वर ने कई एक राज्य विजयपुर के अन्तर्गत शिवाजी को भी दे दिये और उनका अष्टवर्षीय राजकुमार पंचहज़ारी का मनसबदार नियत किया गया।

शिवाजी के साथ युद्ध समाप्त होने के पश्चात् राजा जयसिंह विजयपुर के राज्य को ध्वंस करके उसे दिल्लीश्वर के अधिकार में लाने का अनिवार्य यत्न करने लगे। शिवाजी के पिता ने जो सन्धि विजयपुर और शिवाजी के बीच में करा दी थी, शिवाजी ने उसका लंघन नहीं किया, परन्तु विजयपुर के सुलतान ने शिवाजी को विपद्-ग्रसित देखकर उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी। इसी कारण महाराज शिवाजी ने भी जयसिंह का पक्ष अवलम्बन करके अली आदलशाह को ध्वंस करना

प्रारम्भ कर दिया और अपनी माउली सेना के वल से उसके कितने ही दुर्ग दवा लिये ।

महाराज जयसिंह और शिवाजी की मित्रता दिन दिन घनिष्ट होती गई । दोनों सदा एक साथ रहते और लड़ाई में एक दूसरे की सहायता करते थे । अधिक न कह कर इतना कह देते हैं कि शिवाजी का एक तरुण हवलदार जयसिंह के पुरोहित के सदन में नित्यप्रति जाया करता था । पाठकगणों को उसके नाम वताने की आवश्यकता नहीं ।

सरलस्वभाव पुरोहित जनार्दनदेव क्रमानुसार रघुनाथ को पुत्रवत् देखने लगे, और सदा उन्हें अपने घर वुलाया करते । रघुनाथ भी अवसर पाकर उस सरलस्वभाव पुरोहित के पास वैठा करते, और उनसे राजस्थान का संवाद सुना करते, राजा जयसिंह की कथा विचारा करते, स्वदेशोन्नति पर विचार भी किया करते । कभी कभी आधीरात तक ठहर कर वे युद्ध की वार्त्ता सुनाया करते, और पर्वती-दुर्ग के आक्रमण, शत्रु-शिविराक्रमण, गिरि-चूड़ा के भीषण युद्ध का यथावसर वर्णन भी किया करते । जव रघुनाथ योद्धाओं की कथा सुनता तव उसके नयन प्रज्ज्वलित हो जाते और स्वर कम्पित होकर मुखमण्डल लाल हो जाया करता था ।

जव वृद्ध जनार्दनदेव युद्ध की कथाओं को सुनाता पासके दूसरे घर में वैठी सरयू भी उसे सुना करती और एकान्त में वैठी वैठी आँखों से आँसू वहाया करती और परमात्मा से रघुनाथ के रक्षार्थ विनय किया करती । जव आधीरात के

समय कथा-वार्ता समाप्त होती तब सरयूवाला भोजन लाकर रघुनाथ के सामने रख देती। जब रघुनाथ भोजन करने लगते तब सरयू पासही बैठकर उसी देवमूर्ति को देखा करती, और अपनी प्रेम-पिपासा की तृप्ति किया करती। भोजन के बाद यदि योद्धा मृदुस्वर में विदा चाहता, अथवा दो एक बात करना चाहता तो सरयू स्वयं उसका कुछ उत्तर न देती और लज्जावश उसका गंडस्थल लालवर्ण का हो जाता, आँखें प्रेममयी हो जातीं और विवश हो सहचरी द्वारा उत्तर कहला भेजती।

परन्तु उत्तर की क्या आवश्यकता। सरयू के नयनों की भाषा रघुनाथ अच्छी तरह समझ लेते थे और रघुनाथ की आँखों के सम्भाषण को सरयू भी समझ लेती थी। दोनों के जीवन, मन, प्राण, प्रथम-प्रणय के समय ही से अनिर्वचनीय हो आनन्द की लहरों में निमग्न हो गये थे। दोनों ही के हृदय प्रथम प्रणय के उद्वेग से उत्क्षिप्त हो चुके थे।

विजयपुर के अधीनस्थ अनेक दुर्गों को हस्तगत कर शिवाजी ने एक दूसरे अतिशय दुर्गम पर्वती दुर्ग के लेने का विचार किया। जब वे किसी दुर्ग पर चढ़ाई करते तब उसका संवाद किसी पर विदित नहीं होने देते। उनकी सेना भी कुछ नहीं जान सकती थी। राजा जयसिंह के डेरे के समीप, परन्तु शिवाजी के डेरे से ५-६ कोस पर, वह दुर्ग था। शाम को एक हज़ार माउलियों और महाराष्ट्रों की सेना सुसजित कराई गई। एक पहर रात व्यतीत होने पर शिवाजी ने यह प्रकाशित किया कि—"रुद्र-मण्डल दुर्ग पर आक्रमण करना होगा।" चुपचाप उसी ओर एक हज़ार योद्धा चल खड़े हुए।

विकट अँधेरी रात में सेना दुर्ग के नीचे पहुँच गई। चारों ओर सम भूमि है। उसके बीच एक उच्च पर्वत-शृंग पर रुद्र-मण्डल दुर्ग बना हुआ है। सीधी ऊपर की चढ़ाई है। दुर्ग में जाने का केवल एक मात्र ही रास्ता है। लड़ाई के समय वही राह बन्द है। दूसरी ओरों से जाना अतिशय कष्टसाध्य है। रास्ता तो है ही नहीं। केवल जंगल और शिलाओं से दुर्गवेष्टित है। शिवाजी ने इसी दुर्गम मार्ग से चलने की आज्ञा दी। जैसे एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर वानर चढ़ते हैं उसी भाँति उस पर्वत पर शिवाजी की सेना चढ़ने लगी। कहीं रुक कर, किसी स्थान पर खड़े होकर, कहीं पेड़ों की डालियाँ पकड़ कर, और किसी किसी स्थान पर कूद कर सेना आगे बढ़ने लगी। महाराष्ट्रीय सेना के अतिरिक्त और कोई दूसरी जाति इस प्रकार पर्वत पर चढ़ सकती है अथवा नहीं—इसमें सन्देह है।

आधे मार्ग में पहुँच कर शिवाजी ने सहसा देखा कि ऊपर दुर्ग की दीवालों पर बहुत सी मशालें जल रही हैं। चिन्ताकुल हो सशोक खड़े हो गये—"क्या शत्रु ने मेरे आक्रमण को जान लिया है? नहीं तो दुर्ग की दीवाल के ऊपर इस प्रकार मशालों के जलाने की क्या आवश्यकता थी?" मशालों की किरणें नीचे भी पड़ने लगीं। ओह! दुर्ग वासीगण शत्रु की प्रतीक्षा कर रहे हैं और इसीलिए मशालों को जला रक्खा है, कि जिसमें कोई अंधकार के कारण कहीं क़िले पर चढ़ाई न कर बैठे। शिवाजी ने अपने सैनिकों को और भी वृक्षों, शैलराशियों में छिप छिप कर बड़ी सावधानी के साथ चलने का आदेश किया। चुपचाप महाराष्ट्रगण उस पर्वत पर चढ़ने लगे। कहीं बड़े वृक्ष को कहीं झाड़ियों को और कहीं शैलराशियों को कूदते फाँदते वे आगे बढ़ने लगे।

थोड़ी देर के बाद सेना एक स्वच्छ मैदान में पहुँच गई, जहाँ से कि यह रौशनी दीख पड़ती थी, परन्तु यहाँ से ऊपर चढ़ती हुई सेना अच्छी तरह से देखी जा सकती थी। इसलिए शिवाजी फिर रुक गये और पेड़ की ओट से इधर उधर देखने लगे, सामने मालूम हुआ कि अब १०० हाथ तक मैदान सफ़ाचट है, कोई पेड़ अथवा झाड़ी नहीं है। परन्तु आगे उसके पेड़ों का फिर सिलसिला है। यह सौ हाथ किस प्रकार से चला जाय। इधर उधर कहीं रास्ता नहीं है। यदि नीचे उतर कर दूसरे रास्ते से फिर क़िले पर चढ़ें तो रास्ते ही में सवेरा हो जायगा। शिवाजी कुछ देर सोचने लगे, फिर बाल्यावस्था के सुहृद् विश्वासी तानाजी मालुसरे को बुलाया और वहीं खड़े उन से कुछ बातचीत करने लगे। थोड़ी देर के बाद तानाजी वहाँ से एक ओर चले गये, शिवाजी खड़े खड़े उनकी प्रतीक्षा करने लगे और सेना भी अपने महाराज की आज्ञा सुनने को उत्सुक हो गई।

आधी ही घड़ी के भीतर तानाजी लौट आये, और नहीं मालूम शिवाजी से धीरे धीरे क्या कहने लगे। कुछ देर तक शिवाजी विचारने लगे परन्तु फिर उच्च स्वर से कहा—"हाँ वही ठीक है और दूसरा कोई उपाय ही नहीं है।"

पानी बरसने के कारण कुछ पत्थर और मिट्टी खिसककर एक जगह नाली सी बन गई थी। दोनों किनारे ऊँचे थे और बीच में गहरा था। उस नाली के भीतर भीतर होकर चलने से सम्भवतः शत्रु नहीं देख सकते इसलिए यही परामर्श स्थिर हुआ। सारी फ़ौज उसी नाली में उतर कर दुर्ग की चढ़ाई करने लगी। सैकड़ों पत्थर के टुकड़ों पर होकर सेना चुप-

चाप वृक्षों की श्रेणी में पहुँच गई । शिवाजी मनही मन भवानी को धन्यवाद देने लगे ।

उनके पास ही खड़ा हुआ एक सैनिक सहसा ज़मीन पर गिर पड़ा । शिवाजी ने देखा कि उसके वक्षःस्थल में तीर लगा हुआ है ! और एक तीर आया ! सन्नाता हुआ फिर दूसरा तीर निकल गया ! फिर तो तीरों की बौछार पड़ने लगी ! शत्रु लोग जागते थे । जब शिवाजी की सेना उस नाली में होकर ऊपर को चढ़ रही थी तभी उनको सन्देह हुआ था । इसी कारण उधर तीर चला रहे थे ।

शिवाजी की सारी सेना पेड़ों की ओट में खड़ी हो गई । तीर का चलना बन्द हो गया, परन्तु शिवाजी ने समझा कि शत्रु हमारा आना जानते हैं, क्योंकि उन्होंने दुर्ग की रखवाली कर रक्खी है और इसीलिए चारों ओर मशालें भी जला रक्खी हैं और इधर उधर फिरा भी करते हैं । अब शिवाजी की सेना उनसे केवल ५० हाथ की दूरी पर थी । उन्होंने निश्चय कर लिया कि आज दुर्ग-विजय में भीषण युद्ध करना होगा । इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है ।

शिवाजी के परम मित्र तन्नजी इन बातों को देखकर धीरे धीरे बोले "राजन् ! अभी नीचे लौट जाने का समय है । यदि आज दुर्ग हस्तगत न हुआ तो कल हो जायगा, परन्तु आज के साहस में सर्वनाश होने की सम्भावना है ।" शिवाजी ने गम्भीर स्वर से उत्तर दिया—"जयसिंह के समीप जो कुछ कहा है, उसी को करूँगा । आजही रुद्र-मण्डल को विजय करूँगा अथवा युद्ध में प्राण त्याग करूँगा ।"

शिवाजी चुपचाप उस वृक्ष-श्रेणी के भीतर से आगे बढ़ने लगे, और शत्रु को धोखा देने के लिए सौ सैनिकों को दूसरी ओर से गोल करने का हुक्म दे दिया। थोड़ी ही देर में दुर्ग के दूसरी ओर बन्दूकों की आवाज़ें सुनाई देने लगीं। शत्रुओं ने यह समझ कर कि शिवाजी ने इधर ही से चढ़ाई की है सब के सब उधर ही टूट पड़े। इधर जो दो-एक मशालें जल रही थीं वे बुझ गईं। उसी समय शिवाजी ने कहा—"महाराष्ट्रीय गण! सैकड़ों लड़ाइयों में आपने अपने विक्रम का परिचय दिया है, शिवाजी का नाम रक्खा है, वही परिचय आज भी दीजिए। तन्नजी! बाल्यकाल के सौहार्द का आज परिचय दीजिए।"

शिवाजी के इन उत्साह-वर्द्धक वाक्यों से सभोंका हृदय जोश से परिपूरित हो गया। सबके सब उस गम्भीर अन्धकार में अग्रसर हुए और बहुत शीघ्र दुर्ग के निकट पहुँच गये। आधी रात गुज़र गई। आकाश में भी प्रकाश नहीं है। जगत् निःशब्द है। केवल नैश वायु के वेग से पर्वत-वृक्ष के भीतर मरमर शब्द हो रहा था।

जब रुद्र-मण्डल के प्राचीर से शिवाजी केवल २० ही हाथ की दूरी पर थे उस समय उन्होंने देखा कि दीवार पर एक सिपाही है और वृक्षों के बीच में शब्द होने के कारण वह इधर आ गया था। तुरन्त ही एक माउली ने चुपचाप एक तीर चला दिया, अभागे सिपाही का मृत शरीर धड़ाम से नीचे गिर पड़ा।

सिपाही के नीचे गिरने के शब्द को सुनकर, एक, दो, दश, सौ यहाँ तक कि तीन सौ सैनिक प्राचीर के ऊपर जमा हो

गये । शिवाजी ने विचार किया कि अब छिपने से काम नहीं चलेगा । अतः सैनिकों को आगे बढ़ने की आज्ञा दी ।

तत्क्षण महाराष्ट्रियों की ओर से "हर हर महादेव" का गगनभेदी नाद होने लगा । एक दल दीवार के ऊपर चढ़ जाने को दौड़ गया । दूसरा दल वृक्षों के भीतर से प्राचीर पर खड़े हुए मुसलमानों पर तीर चलाने लगा । मुसलमानों ने भी शत्रुओं के आगमन से खेद नहीं किया, वरन् वे भी "अल्लाहोअकबर" के शब्द से पृथ्वी और आकाश को कम्पायमान करने लगे । कोई दीवार पर से तीर चलाने लगा, कोई दीवार से कूदकर मराठों पर आक्रमण करने लगा ।

शीघ्र ही प्राचीर और वृक्षों के मध्य में घमासान लड़ाई आरम्भ हो गई । दीवार के नीचे वाले मुसलमान बर्छी चला कर आक्रमणकारियों को मारने लगे, परन्तु फिर भी तीरों के चलने से मुसलमानों का विनाश होने लगा । लाशों की ढेरी से प्राचीर पार्श्व परिपूर्ण हो गया । योद्धागण उसी मृतदेह के ऊपर खड़े होकर खड्ग और बर्छा चलाने लगे । सैकड़ों मुसलमान वृक्षों के भीतर तक चले आये, परन्तु शिवाजी और माउलीगण शेर की भाँति कूद कूद कर उन्हें परास्त करने लगे । प्रबल प्रतापी अफ़ग़ान भी युद्ध-कौशल में अपटु नहीं था । पर्वत के भीतर से रक्तस्रोत बह निकला । वृक्षों के मध्य में, कङ्गणों के ऊपर, शिखाखण्डों के निकट बहुत से मराठे वीर खड़े होकर अव्यर्थ तीर-बर्छा चलाने लगे । तीरों की बौछार यवनों की संख्या घटाने लगी ।

इन शब्दों को मथन करता हुआ दुर्ग की दीवार से "महाराज शिवाजी की जय" का गर्जन वज्रनाद के समान सुनाई

पड़ा। एक मुहूर्त तक सब उसी ओर देखते रहे। मालूम हुआ कि शत्रुओं की सेना से निकल मृतदेहों के ऊपर खड़ा हो और रुधिर से भीगे हुए अपने बर्च्छे के सहारे एक महाराष्ट्र योद्धा छलांग मार कर मण्डल की भीत पर चढ़ गया है। उसने पठानों का झण्डा लात मार कर गिरा दिया और पताकाधारी प्रहरियों को तलवार से काट डाला। वही अपूर्व वीर प्राचीर के ऊपर खड़ा होकर वज्रनाद से "महाराज शिवाजी की जय" पुकार रहा है। पाठकगण! यह आपके पूर्व परिचित वीर रघुनाथ हवलदार हैं!

हिन्दू और मुसलमान लड़ाई छोड़कर अचम्भित हो गये। सभों की आँखें वीर रघुनाथ की ओर लग गईं। वीर रघुनाथ का लौहनिर्मित शिरस्त्राण तारों की रौशनी में चमक रहा था। हाथ और बाहु रक्त से भीगे हुए हैं। विशाल वक्षःस्थल के ऊपर दो-एक तीर के घाव हैं। विशाल हाथ में रक्तासुत दीर्घ बर्च्छा है। उज्ज्वल नयन, घूंघरवारे काले काले बालों से आवृत हैं। यदि उस युद्ध की नौका रघुनाथ को कहें, तो शत्रु की सेना समुद्रतरङ्गवत् दोनों ओर से निकल गई, परन्तु उस काल-रूपी बर्च्छाधारी के निकट जाने का किसी का साहस न हुआ। मालूम होता था कि स्वयं रणदेव ने दीर्घ बर्च्छा धारण कर आकाश से प्राचीर पर आगमन किया है।

थोड़ी देर तक सबके सब चुप रहे, परन्तु अफ़ग़ानों ने जब यह देखा कि दीवार पर शत्रु का अधिकार हो गया है, चारों ओर से धावा करने लगे। रघुनाथ चारों ओर से सेना रूपी कृष्णमेघ से घिर गया। यद्यपि रघुनाथ खड्ग और बर्च्छा चलाने में अद्वितीय था—परन्तु सैकड़ों सैनिक के

साथ युद्ध करना असम्भव है। अब रघुनाथ के जीवन में संशय है।

उसी समय रघुनाथ के विपुल साहस को देखकर माउली-गण बड़े विक्रम से उत्साहित हो प्राचीर की ओर दौड़े और सिंह की भाँति छलाँग मार कर दीवार पर चढ़ने लगे। दश, पचास, सौ दो सौ सैनिक थोड़ी ही देर में दुर्ग के दोनों ओर जमा हो गये, और रघुनाथ को बीच में करके महाराष्ट्री वीर लड़ने लगे, फिर छुरी और खड्गाघात से पठानों की श्रेणी तितर वितर होने लगी। थोड़ी देर में मार्ग अकण्टक हो गया क्योंकि सहस्रों महाराष्ट्र वीरों के सम्मुख तीन सौ पठान युद्ध नहीं कर सके।

उसी समय शिवाजी और तन्नजी प्राचीर से कूद कर दुर्ग के भीतर की ओर दौड़ने लगे। सैन्यगण ने समझा कि अब वहाँ और लड़ाई करना व्यर्थ है। सबके सब स्वामी के पश्चात् भीतर ही की ओर दौड़ गये।

शिवाजी विद्युद्गति की भाँति क़िलेदार के दरवाज़े पर पहुँच गये। यद्यपि क़िलेदार का घर बड़ा पुष्ट और सुरक्षित था, परन्तु शिवाजी के आदेशानुसार योद्धागण ने उसे घेर लिया और बाहर के प्रहरियों को मार डाला। शिवाजी ने बड़े ज़ोर से पुकार कर क़िलेदार से कहा—दरवाज़ा खोल दो, नहीं तो घर फूक दिया जायगा।" निर्भीक पठान ने उत्तर दिया—"चाहे आगसे जला दो, परन्तु काफ़िर के सामने दरवाज़ा नहीं खोलूँगा।"

तुरन्त ही महाराष्ट्रगण मशालों के द्वारा उस घर में आग लगाने लगे। पठान क़िलेदार और उसके साथी लोग तीर चला चला कर आगके बुझाने की चेष्टा करने लगे परन्तु थोड़ी देर

में आग भभक उठी । इस अग्निकाण्ड में कितने ही मशाल-धारी महाराष्ट्र-वीर भूतलशायी हो गये ।

प्रथम द्वार और गवाक्ष, फिर जालियाँ और धन्नियाँ जलने लगीं फिर सारा प्रासाद अग्निमय हो गया और थोड़ी देर में, धू धू करके ज्वाला आकाशमण्डल को कम्पायमान करने लगी । सारी अन्धकारमय निशा प्रज्ज्वलित हो उठी । दुर्ग के ऊपर नीचे, जंगल, तराई और आस पास के गावों में भी रौशनी पहुँचने लगी । उस दृश्य को देखकर सबने समझ लिया कि दुर्दमनीय शिवाजी और उनकी अप्रतिहत सेना ने मुसलमान दुर्ग को जय कर लिया है ।

वीरों के निकट जो कुछ साध्य है,पठान रहमतख़ाँ ने वह सब कुछ किया । अब केवल वीरों की भाँति प्राण त्याग करना शेष था । जब घरमें आग ने अपना पूरा अधिकार जमा लिया तब उसी समय रहमतख़ाँ और उसके साथी कोठे पर से कूद कूद कर भूमि पर आ खड़े हुए । एक एक सैनिक महावीरों की भाँति तलवार चलाने लगा और वह बहुतों को घायल कर मरने लगा ।

महाराष्ट्रगण ने सारे मुग़लों को घेर लिया। अब मुसलमानों में एक एक की कमी होने लगी । इस प्रकार बहुत से हताहत हुए । रहमतख़ाँ भी आहत और क्षीण होगया, परन्तु सिंह के समान युद्ध करता ही रहा । महाराष्ट्रों ने चारों ओर से घेर कर उस पर तलवार चलानी चाही । अब उसके जीवन की आशा नहीं, परन्तु इसी समय शिवाजी ने बड़े ज़ोर से चिल्ला कर कहा—"क़िलेदार को मारो नहीं, उसे क़ैद करलो ।"

क्षीण और आहत अफ़ग़ान के हाथ से सैनिकों ने खड्ग छीन ली और उसके हाथ बाँध कर उसे क़ैद कर लिया ।

अभी महाराष्ट्रीयगण आग को लगाते ही जाते थे कि, उसी समय शिवाजी ने देखा दुर्ग के दूसरी ओर काले काले बादलों की भाँति ५०० सुसज्जित अफ़ग़ान सैनिक क़िले पर चढ़ रहे हैं ।

शिवाजी ने पहले जब सौ सैनिकों को क़िले की दूसरी ओर आक्रमण करने को भेजा था, तभी बहुत से पठानों ने यह समझ कर कि शिवाजी इधर ही से चढ़ाई कर रहा है; टूट पड़े थे। चतुर महाराष्ट्रियों ने एक क्षण वृक्षों की ओट से लड़ाई की, फिर धीरे धीरे नीचे उतरते गये । इसी कारण मुसलमान उत्साहित होकर उन्हीं सौ महाराष्ट्रियों को खदेड़ने लगे । यहाँ कुछ और ही हुआ, अर्थात् दूसरी ओर से शिवाजी ने दुर्गविजय कर लिया, जिस का कि उन मुसलमान सैनिकों को कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ ।

परन्तु जब उन्होंने प्रासाद में आग लगी हुई देखी, और चारों ओर उजाला हो गया, तब उन्हें मालूम हुआ कि "आह ! बड़ा भ्रम हुआ" अब फिर क़िले पर चढ़ जाना चाहिए और वहाँ जाकर उनका विध्वंस करना चाहिए ।

शिवाजी ने केवल थोड़ी सी मुसलमान सेना को परास्त करके दुर्गविजय कर लिया था । अब देखते हैं कि पाँच सौ सेना द्रुतवेग से क़िले पर चढ़ रही है । शिवाजी का मुख गम्भीर हो गया ।

सुतीक्ष्ण-नयन से देखा कि दुर्ग के मध्य में क़िलेदार के प्रासाद से बढ़कर और कोई उतना दुर्गम स्थान नहीं है। चारों ओर खाई खुदी है। उनके पीछे पत्थर की भीतें भी बनी हैं, और आग से उन भीतों को कुछ भी क्षति नहीं हुई है। हाँ, महल के बीच में उसके द्वार और खिड़कियाँ जल कर गिर गई हैं और कोई कोई मकान भी पट गया है। बुद्धिमान् महाराज शिवाजी ने देख लिया कि अधिक सेना के साथ युद्ध करने के लिए इससे उत्तम और अन्य कोई स्थान उपयोगी नहीं हो सकता।

क्षण भरमें ही उन्होंने सब विचार लिया। तन्नजी और दो सौ सैनिकों को उस प्रासाद में प्रवेश करने का आदेश किया। भीतों की बग़लों में तीरंदाज़ रक्खे। प्रत्येक खिड़की पर तीरंदाज़ ही को खड़ा करा दिया। दरवाज़ों पर बर्छाधारी खड़े हो गये। कहीं गिरी हुई राख को साफ़ करके पत्थरों को एकत्रित कर लिया। एक ही घड़ी में बहुत कुछ ठीक ठाक हो गया। शिवाजी उस समय तन्नजी से हँसकर कहने लगे—"यदि शत्रु अब आक्रमण करें तो तुम उनसे भले प्रकार रक्षा कर सकते हो, परन्तु ऐसा भी प्रतीत होता है कि शत्रु यहाँ पहुँचने के प्रथम ही परास्त हो जायँगे। यदि अन्धकार में एकबार ही उनपर चढ़ जायँ तो वे छिन्न भिन्न होकर भागेंगे। तन्नजी! तुम दो सौ सैनिकों को लेकर यहाँ रहो। मैं एक बार उद्योग कर देखूँ।"

तन्नजी—"महाराज! तन्नजी क्या, वरन् एक भी महाराष्ट्रीय योद्धा यहाँ नहीं रह सकता। क्षत्रियराज! सम्मुख समर में सब ही चतुर हैं। जो यह स्थान घिर जाय तो आपके यहाँ बिना रहे किसकी बुद्धिमता से यह राजमहल रक्षित होगा?"

शिवाजी कुछ हँसकर बोले, "तन्नजी! तुम्हारी बात ठीक है! हम सामने शत्रु को देखकर युद्धाभिलाषी हुए हैं, परन्तु तुम्हारा परामर्श उत्कृष्ट है। यहाँ हमारा रहना उचित है। किन्तु हमारे हवलदारों में कौन ऐसा वीर है जो केवल दो सौ सवारों को साथ ले जाकर अफ़ग़ानों को अन्धेरे ही में सहसा आक्रमण करके उन्हें परास्त करदे?

पाँच, सात, दश हवलदार एकबारगी आगे खड़े हो गये। सभों ने एक स्वर से कहा—"हम परास्त करेंगे।" परन्तु रघुनाथ एक किनारे चुपचाप खड़े ही रहे और उन्होंने कुछ भी नहीं कहा।

शिवाजी धीरे धीरे सबकी ओर देखने लगे, फिर रघुनाथ की ओर देखकर कहा, "हवलदार! यद्यपि तुम इन सभों में छोटे हो परन्तु अपनी भुजाओं में महाबल रखते हो। आज मैं तुम्हारा विक्रम देखकर बड़ा सन्तुष्ट हुआ। रघुनाथ! तुमने आज दुर्गविजय का आरम्भ किया है। तुम्हीं उसका उपसंहार करो।"

रघुनाथ चुपचाप नीचे सिर किये हुए दो सौ सिपाहियों को साथ लेकर बिजुली के समान दम भर में बाहर जा पहुँचा। शिवाजी ने तन्नजी की ओर देखकर कहा—"यह हवलदार राजपूत है। इसके मुखमण्डल और आचरण को देखकर ज्ञात होता है कि यह कोई वीरवंशोद्भव योद्धा है। परन्तु वह कभी अपनी वंशपरम्परा की एक बात भी नहीं कहता, और न अपने असाधारण साहस सम्बन्धी कोई गर्वित वार्ता ही मुख से निकालता है। एक दिन रघुनाथ ने पूना में मेरे प्राणों की रक्षा की थी और आज दुर्गविजय में भी वही अग्रसर हुआ था, परन्तु हमने आज तक कोई पुरस्कार नहीं दिया। कल

सभा में राजा जयसिंह के सम्मुख राजपूत हवलदार को उचित पुरस्कार दूँगा।"

रघुनाथ ने जिस कार्य्य का भार लिया था उसे पूरा किया। जब अफ़ग़ान लोग पर्वत आरोहण कर रहे थे उसी समय महाष्ट्रीयगण उन पर बर्छी चलाने लगे। फिर "हर हर महादेव" के भीषण नाद से युद्ध का उपक्रम किया। वह वेग बड़ा भयंकर था। अफ़ग़ानियों के रोकने से नहीं रुका। पल भर में उनका मोर्चा उखड़ गया और वे लोग फिर पीछे लौट पड़े। उनका लौटना था कि माउली लोग छुरियों के आघात से उन्हें विछिन्न करने लगे। परन्तु रघुनाथ ने उच्चस्वर से आदेश किया कि "भागे हुओं को जाने दो, उन्हें मारो मत। शिवाजी की आज्ञा पालन करो।" लड़ाई ख़तम हुई। अफ़ग़ान पहाड़ का चढ़ना छोड़ नीचे उतर कर भागने लगे।

रघुनाथ ने दुर्ग के प्राचीर के स्थान स्थान पर प्रहरियों को स्थापित कर दिया, और गोला, बारूद, अस्त्र, शस्त्र के घरों पर अपना पहरा बिठा दिया। दुर्ग के समस्त स्थान को हस्तगत करके उसे सुरक्षित कर रघुनाथ शिवाजी के पास आया और सिर नवाकर सारी कथा सुनाई।

उसी समय उषा की रक्तिमाच्छटा पूर्वदिशा से दीख पड़ने लगी। प्रातःकालीन मन्द, सुगन्धित, शीतल समीर चलने लगा। अब दुर्ग में शान्ति है। कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता। मानों इस सुन्दर शान्त वृक्षशोभित पर्वत की शिखा पर किसी ऋषि अथवा मुनि का आश्रम है। ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानों कभी यहाँ रण हुआ ही नहीं।

———

सोलहवाँ परिच्छेद

विजेता को पुरस्कार

दूसरे दिन दोपहर के समय दुर्ग में एक सभा संगठित हुई। चाँदी के बने हुए चार खम्भों पर लालवर्ण का शामियाना ताना गया। नीचे लाल कपड़ों से सजी हुई गद्दी पर राजा जयसिंह और राजा शिवाजी बैठे हैं। चारों ओर क्रमानुसार सैनिकगण बैठे हुए हैं और बन्दूक, ढाल, और तलवारों से सुसज्जित हैं। उनकी बंदूकों के किरच में लाल रंग की पताकायें लगी हुई हैं, जो कि वायु में धीरे धीरे हिल रही हैं। चारों ओर दूसरे लोग बैठे हैं और दिल्लीश्वर की जय, महाराज जयसिंह की जय और महाराज शिवाजी की जयजयकार मना रहे हैं।

जयसिंह ने हँसकर शिवाजी से कहा—"आपने जबसे दिल्लीश्वर का पक्ष लिया है तबसे आप उनके दाहिने हाथ बन गये और आपके इस उपकार को दिल्लीश्वर कभी नहीं भूलेंगे। जय तो मानो आपके सामने हाँथ बाँधे तैयार है।"

शिवाजी—"जहाँ महाराजा जयसिंह हैं वहीं जय है।"

जयसिंह—"हमारा अनुमान ऐसा अवश्य था कि विजयपुर हस्तगत होगा, परन्तु ऐसी जल्दी नहीं कि बस एकही रात में क़िला फ़तह!"

शिवाजी—"महाराज! दुर्ग-विजय की शिक्षा तो हमने लड़कपन ही से प्राप्त की है, तथापि जिस प्रकार हमने अनायास हस्तगत करने का विचार किया था, वह सिद्ध नहीं हुआ।"

जयसिंह—"क्यों?"

शिवाजी—"हमने विचार किया था कि मुसलमान सोते होंगे, परन्तु पहुँचने पर मालूम हुआ कि वे सबके सब जागते हैं और लड़ाई की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस दुर्ग के विजय करने में जैसी लड़ाई हुई और जितने वीर मारे गये, पहले कभी किसी दुर्ग के विजय करने में ऐसी क्षति नहीं उठानी पड़ी।"

जयसिंह—"शत्रु लोग यह विचार कर कि अब रात के समय भी लड़ाई होती है सदैव तैयार रहते हैं।"

शिवाजी—"सत्य है। परन्तु आज तक जितने दुर्ग विजय किये हैं, किसी में भी ऐसी सजी सजाई सेना तैयार नहीं मिली।"

जयसिंह—"शिक्षा पाकर लोग तैयार होते जाते हैं, परन्तु चाहे सतर्क रहें अथवा न रहें राजा शिवाजी का गतिरोध करना असाध्य है, शिवाजी की जय अनिवार्य्य है।"

शिवाजी—"महाराज की कृपा से दुर्ग तो जीत लिया, परन्तु कल रात की क्षति इस जीवन में पूर्ण नहीं हो सकती। हज़ार आक्रमणकारियों के मध्य में दो-तीन सैा को हम अब इस संसार में नहीं देख सकते। उस प्रकार की दृढ़प्रतिज्ञ, विश्वस्त सेना अब हमको नहीं मिल सकती।"

शिवाजी क्षण भर शोकाकुल हो उठे; फिर आँखों के इशारे से वंदीगण को हाज़िर करने का आदेश किया।

रहमतख़ाँ के अधीन हज़ार जवान रहकर उस दुर्ग की रक्षा करते थे परन्तु कल्ह की लड़ाई में केवल ३०० सैनिक वन्दी हो सके। शेष या तो भग गये या मारे गये। वन्दीगणों के दोनों हाथ पीछे वँधे हुये हैं और वे सब सभा में लाये गये।

शिवाजी ने आदेश किया—"सभों के हाथ खोल दिये जावें। फिर उन्होंने कहा—"अफ़ग़ानगण ! तुमने वीरों का नाम रक्खा है। तुम्हारे आचरण से हम सन्तुष्ट हो गये हैं। अब तुम स्वाधीन हो। यदि इच्छा हो तो दिल्लीश्वर के कार्य में नियुक्त हो जाओ। नहीं तो अपने स्वामी विजयपुर के सुल्तान के पास चले जाओ। हमारी आज्ञा है। तुम्हारा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।"

शिवाजी के इस आचरण को देख कर कोई विस्मित नहीं हुआ। सभी युद्धों और सभी दुर्ग-विजय के पश्चात् वह विजितगणों के प्रति यथेष्ट दया-प्रकाश करते हैं, जिसके कारण उनके कोई कोई मित्र उन्हें दोष देते हैं, किन्तु शिवाजी उसे स्वीकार नहीं करते। शिवाजी की ऐसी उदारता देख कर कई एक अफ़ग़ान ने दिल्लीश्वर का वेतनभोगी होना स्वीकार भी कर लिया।

तत्पश्चात् शिवाजी ने क़िलेदार रहमतख़ाँ को लाने का आदेश दिया। उसके भी दोनों हाथ पीछे की ओर बाँधे हुए हैं। सिरमें तलवार का घाव है। बाँह में तीर के चुभने से घाव

हो गया है। वीर आकर सभा में सदर्प खड़ा हो गया और वीरों की भाँति शिवाजी की ओर देखने लगा।

शिवाजी इस वीरश्रेष्ठ को देख स्वयं आसन त्याग कर खड़े हो गये और अपनी तलवार से उसके बन्धन काट डाले, फिर धीरे धीरे कहने लगे—"वीरवर! युद्ध के नियमानुसार आप के हाथ बाँधे गये थे और आप एक रात बंदी की भाँति रहे भी। आप मेरे इस दोष को क्षमा कीजिए। इस समय आप स्वाधीन हैं। जय-पराजय तो भाग्य के अनुसार होता है, परन्तु आप जैसे वीर के साथ लड़कर हम सम्मानित हो गये हैं।"

रहमतख़ाँ कहाँ तो प्राणदंड की आशंका किये हुए था परन्तु शिवाजी की इस भद्रता को देखकर उसका हृदय विचलित हो गया। युद्ध के समय किसी ने कभी रहमतख़ाँ को कातर स्वरूप में नहीं देखा था। परन्तु आज वृद्ध योद्धा के दोनों उज्ज्वल नेत्रों से दो बूँद आँसू टपक ही पड़े। रहमतख़ाँ ने मुख फिरा कर उसे पोंछ डाला और धीरे धीरे कहने लगे—"क्षत्रियराज! कल रात मैंने आपकी ताक़तेबाज़ू से शिकस्त खाई थी; आज आपके अख़लाफ़ से उससे कहीं ज़ियादा शिकस्त मिली। जो हिन्दू और मुसलमानों का मालिक है, जो बादशाहों का बादशाह है, और जो ज़मीनो आसमाँ का सुलतान है उसी ने आपको सलतनत के विसअ़त की अक़्ल दी है।"

जयसिंह—"पठान-सेनापति! आपने भी अपने उच्चपद की योग्यता को पूरी तरह निभाया है दिल्लीश्वर आप जैसे सेनापति को पाकर आपकी पद-वृद्ध करने में कोई कसर नहीं रक्खेंगे। क्या

मैं दिल्लीश्वर को ऐसा पत्र लिख सकता हूँ कि आप जैसे भद्र-सेनापति ने प्रधान कर्मचारी हो स्वीकार कर लिया है ?"

रहमतख़ाँ—"महाराज ! आपकी तहरीक से मुझे बड़ी इज़्ज़त मिली। मगर बचपन से जिसका नमक खा रहा हूँ उसके काम को छोड़ नहीं सकता। जबतक हाथ में शमशीर पकड़ सकता हूँ तबतक विजयपुर के लिए ही लड़ूँगा।"

शिवाजी—"वही होगा। आज की रात आप यहीं विश्राम करें। कल हमारी एक सेना आपको निरापद विजयपुर तक पहुँचा आवेगी।"

रहमतख़ाँ—"महाराज ! आपने हमारे साथ सलूक किया है। मैं भी आपके साथ बुराई नहीं कर सकता और न कोई बात पोशीदा रख सकता हूँ। आप अपनी फ़ौज में ख़ूब तलाश करके देखिए। सभी आपके ख़ैरख़ाह नहीं हैं। कल लड़ाई के पहले ही ख़ुफ़िया तौर पर मुझे इसका पता चल गया था और यही सबब है कि सारी रात हम मुसल्लह लड़ाई के लिए तुले बैठे रहे। ख़बररसाँ आपका एक सैनिक है। इससे ज़्यादा हम और नहीं बता सकते। सचाई और क़ौलो-क़रार को तोड़ नहीं सकते।"

इतना कहकर रहमतख़ाँ धीरे धीरे पहरियों के साथ घर की ओर चला गया। क्रोध के वेग से शिवाजी का मुखमंडल एक बार ही काला सा हो गया। आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं, शरीर काँपने लगा। शिवाजी के साथियों ने समझा, इस समय परामर्श देना वृथा है। लोगों ने समझ लिया कि बस आज कुशल नहीं है।

जयसिंह ने शिवाजी की ऐसी दशा देखकर कहा—"शान्त हो जाव।" फिर सेना को सम्बोधन करके कहा—"इस दुर्ग की चढ़ाई की बात तुम्हें कब मालूम हुई थी?"

सैन्यगण ने उत्तर दिया—"महाराज! एक प्रहर रात व्यतीत हो जाने के पश्चात्।"

जयसिंह—"उसके पहले भी कोई कुछ जानता था?"

सैन्यगण—"बस इतना कि, आज रात को किसी दुर्ग पर आक्रमण किया जायगा—परन्तु किस दुर्ग पर आक्रमण होगा उसका नाम नहीं मालूम था।"

जयसिंह—"भला, किस समय तुम दुर्ग के निकट पहुँच गये थे?"

सैन्यगण—"कोई छै घड़ी रात गये।"

जयसिंह—"अच्छा, एक प्रहर रात से छै घड़ी रात गये के बीच में क्या तुम सब एकत्र थे? कोई भी अनुपस्थित नहीं था? यदि कोई रहा हो तो उसे प्रकाशित कर दो। देखो एक के कारण हज़ारों अपमानित न हों। तुमने शिवाजी के अधीन देश देश गाँव गाँव में लड़ाई की है। राजा तुम्हारा विश्वास करता है। तुम भी ऐसा प्रभु कभी नहीं पाओगे। तुम भी अपने को विश्वासयोग्य होने का प्रमाण दो। यदि कोई विद्रोही है तो उसे सम्मुख लाओ। यदि वह कल की लड़ाई में मारा गया है तो उसका नाम बताओ। यों सन्देहवश सब कोई क्यों कुलषित होते हो?"

तब सेना के सिपाही गए कल की बातें स्मरण करने लगे और आपस में बातचीत भी करने लगे। शिवाजी का क्रोध कुछ शान्त हुआ। सावधान होकर उन्होंने कहा—"महाराज! यदि आप उस कपटाचारी योद्धा को बतादें तो मैं चिरकाल तक आपका ऋणी रहूँगा।"

चन्द्रराव नामक एक जुमलादार ने अग्रसर हो धीरे से कहा—"महाराज! कल जब एक प्रहर रात गये हमलोग युद्ध की यात्रा कर रहे थे उस समय मेरा अधीनस्थ एक हवलदार खोजने पर भी नहीं मिला था, परन्तु दुर्ग के नीचे वह मिल गया था।"

शिवाजी—"वह कौन है? क्या अभी तक वह जीवित है?"

विद्रोही का नाम सुनकर सबके सब स्तब्ध हो गये! किसी के श्वास-प्रश्वास का शब्द भी सुनाई नहीं पड़ता था। यदि उस समय सुई भूमि पर गिर पड़ती तो उसके गिरने का शब्द भी सुन पड़ता।

सभी रघुनाथ हवलदार का नाम सुनकर विस्मय-युक्त हो गये।

चन्द्रराव एक प्रसिद्ध योद्धा थे, परन्तु रघुनाथ के आने से उनका नाम, उनकी ख्याति विस्मृत हो चली थी। मनुष्य के स्वभाव में ईर्ष्या के समान भयंकर और बलवती कोई शक्ति नहीं है।

शिवाजी का मुखमण्डल फिर कृष्णवर्ण हो गया। वे दाँतों से होठों को दबाकर क्रोध के साथ बोले, "निन्दक कपटाचारी!

तेरी निन्दा रघुनाथ के यश को स्पर्श नहीं कर सकती । मैंने रघुनाथ का आचरण अपने नेत्रों से देखा है, किन्तु मिथ्या-निन्दक को दण्ड सेना दे ।"

वज्रसमान वर्च्छे को तौल कर ज्योंही शिवाजी ने चन्द्रराव पर वार करना चाहा त्योंही तुरन्त रघुनाथ सम्मुख आनकर खड़ा हो गया और कहने लगा—

"महाराज! चन्द्रराव का प्राण-संहार न कीजिए। वह झूँठ नहीं कहते हैं। हमें अवश्य दुर्ग तले पहुँचने में विलम्ब हो गया था।"

फिर सभा निस्तब्ध हो गई। सबके सब अवाक् हो गये।

शिवाजी क्षण भर मूर्तिवत् निश्चेष्ट हो गये। फिर धीरे धीरे ललाट के स्वेद-विन्दु को पोंछकर बोले—"क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ? क्या रघुनाथ तुमने यह कार्य्य किया है? क्या तुम प्राचीर-लङ्घन के समय अद्भुत विक्रम दिखा कर सबसे अग्रसर नहीं हुए थे? और ३०० सिपाहियों को लेकर तुमने अफ़ग़ानों को परास्त नहीं किया था? क्या यह सब इसी-लिए किया था कि शत्रुओं को इसका संवाद दे चुके थे?"

रघुनाथ ने धीरे से कहा—"प्रभु! मैं इस दोष से निर्दोषी हूँ।"

दीर्घकाय निर्भीक तरुण योद्धा शिवाजी के क्रोधानल के सम्मुख निष्कम्प होकर खड़ा है। पलक भी नहीं मारता है। सारी सभा और असंख्य लोग तीव्र दृष्टि से रघुनाथ को देख रहे हैं। रघुनाथ स्थिर, अविचल, अकम्पित है। उसके विशाल वक्षः-

स्थल से केवल गम्भीर निश्वास की आवाज़ आ रही है। कल जिस प्रकार असंख्य शत्रुओं के बीच में खड़ा था, आज तदपेक्षा अधिक संकट में घिर कर भी उसी प्रकार योद्धा अविचल है।

शिवाजी गर्ज कर बोले—"फिर किस लिए मेरी आज्ञा का उलङ्घन करके एक प्रहर रात तक अनुपस्थित थे?"

रघुनाथ के अधर कुछ काँप गये, परन्तु वे कुछ उत्तर न देकर चुपचाप भूमि की ओर देखने लगे।

रघुनाथ को चुपचाप देखकर शिवाजी का सन्देह बढ़ गया। आँखें दोनों लाल हो गईं। क्रोध से कम्पित होकर बोले—"कपटाचारिन्! इसी कारण वीरत्व प्रदर्शन किया था? परन्तु खोटी घड़ी में शिवाजी को छलने की चेष्टा की थी।"

रघुनाथ ने उसी प्रकार धीर अकम्पित स्वर से कहा—"राजन्! छल और कपटाचरण हमारे वंश की रीति नहीं है। चन्द्रराव भी इस बात को जानते हैं।"

रघुनाथ के इस स्थिर भाव ने शिवाजी के क्रोधानल में आहुति का काम किया। उन्होंने कर्कशभाव में कहा—"पापिष्ट! परित्राण-चेष्टा वृथा है। क्षुधार्त्त सिंह के ग्रास से बचकर भाग जाना सम्भव है, परन्तु मेरे क्रोध से बच जाना असम्भव है।"

रघुनाथ ने पूर्ववत् धीरे से जवाब दिया—"मैं महाराज के निकट परित्राण की प्रार्थना नहीं करता, मनुष्यमात्र के निकट क्षमा की प्रार्थना भी नहीं कर सकता। भगवान्! तुम मेरे दोष की मार्जना करो।"

शिवाजी ने उन्मत्त की भाँति बरछा उठाकर वज्रनाद से आदेश किया—"विद्रोहाचरण को प्राणदण्ड होना चाहिए।"

रघुनाथ वज्रसमान बर्छे को देखकर ज़रा भी चलायमान नहीं हुए और कहने लगे—"योद्धा मरने के लिए तैयार है परन्तु इसने विद्रोहाचरण नहीं किया।"

शिवाजी से और नहीं सहन हो सका। अव्यर्थ मुष्टि में बर्छा काँप गया परन्तु उसी समय राजा जयसिंह ने उनका हाथ पकड़ लिया।

उस समय क्रोध के मारे शिवाजी का मुख-मण्डल विकृत हो गया था, शरीर काँप रहा था। वह जयसिंह का समुचित सम्मान करना भी भूल गये और कर्कश शब्दों में कहने लगे—"हाथ छोड़ दो। मैं नहीं जानता कि राजपूतों का क्या नियम है? और न उसके जानने की मुझे आवश्यकता है। परन्तु महाराष्ट्रीय सनातन नियम यह है कि विद्रोही को प्राण-दण्ड देना चाहिए। शिवाजी उसी का पालन करेगा।"

जयसिंह ने कुछ भी क्रोध न करके धीरे से कहा—"क्षत्रिय-राज! आज आप जो कर रहे हैं कल उसको समझ कर पछतावेंगे। यदि इसको आज प्राणदण्ड देंगे तो जन्मभर इसका खेद रहेगा। लड़ाई ही करते करते हमारे बाल पके हुए हैं। हमारी बात मानो। यह योद्धा विद्रोही नहीं है। किन्तु इसके विचार करने की भी इस समय आवश्यकता नहीं है। आप हमारे सुहृद् हैं। इसलिए मैं अपने सुहृद् के निकट इस राजपूत योद्धा की प्राण-भिक्षा चाहता हूँ। हमें भिक्षा-दान दीजिए।"

शिवाजी जयसिंह की भद्रता को देख कर अप्रतिभ हो गये और धीरे से उन्होंने उत्तर दिया—"तात ! मेरी ढिठाई क्षमा करो। आपकी बात की कभी अवहेला नहीं की जा सकती, परन्तु शिवाजी विद्रोही को क्षमा करे—इस बात पर किसी को विश्वास न होगा। हवलदार ! राजा जयसिंह ने तुम्हारी जीवन-रक्षा की है किन्तु हमारे सम्मुख से दूर हो जाओ। शिवाजी विद्रोही के मुख का दर्शन नहीं किया चाहता।"

रघुनाथ सभा-स्थल से चलने ही वाले थे कि शिवाजी ने फिर कहा—"ठहर जा, दो वर्ष हुए कि तुम्हारी कमर में मैंने ही इस तलवार को बाँधा था। विद्रोही के पास इस खड्ग का रहना उचित नहीं है। क्षत्रियगण ! तलवार छीन लो, फिर इस विद्रोही को क़िले से बाहर निकाल दो।"

रघुनाथ को जब प्राणदण्ड की आज्ञा हुई थी तब वह अविचलित नहीं हुआ था, किन्तु जब प्रहरीगण उससे तल-वार छीनने लगे तब उसका शरीर काँप गया। दोनों आँखें लाल हो गईं, परन्तु उसने अपने क्रोध को दबा रक्खा और शिवाजी की ओर एकबार देखकर भूमि तक सिर नवा कर चुपचाप दुर्ग से बाहर चला गया।

सन्ध्या की छाया क्रमानुसार गाढ़तर होकर जगत् को आवृत करने लगी। एक जन पथिक अकेला सुनसान पर्वत से होकर मैदान की ओर चला जा रहा है। कभी गाँव में होकर कभी गाँव से बाहर ही बाहर निकल जाता है। अन्धकार गम्भीर हुआ। आकाश बादलों से ढक गया। रुक रुक कर रात्रि-समीरण चलने लगा। फिर अँधेरे में वह पथिक दृष्टि न आया और न उसके पश्चात् किसी ने उसे देखा।

सत्रहवाँ परिच्छेद

चन्द्रराव जुमलेदार

चन्द्रराव जुमलेदार के साथ हमारा यह प्रथम परिचय है। वह बड़ा बुद्धिमान् और असाधारण बलशाली है। चन्द्रराव अपनी प्रतिज्ञा का बड़ा पक्का है। यद्यपि वह रघुनाथ से केवल ५ या ६ वर्ष ही बड़ा है, परन्तु दूर से देखने पर ४० वर्ष का मालूम होता है। इस अवस्था में ही उसके विशाल ललाट पर चिन्ता की दो-एक रेखायें देखी जाती हैं। सिर के दो चार बाल भी पक गये हैं। आँख छोटी हैं परन्तु उजली हैं। चन्द्रराव को जो लोग अच्छी तरह जानते हैं उनका कथन है कि जिस प्रकार वह तेज और साहस में दुर्दमनीय है उसी प्रकार वह दुर्दमनीय, गम्भीर और स्थिरप्रतिज्ञ भी है। सारे बदन पर दो-एक भाव विशेष रूप से व्यक्त थे। सारा बदन मानो लोहे का बना हुआ है। जिन्हें चन्द्रराव के गुणों का ज्ञान था वह कभी भूल कर भी जुमलेदार से विवाद नहीं करते थे। इसके अतिरिक्त चन्द्रराव में एक और गुण कहिए अथवा दोष था, जिसको कोई दूसरा नहीं जान सकता था—विजातियों की उच्च अभिलाषायें उसके हृदय को आग की भाँति जलाया करती थीं। वह अपने असाधारण बुद्धि-बल से आत्मोन्नति का आविष्कार करता, अतुल दृढ़ प्रतिज्ञा सहित उसको अवलम्बन करता और खड्ग द्वारा उस मार्ग को

निष्कण्टक करता था । शत्रु हो चाहे मित्र, दोषी हो अथवा निर्दोषी, अपकारी हो वा परमोपकारी, कोई भी हो, जो उसके मार्ग का बाधक होता उसे वह साफ़ कर डालता था । अभाग्य-वश आज रघुनाथ उस मार्ग में पड़ गया था, इसीलिए उसको जुमलेदार ने निःसङ्कोच हो पतंगे की भाँति अलग करके अपनी ख्याति के मार्ग को अकण्टक कर लिया । इस प्रकार असा-धारण मनुष्य का पूर्व वृत्तान्त जानना आवश्यकीय है । इसके साथ ही साथ रघुनाथ के वंश का भी कुछ कुछ पता मिल जायगा । सुनिए ।

चन्द्रराव भी रघुनाथ का कुछ वृत्तान्त प्रकाश नहीं करता था । राजा यशवंतसिंह का एक प्रधान सेनापति गजपतिसिंह ने चन्द्रराव के लड़कपन में उसका लालन-पालन किया था । अनाथ चन्द्रराव, गजपति के घर का काम-काज करता, उसके लड़के और लड़की की सेवा करता और युद्ध के समय में गज-पति के साथ हो लेता ।

जब चन्द्रराव केवल पन्द्रह वर्ष का था तभी गजपति उसकी गम्भीर चिन्ता, दुर्दमनीय तेज एवं दृढ़ प्रतिज्ञा को देख कर आनन्द में मग्न हो गया था । अपने पुत्र रघुनाथ की भाँति चन्द्र-राव को भी जानने लगा और उसे अपनी सेना में सम्मिलित कर लिया ।

चन्द्रराव सेना में शामिल होते ही अपनी गम्भीरता और अपने विक्रम के प्रताप से दिन दिन ऐसा यशोलाभ करता गया कि पुराने सैनिक चकित हो गये । लड़ाई के समय जब कठिन समय आ पड़ता, प्राणनाश की सम्भावना होती, शत्रु

तथा मित्र की लोथें पड़ी रहतीं, रुधिर बहता, आकाश धूलि से आच्छादित हो जाता, वीरों के सिंहनाद और घायलों के आर्त्तनाद से कान विदीर्ण हो जाते वहाँ पर यदि कोई धीर गम्भीर योद्धा देखा जाता तो यही चन्द्रराव मिलता । यह १५वर्ष का बालक वहाँ चुपचाप खड़ा महा विक्रम दिखाता, मुँह से शब्द नहीं परन्तु नेत्र अग्नि के समान चमकाता रहता, माथे में क्रोध के चिह्न विदित होते । युद्ध समाप्त होने पर जहाँ विजयी सिपाही एकत्र हो कर रात्रि में गीत इत्यादि गाते, हँसी दिल्लगी करते—वहाँ चन्द्रराव अकेले डेरे में पड़ा होता अथवा नदी या पहाड़ के पार्श्व में चुपचाप बैठा कुछ सोचा करता । चन्द्रराव के उद्देश अब कुछ कुछ सिद्ध हो गये । अब वह अज्ञात राजपुत्र-शिशु नहीं है । उसका पद बढ़ गया है । गजपतिसिंह की सेना में चन्द्रराव एक असाधारण वीर के नाम से प्रसिद्ध है । मर्य्यादा-वृद्धि के साथ ही साथ चन्द्रराव के गर्व की सीमा भी विस्तृत होती जाती है ।

एक दिन एक लड़ाई में चन्द्रराव ने गजपति को बड़ी भारी आपदा से बचाया था । इसलिए गजपति ने लड़ाई के अन्त में चन्द्रराव को पास बुलाकर सबके सामने यथोचित सम्मानित किया और कहा -"चन्द्रराव ! आज तुम्हारे साहस ने हमारे प्राणों की रक्षा की है । इसका पुरस्कार तुम्हें क्या दिया जावे ?"

चन्द्रराव मुँह नीचा करके चुप हो रहा । गजपति ने फिर स्नेहपूर्ण शब्दों में कहा—"सोच लो, अर्थ, क्षमता, पदवृद्धि जो तुम्हारी इच्छा हो माँगो । चन्द्रराव ! तुम्हारे लिए हम सब कुछ दे सकते हैं ।"

अब चन्द्रराव ने धीरे धीरे आँख उठा कर कहा—"राजपूत वीर कभी अन्यथा अङ्गीकार नहीं करते। वीरश्रेष्ठ! अपनी कन्या लक्ष्मी देवी मेरे साथ विवाह दो।"

सारी सभा सन्न हो गई! गजपति के सिर पर तो मानो आकाश फट पड़ा। क्रोध के कारण सारा शरीर काँपने लगा। म्यान से तलवार कुछ बाहर निकल आई, परन्तु क्रोध को रोक कर गजपति ने ज़ोर से हँस कर कहा—"अङ्गीकार का पालन स्वीकार करता हूँ—परन्तु तुम्हारा जन्म महाराष्ट्र देश में हुआ है। राजपूत-दुहिता के निकट महाराष्ट्रीय दस्युओं की भाँति पर्वत-कन्दराओं और जङ्गलों में रहने का अभ्यास नहीं है। पहले लक्ष्मी के रहने के लिए उपयुक्त वासस्थान निर्माण कर लो। जङ्गली कुटियों और पर्वत-कन्दराओं को ठीक कर लो। दस्यु से परिवर्त्तन करके अपना नाम योद्धा बना लो। फिर राजपूत-दुहिता के साथ विवाह करने की कामना करो। इस समय यदि और कोई कामना हो तो उसका प्रकाश करो?"

चन्द्रराव ने फिर धीरे धीरे कहा, "और कोई चाहना नहीं है। जो इच्छा थी उसे प्रभु के सामने प्रकट कर दिया।"

सभा भङ्ग हुई। सब अपने अपने शिविर में चले गये। उदारचेता गजपति को चन्द्रराव के ऊपर जो क्रोध हुआ था उसे वह सदा के लिए भूल गया। परन्तु चन्द्रराव को यह बात विस्मृत नहीं हुई। शाम के वक्त वह अपने डेरे में पहुँच कर चुपचाप कुछ सोचने लगा। यद्यपि इस समय रजनी अन्धकार से आच्छादित हो रही है, परन्तु चन्द्रराव के मस्तिष्क में जिस घोर तम अँधेरे का प्रवेश हो रहा है, वह उससे शत गुण-काला है, नहीं नहीं वह विष है।

थोड़ी देर के बाद चन्द्रराव ने एक दीपक जलाया। वह चुपचाप नहीं मालूम एक पुस्तक में क्या लिखने लगा। फिर लिख लेने के बाद पुस्तक को बन्द कर दिया, फिर खोला, कुछ और देखा, फिर बन्द कर दिया और विकट हास्य किया। उसी समय उसके एक मित्र ने आकर पूछा—"चन्द्रराव! तुम क्या लिखते थे?" चन्द्रराव ने जल्दी से उत्तर दिया—"कुछ नहीं, हिसाब लिख रहा था हम किसके कितने ऋणी हैं—वही देख रहे थे।"

मित्र चला गया। चन्द्रराव ने फिर कापी को खोला। वास्तव में वह हिसाब की किताब है। चन्द्रराव ने उसमें एक ऋण की कथा लिखी थी।

इस घटना को हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया। तत्पश्चात् औरङ्गज़ेब और राजा यशवन्तसिंह से उज्जैन में लड़ाई ठन गई, इस लड़ाई में गजपतिसिंह मारे गये। "माधवी-कंङ्कण" नामक उपन्यास पुस्तक में इसका विशेष वर्णन है। पाठकगण उसे पढ़ कर लाभ उठा सकते हैं।

गजपति के अनाथ बालक और बालिका माड़वार से फिर मेवाड़ के सूर्य्यमण्डल नामक दुर्ग में वापस आ रहे थे। रघुनाथ उस समय १२ वर्ष का था और लक्ष्मी उससे एक वर्ष बड़ी थी। रास्ते में लुटेरों के एक दल ने इन अनाथ बालक-बालिका के संरक्षकों को मार डाला और उन्हें फिर महाराष्ट्र देश की ओर ले चले। लड़का बचपन से ही तेजस्वी था। अवसर पाकर एक रात को वह दस्युओं के हाथ से निकल भागा। परन्तु कन्या से लुटेरों के जिस सरदार ने बलात्कार विवाह कर लिया, वह चन्द्रराव था।

तीक्ष्णबुद्धि चन्द्रराव के मनोरथ बहुत कुछ सफल होते गये। वह गजपति के घर से बहुत सा धन लूट लाया था। उससे एक बहुत बड़ी जागीर मोल ली और दक्षिण में एक प्रतिष्ठित मनुष्य हो गया। चन्द्रराव भी एक प्राचीन राजपूत वंश में उत्पन्न हुआ था। इसमें किसीको सन्देह नहीं था। फिर प्रसिद्ध गजपतिसिंह की एक मात्र कन्या से विवाह करके तो वह और भी बड़ा बन गया। चन्द्रराव के साहस और विक्रम को देख कर शिवाजी ने उसे जुमलेदार का पद प्रदान किया। लोग ऐसे बड़े भारी मनुष्य का समादर किया ही करते हैं। अब दिन दिन चन्द्रराव की यशोवृद्धि होने लगी। रघुनाथ ने बीच बीच में कईबार उसको उज्ज्वल कीर्ति पर धब्बा लगाया था। इसी कारण जुमलेदार ने इस कण्टक को साफ़ कर डाला।
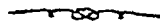
अट्ठारहवाँ परिच्छेद

लक्ष्मीबाई

बारहवें वर्ष की अवस्था में रघुनाथ दस्यूवेशी चन्द्रराव के आक्रमण से बचकर, राजपूताने में न जा सीधा महाराष्ट्र देश की ओर चला गया। रास्ते में, वह, कभी पर्वत-कन्दराओं में से होकर, कभी वन में प्रवेश करके और कभी गाँव में से निकल जाता। जिस घर के सामने वह खड़ा हो जाता कोई भी एक मुट्ठी अनाज देने से इन्कार नहीं करता।

चार पाँच वर्ष तक रघुनाथ कई एक स्थानों में भटकता रहा। संसाररूपी अनन्त-सागर में अनाथबालक अकेला वह निकला। उसने नाना देशों का पर्य्यटन किया, नाना व्यक्तियों के निकट शिक्षा वा दासत्ववृत्ति अवलम्बन करके जीवननिर्वाह किया। यद्यपि पूर्व-गौरव की कथा, पिता के वीरत्व और उनके सम्मान की कथा, बालक के मन में सर्वदा जागृत होती, परन्तु अभिमानी बालक उस बात को और अपने कष्टों को किसी पर प्रकट नहीं करता। कभी कभी दुःखभार से विह्वल हो एकान्त देश अथवा पर्वतश्रेणी पर बैठ वह जी भर कर रोया करता, फिर आँखें पोछ अपने काम पर चला जाता।

ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती गई त्यों त्यों उसके मन में वंशोचित भाव भी बढ़ने लगे। अल्पवयस रघुनाथ कभी कभी गुप्त

भाव से अपने प्रभु का टोप सिर पर धर लेता, कभी उनका खड्ग अपनी कमर में लटका लेता, शाम के वक्त मैदान में बैठकर स्वदेशीय चारणों का गान उच्च स्वर से गाता। जब कोई पथिक सुनसान रजनी में संग्रामसिंह और राणा प्रताप का गीत सुनता तब वह चकित हो जाता। इसी प्रकार कालक्षेप करके जब रघुनाथ १८ वर्ष का हो गया तब उसने शिवाजी के वीर्य्य और उनकी कीर्ति तथा उनके उद्देश को विचारा। राजस्थान की भाँति महाराष्ट्र देश भी स्वतन्त्र हो जायगा, शिवाजी दक्षिण देश में हिन्दूराज्य विस्तारित करेंगे—इन्हीं विचारों को सोचते सोचते बालक का हृदय शिवाजी का प्रेमी बन गया।

शिवाजी मनुष्यों के भावों को जानने में अद्वितीय थे। कुछ दिन बाद रघुनाथ को भी पहचान लिया और एक हवलदारी के पद पर उसे नियुक्त कर दिया और उसके कई महीनों के बाद उसे तोरणदुर्ग भेजा था।

रघुनाथ के साथ हमारा परिचय पहले भी हो चुका है। जब रघुनाथ शिवाजी के यहाँ आया था उस समय चन्द्रराव जुमलेदार के अधीनस्थ एक हवलदार की मौत हो गई थी। इस प्रकार उस ख़ाली जगह पर रघुनाथ नियुक्त हो गया। रघुनाथ ने चन्द्रराव को अपने पिता का पुरातन भृत्य और अपना बालसखा कहकर सम्बोधित किया, परन्तु उसे इस बात की ख़बर नहीं थी कि यही दस्यु और लक्ष्मी का पति है। इसीलिए वह सानन्द उससे वार्तालाप करता। यद्यपि चन्द्रराव ने रघुनाथ की अभ्यर्थना की, परन्तु अल्पभाषी जुमलेदार के ललाट पर आज भी विचार के चिह्न देखे गये।

शिवाजी से कई एक दिन की छुट्टी लेकर चन्द्रराव अपने घर चला गया। पाठकगण, चलिए अब आपको एक भद्रलोक के घर की सैर करावें।

जुमलेदार अपने घर पहुँच गया। दरवाज़े पर नौबत बजने लगी। असंख्य दास-दासियाँ हाज़िर हो गईं। लोग मिलने को आने लगे। इस प्रकार चन्द्रराव के आने की ख़बर बहुत दूर दूर तक फैल गई। जुमलेदार के घर में बड़ी भीड़ लगी हुई है। उस भीड़ के बीच में शान्तनयना, क्षीणाङ्गिनी लक्ष्मी बाई अपने स्वामी की अभ्यर्थना करने को उत्सुक हैं।

लक्ष्मी बाई यथार्थ में लक्ष्मीस्वरूपा, शान्त, धीर, बुद्धिमती और पतिव्रता स्त्री है। बाल्यकाल में पिता की आदरमयी कन्या थी, परन्तु कोमल-वयसही में विदेशीय अपरिचित व्यक्ति के बीच, अल्पभाषी, कठोर स्वभाव वाले स्वामी की उसे अर्द्धाङ्गिनी बनना पड़ा। वृक्ष से गिरे हुए कोमल फूल की भाँति लक्ष्मी दिन दिन सूखने लगी। कई वर्ष से लड़की शोकाच्छन्न है, परन्तु वह अपना दुःख किससे कहे? कौन उसे धैर्य्य बँधावे? लक्ष्मी पहली बातें याद करती, पिता, माता और भाई को याद करके रोया भी करती।

शोक के पड़ने अथवा कष्ट सहन करने से हमारी बुद्धि तीक्ष्ण हो जाती है, हमारा मन शान्त और सहनशील हो जाता है। बालिका दो एक वर्ष के ही भीतर संसार के कार्य्य को सम्पादन करने लग गई और स्वामी की सेवा में रत हो गई। हिन्दू-रमणी की पति के भिन्न और कोई गति नहीं है? स्वामी यदि सहृदय और दयावान् हुआ तो नारी सानन्द

उसकी सेवा करती है, परन्तु यदि स्वामी निर्दयी और कठोर हुआ तो भी स्त्री को स्वामी के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। चन्द्रराव के हृदय में प्रेम का बीज ही नहीं पड़ा था, हाँ अभिलाषा और अपूर्व विक्रम से उसका हृदय परिपूर्ण था, तथापि वह असहाय नारी के प्रति निर्दयी न था। नम्रमुखी, नम्रहृदया लक्ष्मीबाई के प्रेम से चन्द्रराव सन्तुष्ट रहता और लड़ाई से अवकाश मिलने पर वह लक्ष्मीबाई ही से मिलकर शान्ति लाभ करता और लक्ष्मीबाई भी उसकी लड़ाई के समाचारों को सुनकर बड़ी प्रसन्न होती।

इसी प्रकार संसारी कार्य्य और पतिसेवा करते करते वर्ष पर वर्ष व्यतीत होने लगा। लक्ष्मी यौवनावस्था को प्राप्त हुई, परन्तु इसकी यौवनावस्था शान्त और निरुद्वेग थी। वह पुरानी बातों को प्रायः भूल सी गई, अथवा सायंकाल के समय जब कभी राजस्थान को कथा याद पड़ जाती; बाल्यकाल का सुख, बाल्यावस्था की क्रीड़ायें और प्राण स्वरूप भ्राता रघुनाथ के प्रेम से रमणी विह्वल हो जाती, और आँखों से आँसू बह निकलते, परन्तु वह चुपचाप अपने आँसुओं को पोंछ फिर गृहकार्य्य में लग जाती।

आज जब चन्द्रराव भोजन करने बैठा, लक्ष्मीबाई भी एक ओर बैठकर पङ्खा करने लगी। लक्ष्मीबाई इस समय १७ वर्ष की युवती है। शरीर कोमल, उज्ज्वल, लावण्यमय किन्तु कुछेक क्षीण है। युगल भ्रू कैसे सुन्दर और मनोहर हैं, मानो उस स्वच्छ ललाट में कमल नाल से बनाये गये हैं। शान्त, कोमल, काले नेत्रों में मानो चिन्ता ने अपना घर बना लिया है। गंडस्थल सुन्दर सुचिक्कण तो हैं परन्तु कुछ पीले पड़ गये हैं; सारा

शरीर शान्त और क्षीण है। जवानी की अपूर्व सुन्दरता विकसित तो हुई है, किन्तु वह यौवन की प्रफुल्लता, और उन्मत्तता कहाँ? अहा! राजस्थान का यह अपूर्व पुष्प महाराष्ट्र देश में सौन्दर्य्य और सुगन्ध वितरण कर रहा है, किन्तु जीवनाभाव के कारण शुष्क सा हो रहा है। लक्ष्मीबाई के सुन्दर नेत्र, सुदीर्घ केशभार, कोमल बाहुयुगल, देहरूपी लता पर मुक्ता पिरो रहे हैं। परन्तु हा! यह किसके हैं?

एक दिन चन्द्रराव ने भी लक्ष्मी को बता दिया था कि "तुम्हारा भाई रघुनाथ हमारे अधीन एक हवलदार के पद पर नियुक्त है और वह बड़ा यशोलाभ कर रहा है।" परन्तु इतनी बात सुनाने के बाद ही चन्द्रराव के मस्तक पर शोक के चिह्न प्रगट हो गये थे। लक्ष्मी को चन्द्रराव की यह दशा देखकर उसी समय सन्देह हो गया था।

एक दिन लक्ष्मी स्वामी की दो एक मीठी मीठी बातों से पुलकित हो उसके चरणों के समीप आ बैठी और विनीत भाव से कहने लगी—"दासी का एक निवेदन है, परन्तु कहते हुए डर लगता है।"

चन्द्रराव लेटे लेटे पान चबा रहे थे। बड़े स्नेह से बोले, "कहो, क्या है?"

लक्ष्मी ने कहा—"मेरा भाई अज्ञान बालक है।"

चन्द्रराव का मुख गम्भीर हो गया।

लक्ष्मी—"वह आपका भृत्य है और आपही के अधीन है।"

चन्द्रराव—"नहीं तो—वह तो हमसे भी अधिक शूरवीर के नाम से प्रसिद्ध है।"

बुद्धिमती लक्ष्मी ने समझ लिया कि जिस बात की चिन्ता थी वह सत्य निकली। स्वामी रघुनाथ भइया के ऊपर बड़े क्रुद्ध हैं। थोड़ी देर के लिए लक्ष्मी सहम गई। फिर सँभल कर बोली—

"स्वामिन्! यदि बालक कुछ बुरा भी कर जाय तो आप उसे क्षमा न करेंगे तो और कौन क्षमा करने वाला है?

चन्द्रराव का चेहरा और भी बिगड़ गया। लक्ष्मी ने समझ लिया, अब और कुछ कहना ठीक नहीं।

पाठकगण! ऊपर की घटना होने के दिन से आज ही फिर चन्द्रराव घर को लौटे हैं। रघुनाथ के ऊपर जो कुछ बीती है लक्ष्मी उसे कुछ भी नहीं जानती, परन्तु आज उसका हृदय चिन्ताकुल है; मुँह खोलकर कुछ बात नहीं कर सकती, परन्तु फिर भी उसने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि जब रात के समय स्वामी सोने आवेंगे, तब भैया का हाल अवश्य पूछूँगी।

चन्द्रराव भोजन करने के पश्चात् सीधे शयनागार में चले आये। लक्ष्मी हाथ में पान का बीड़ा लिये खड़ी थी। परन्तु उसने देखा कि स्वामी का ललाट चिन्तायुक्त है, तुरन्त पान थमा कर आप कमरे से बाहर निकल गई। चन्द्रराव ने भी बड़ी सतर्कता से द्वार बन्द कर लिया।

चन्द्रराव ने एक गुप्त स्थान से धीरे धीरे एक पुस्तक निकाल कर बाहर की। पुस्तक मानो वही खाता है। प्रायः दस वर्ष

हुआ कि जब गजपतिसिंह की सभा में चन्द्रराव अपमानित हुआ था तभी उसने अपनी पुस्तक में कुछ हिसाब लिखा था, हमारे पाठकगण उसे भूले न होंगे। पुस्तक में एक ऋण का ब्योरा दिया हुआ है। उसी को खोल कर चन्द्रराव विचार रहा है।

"महाजन.........................गजपति

ऋण.........................अपमानता

परिशोध......उसके शोणित से, उसके वंशके अपमान से।"

उसने एकबार दोबार इन्हीं अक्षरों का अवलोकन किया। उसके विकट मुखमण्डल पर एक विकट हास्य का चिह्न सा बन गया और तुरन्त ही उसने उसी पुस्तक के इन शब्दों के सामने लिख दिया—"आज ऋण-परिशोध किया गया"। फिर पुस्तक को उलट कर उसने बन्द कर दिया।

चन्द्रराव ने जाकर द्वार खोला और लक्ष्मी को पुकारा। लक्ष्मी भक्तिभाव के साथ स्वामी के सम्मुख आकर खड़ी हो गई। उसने लक्ष्मी का हाथ पकड़ लिया और ज़रा हँसकर कहा—"बहुत दिनों का एक ऋण-परिशोध (क़र्ज़ा बेबाक़) हुआ है।"

लक्ष्मी थर्रा गई।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

ईशानी का मन्दिर

प्रसिद्ध पराक्रमी जागीरदार और जुमलेदार चन्द्रराव के घर से कुछ ही दूर ईशानी देवी का एक मन्दिर था। पर्वत के एक बड़े ऊँचे शिखर पर देवी की प्रतिष्ठा हुई थी। देवीजी का मन्दिर बहुत पुराने समय का बना हुआ है। देवी के दर्शनों को जाने के लिए बहुत सी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। नीचे से कल कल शब्द करती हुई एक नदी बह रही है। नदी की जल तरंगें बड़े वेग से सीढ़ियों के पैर धोया करती हैं। बहुत काल से यात्री लोग यहाँ आकर नदी में स्नान करते हैं, फिर सीढ़ियों पर चढ़कर ईशानी के दर्शन को जाते हैं। अभी तक यह दृश्य ज्यों का त्यों बना हुआ है। मन्दिर के पिछवाड़े तथा पर्वत के पूर्व बड़े बड़े पेड़ों का एक घना जङ्गल लगा हुआ है। पर्वत की चोटी से लेकर सारी तराई उसी जङ्गल से घिरी हुई है। जङ्गल ऐसा घना और अँधकारयुक्त है कि उसमें जाने से रात का भय हो जाता है। परन्तु इसी अँधेरे वृक्षों के साये में पुजारी लोग कुटी बना कर वास करते हैं। इस पुण्यमय सुस्निग्ध स्थान को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो शान्तिरस ने सारे जगत् से अपना पयान उठा लिया है और अब यहीं टिक कर तपश्चर्य्या करेगा। इस शान्तमयी उद्यान में भारतवर्ष की प्रसिद्ध पुराणों की कथा अथवा वेद

मन्त्रों के अतिरिक्त अन्य कोई शब्द नहीं सुना जाता। यद्यपि असंख्य युद्ध और हत्या-काण्डों के कारण सारा महाराष्ट्र देश कम्पित हो रहा था, परन्तु क्या हिन्दू क्या मुसलमान किसी ने भी इस छोटे से शान्त स्थान को लड़ाई के कोलाहल से कलुषित नहीं किया था।

एक प्रहर रात व्यतीत हो गई है, परन्तु कोई यात्री अकेला इस वन में भ्रमण कर रहा है। पथिक का हृदय उद्वेग से परिपूर्ण हो रहा है, प्रशस्त ललाट कुञ्चित हो गया है, मुख-मण्डल आरक्त हो आया है और आँखों से एक विशेष प्रकार की उन्मत्तता की अस्वाभाविक ज्योति निकल रही है। रोष, और क्रोध के मारे रघुनाथ का हृदय आज जला जा रहा है।

कुछ देर रघुनाथ यों ही टहलते रहे, तथापि हृदय का उद्वेग दूर न हुआ। रघुनाथ इस समय उन्मत्त से हो गये हैं। यदि उनकी भीषण चिन्ता जल्द जाती न रहेगी तो उसकी विवेचना शक्ति विचलित अथवा लुप्त हो जायगी। परन्तु प्रकृति भीषण चिकित्सक है! पर्वत के समान जो दुःख हृदय में चुभा करते हैं, अग्नि के समान जो चिन्ता शरीर रूपी वन को जलाया करती है, इन मानसिक रोगों की पार्थिव औषध नहीं है, कोई चिकित्सक भी नहीं है। परन्तु प्रकृति धीरे धीरे चिन्ता को कम कर देती है। देखो न, संसार में कितने अभागे ऐसे हैं जो पागल होकर ही अपने को सुखी समझ रहे हैं। सहस्रों ऐसे हैं जो आरोग्य लाभ की प्रार्थना करते हैं परन्तु पाते नहीं।

जहाँ रघुनाथ टहल रहा था उसके थोड़ी ही दूर पर ब्राह्मण लोग पुराण की कथा कह रहे थे। अहा! वह सङ्गीत-

पूर्ण पुण्य-कथा शान्तिमयी रात्रि में, शान्त कानन में, अमृत-वर्षा कर रही है, और नक्षत्रविभूषित नैश गगनमण्डल में धीरे धीरे उड़ रही है। सारा वन उसी पुण्य-कथा से प्रतिध्वनित हो रहा है और हमारा अचेत पथिक रघुनाथ भी इस मधुर औषध को ग्रहण करके चैतन्य-लाभ कर रहा है।

उस शान्त कानन की पवित्र कथा और सङ्गीत रघुनाथ के प्रति लगी हुई आग के लिए वारिवर्षण का कार्य्य करने लगे। उद्विग्न हृदय को शान्ति-लाभ हुआ। धीरे धीरे उन्मत्तता कम होने लगी और उस महत् कथा के निकट अपना दुःख और शोक अकिञ्चित् कर बोध होने लगा। रघुनाथ ने समझ लिया कि मेरे महत् उद्देश और वीरत्व इस कथा के निकट तो पसङ्गे के बराबर भी नहीं है। धीरे धीरे चिन्ता-हारिणी निद्रा ने रघुनाथ को अपने अङ्क में ले लिया। वह चुपचाप उसी वृक्ष के नीचे सो गया।

रघुनाथ स्वप्न देखने लगे। आज किस स्वप्न को देखते हैं? कौन सा गौरव फिर आँखों के सामने आ गया है? मानो रघुनाथ फिर दिन दिन पदोन्नति और यशोलाभ कर रहे हैं। हाय! रघुनाथ के जीवन में ऐसी दशा आकर चली गई। गौरवरूपी सूर्य्य की प्रतिभा विलुप्त हो गई।

रघुनाथ युद्धविषयक क्या स्वप्न देख रहे हैं कि मानो उन्होंने शत्रुओं का विनाश किया है, दुर्ग विजय कर लिया है, युद्ध-कार्य्य का सम्पादन कर रहे हैं। अभी यह कार्य्य समाप्त हुआ नहीं था कि रघुनाथ की निद्रा भङ्ग हो गई।

युवा अवस्था के एक एक कार्य्य विलुप्त हो गये, आशा प्रदीप का निर्वाण हो गया, इस अन्धकार रजनी में श्रान्त बन्धु-

हीन युवक के हृदय में बचपन की सारी कथायें पूर्वजीवन-स्मृति की भाँति जागृत हो गईं। शोक के कारण हृदय दग्ध होने लगा। आशा और सुख ने रघुनाथ के हृदय से पयान कर दिया। बन्धुविहीन जनों के हृदय में जैसे भाव उत्पन्न होते हैं, रघुनाथ भी आज उन्हीं भावों का अनुभव कर रहा है। स्नेहमयी माता के लालन-पालन का सुख, पिता के दीर्घ अवयव और प्रशस्त ललाट, लड़कपन में सूर्य्य महल की क्रीड़ायें और बाल्यकाल की सहचरी, शान्त, धीर, प्राणों से प्यारी बहन लक्ष्मी, ये सब, एक एक करके रघुनाथ को विह्वल कर रहे हैं। अहा! और सब तो अब इस संसार में नहीं हैं, परन्तु रघुनाथ के हृदय में यह आशा उसे अधीर कर रही है कि "क्या स्नेहमयी भगिनी को जीवित देख सकूँगा? आज इस सूने संसार में मेरा और कौन है?" इन्हीं विचारों के कारण रघुनाथ की निद्रित आँखों में जल भर आया, वीर अधीर हो गया। निद्रित रघुनाथ स्नेहमयी भगिनी के विचार में निमग्न होकर सो गया था। फिर आँख खुलने पर क्या देखता है? मानो लक्ष्मी स्वयम् भ्राता के सिरहाने बैठी है और अपने कोमल शीतल हाथों से रघुनाथ के सिर को दबाकर उसके हृदय के उद्वेग को दूर कर रही है। सहोदरा स्नेहपूर्ण नयनों से अपने सहोदर के मुखको देख रही है। आहा! ऐसा प्रतीत होता है कि शोक और चिन्ता के कारण लक्ष्मी का प्रफुल्ल मुख शुष्क हो गया है और दोनों आँखें स्थिर हैं।

रघुनाथ ने फिर आँखें बन्द कर लीं और फिर रोपड़ा—"भगवन् जगत्पिता! बहुत कुछ सह लिया है। अब क्यों हृदय में वृथा आशा देकर उसे और व्यथित करते हो?"

मानो किसी ने अपने कोमल हाथों से रघुनाथ के आँसू पोंछ दिये। ऐसा प्रतीत होते ही रघुनाथ ने फिर आँखें खोल दीं। अब जाकर उसने समझा कि यह स्वप्न नहीं है। उसकी सहोदरा ही उसके मस्तक को अपने अंक में धारण करके उस वृक्ष के पास बैठी हुई है।

रघुनाथ का हृदय भर आया। वह लक्ष्मी के दोनों हाथों को अपने तप्त हृदय पर स्थापन करके उसके स्नेहपूर्ण मुख की ओर देखने लगा, परन्तु उसकी वाक्शक्ति स्फुरित नहीं हो सकी, परन्तु नेत्रों से वारिधारा वह निकली। वह अधिक नहीं सह सका। योद्धा ज़ोर ज़ोर से धाड़ें मार मार कर रोने लगा और रोते रोते कहा—"लक्ष्मी! लक्ष्मी!! तुम्हें इस जीवन में देख तो लिया। और सारे सुख चले गये तो बला से, दूसरी आशायें लुप्त हो गईं तो कुछ चिन्ता नहीं, परन्तु लक्ष्मी! तुम्हारा अभागा भाई इस जीवन में सिवा तुम्हारे दर्शनों के और कुछ नहीं चाहता था।"

अब लक्ष्मी शोक को और नहीं सँभाल सकी। भाई के हृदय में मुँह छिपाकर वह एकबारगी रोने लगी। आहा! इस करुणा सुख के समान संसार में दूसरा कौन रत्न है जो इसकी तुलना कर सके? स्वर्ग में यह आनन्द कहाँ है कि जिसके निकट कोई अभागा इसे तुच्छ समझे?

बहुत दिनों के पश्चात् मिल कर वे परस्पर बोल भी नहीं सके। बहुत देर तक दोनों चुप रहे। बहुत दिनों की कथायें धीरे धीरे हृदय में जागृत होने लगीं। सुख के सागर में दुःख का समुद्र मिल गया। मिश्रित सुख-दुःख-सागर हृदय में तरंगे

मारने लगा। रह रह कर तरंगों के वेग से उभय हृदय विगलित होने लगा। संसार में भगिनी से वढ़ कर स्नेहमयी और कौन है? भ्रातृस्नेह के समान पवित्र स्नेह संसार में और कौन सा है? हम इस पवित्र भाव के वर्णन करने में असमर्थ हैं।

वहुत देर के वाद दोनों का हृदय शीतल हुआ। लक्ष्मी ने अपने अञ्चल से भाई के आँसू को पोंछ कर कहा—"ईशानी की कृपा है कि आज इतने दिनों के पाश्चात्, वड़े अनुसन्धान के वाद, तुम मिले। अहा! इससे वढ़कर हमें और कौन सुख है? ईश्वर को धन्यवाद है कि उसने इस अभागिनी के कपाल में ऐसा सुख लिख तो दिया था। भाई! इस ठंडी ठंडी हवा में तुम्हारा और ठहरना वुरा है। चलो मन्दिर के भीतर चलें। मैं और अधिक यहाँ नहीं ठहर सकती।"

भाई-वहन दोनों मन्दिर में चले आये। लक्ष्मी एक स्तम्भ का सहारा लेकर वैठ गई। रघुनाथ पूर्ववत् लक्ष्मी के अङ्क में मस्तक स्थापन करके पड़ गया, उस अँधेरी रात में दोनों मृदुस्वर से पहली कथायें कहने लगे।

धीरे धीरे लक्ष्मी रघुनाथ के मस्तक पर हाथ फेरती थी और उससे कुछ पूँछती जाती थी। रघुनाथ उसका उचित उत्तर देते थे कि डाकू के हाथ से वचकर अनाथ वालक किस किस देश में भागता फिरा और वहाँ किन किन विपत्तियों का सामान करना पड़ा। "कभी महाराष्ट्रीय कृषिकों के साथ रह कर गाय चराने का कार्य्य करना पड़ा। कभी भैंसों की रख-वाली करनी पड़ी और उनके पीछे पीछे जङ्गल, पर्वत और मैदानों को छानना पड़ा। कभी चरवाहों के साथ ऊँचे स्वर से

विरहा गाने का अवसर मिलता, कभी उन्हीं से विरहे के राग प्रताप इत्यादि की वीरता सुनने में आती। कभी जङ्गल में जाकर अपनी पुरानी अवस्था का ध्यान करके ज़ोर ज़ोर से रोना पड़ता। कई वर्षों तक कङ्कण प्रदेश में रहना पड़ा। तत्पश्चात् एक महाराष्ट्रीय योद्धा के साथ रह कर युद्ध का कार्य्य सीखना पड़ा और कभी कभी उन्हीं के साथ रणक्षेत्रों में जाने का भी अवसर मिलता रहा"। ज्यों ज्यों रघुनाथ की अवस्था बढ़ती गई वह युद्ध विद्या में कुशल होता गया और अन्त में महानुभाव शिवाजी की सेवा में उपस्थित होकर उनकी सेना में सैनिक का पद ग्रहण किया। तीन वर्षों तक जिस प्रकार उसने अपना कार्य्य सम्पादन किया उसे जगदीश्वर ही जानता है। यथासम्भव मनसा वाचा कर्मणा कोई त्रुटि नहीं हुई परन्तु शिवाजी को किसी प्रकार से सन्देह हो गया। इसी कारण उन्होंने उसे अपमानित किया।

फिर रघुनाथ ने कहा, अब देश देश निरुद्देश्य फिर रहा हूँ और यही संकल्प है कि पिता की भाँति मैं भी समर में प्राण-त्याग करूँ।

भाई की दुःख-कहानी सुनते सुनते स्नेहमयी भगिनी का जी उमड़ आया और आँखों से आँसुओं की वर्षा होने लगी। उसने अपने कष्ट को तुच्छ समझा परन्तु वह भाई के कष्ट से व्याकुल हो गई। जब यह शोक-कथा समाप्त हुई तब लक्ष्मी ने मन में सोचा कि अब अपना परिचय किस प्रकार दिया जाय? चन्द्रमा का नाम उसने मुँह से नहीं निकाला। उसने धीरे धीरे कहा—"इस देश में आने से कुछ दिन पीछे एक प्रतिष्ठित क्षत्रिय जागीरदार से मेरा विवाह हो गया। चूँकि

स्त्रियाँ स्वामी का नाम नहीं ले सकतीं इसलिए आकाश में उदय होने वाले निशानाथ के नाम पर ही मेरे स्वामी का नाम समझना चाहिए। सुधांशुक के समान ही उनकी वीरता, क्षमता और गौरव ज्योतिः चारों ओर प्रकाशमान हो रही है। लक्ष्मी उन्हीं के घरमें सुखी है। उनके अनुग्रह से मैं सदा सुखी रहती हूँ। अब इस जीवन में और कोई वासना नहीं है—किन्तु यही चाहता हूँ कि अपने भाई को सुख से देखूँ। लक्ष्मी रघुनाथ के संवाद को बीच बीच में मान लिया करती थी। इसलिए उसे एकबार और देख लेने की प्रबल इच्छा थी। आज वही कामना मन्दिर में पूजा करते समय पूर्ण हुई।

इस प्रकार लक्ष्मी अपना परिचय देकर भाई के पहाड़ रूपी दुःख को निर्मूल किया चाहती थी। लक्ष्मी दुःखिनी है। दुःख की कथा भले प्रकार उसे मालूम है। लक्ष्मी स्त्री है, वह दुःखमोचन करना जानती है। स्त्रियों को संसार का दुःख दूर करना परमधर्म है।

अनेक प्रकार से समझाये जाने पर लक्ष्मी अपने भाई के तप्त हृदय के शान्त करने का प्रयत्न करने लगी, और कहने लगी—"मनुष्यजीवन सदा समान नहीं रहता। भगवान् ने जिस दुःख को हमारे लिए लिख रक्खा है उसका भोग करना हमारे लिए बाध्य है। यदि एक दिन हमको दुःख पड़ जाय तो क्या उससे मुख मोड़ना हमारा कर्त्तव्य है? मानवजन्म ही दुःखमय है। यदि हम दुःख को सह न सकेंगे तो दूसरा और कौन सहेगा? भले बुरे दिन सबके लिए हैं। बुरे दिनों में भी विधाता का नाम लेकर उसे भूल जाना चाहिए। उसी ने पिता के घर में हमें सुख दिया था। आज उसी ने कष्ट दिया है। वही फिर कष्ट-

मोचन करेगा। भाई! निराशता को छोड़ो। इस प्रकार शोक करने से कब तक शरीर को सँभाल सकोगे? आहार निद्रा के त्याग करने से मनुष्य-जीवन कब तक ठहर सकता है?

रघुनाथ—"शरीर के रखने की आवश्यकता ही क्या है? जिस दिन सैनिक के नाम पर विद्रोही का कलङ्क लगा था उसी दिन इसे मिट जाना चाहिए था। नहीं मालूम अब तक वह क्यों स्थायी है?"

लक्ष्मी—"क्या तुम अपनी बहन लक्ष्मी को सदा के लिए दुःखिनी किया चाहते हो? देखो भाई, संसार में हमारा और कौन है? पिता नहीं हैं, माता नहीं हैं, मानो संसार में कोई नहीं है। क्या दुःखिनी लक्ष्मी के लिए अपनी सारी ममता एकबार ही भूल गये? हे भगवन! तुम एकबार ही विमुख हो गये?"

रघुनाथ—"लक्ष्मी! तुम मुझपर प्रेम करती हो। यह मुझे ख़ूब मालूम है। तुम्हें जिस दिन मैं कष्ट दूँगा, उसी दिन भगवान मुझसे विमुख हो जायँगे। किन्तु बहन! अब इस जीवन में मुझे सुख नहीं। तुम स्त्री जाति हो। तुम्हें सैनिकों के दुःख का ज्ञान नहीं। हमारे निकट जीवन की अपेक्षा सुनाम प्रिय है। मृत्यु की अपेक्षा कलङ्क और अपयश सहस्रगुण कष्टकारक है! इसलिए रघुनाथ कलङ्क का टीका लगाना नहीं चाहता।"

लक्ष्मी—"फिर उस कलङ्क के दूर करनेसे विमुख क्यों हो? महानुभाव शिवाजी के निकट जाओ। जब उनका क्रोध दूर हो जायगा तब वे अवश्य तुम्हारी बात सुनेंगे और फिर तुम्हें निर्दोषी कहेंगे।"

रघुनाथ ने कुछ उत्तर नहीं दिया किन्तु उसका मुखमण्डल रक्तवर्ण हो गया। आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। बुद्धिमती लक्ष्मी ने समझ लिया कि पिता का अभिमान और पिता का आदर्श पुत्र में वर्तमान है। इसे प्राणों का प्रेम नहीं है। महाबुद्धिमती लक्ष्मी ने भाई के भीतरी भाव को समझ कर कहा, "क्षमा करना, मैं स्त्री हूँ। मुझे इन बातों का ज्ञान कहाँ? यदि तुम शिवाजी के पास जाने में असम्मत हो तो कार्य्य द्वारा अपने यश की रक्षा करो न? बाप कहा करते थे—'सैनिकों का साहस और उनकी स्वामिभक्ति उनके कार्य्य से प्रकाशित होती है'। यदि तुम्हारे ऊपर विद्रोहाचरण की शङ्का किसी को है तो हाथ में तलवार रखकर उसका खण्डन कर डालो।"

रघुनाथ का हृदय उत्साह से परिपूर्ण हो गया। फिर उसने कहा, "बहन, बताओ तो किस प्रकार से सन्देह का खण्डन किया जा सकता है?"

लक्ष्मी—"मैंने सुना है कि शिवाजी दिल्ली जाना चाहते हैं। वहाँ सैकड़ों घटनायें उपस्थित होने की सम्भावना है। इसलिए दृढ़ प्रतिज्ञ सैनिक को आत्मपरिचय के सहस्रों अवसर प्राप्त हो सकते हैं। मैं तो स्त्री हूँ और क्या जान सकती हूँ? तुम पिता की भाँति साहसी हो। फिर उन्हीं की भाँति वीर प्रतिज्ञा करने से तुम्हारा कौन का उद्देश सफल नहीं हो सकता?"

रघुनाथ यदि सावधान होता तो उसे पता चलता कि, उसकी बहन भी मानव-हृदय-शास्त्र से अनभिज्ञ नहीं है। जो दवाई आज रघुनाथ को कारगर हुई है उसका फल तत्काल ही प्रकट हो गया। अर्थात् रघुनाथ का शोक सन्ताप मुहूर्त मात्र ही

में दूर हो गया और वीर का हृदय पहले की भाँति उत्साहित और पुलकित हो गया।

रघुनाथ बहुत देर तक विचार करते रहे। उनका मुख-मण्डल और उनके नयन सहसा नव-गौरव से परिपूर्ण हो गये। फिर थोड़ी देर के बाद उन्होंने कहा—"लक्ष्मी! यद्यपि तुम स्त्री जाति हो, किन्तु तुम्हारे शब्दों को सुनते सुनते हमारे मनमें नये भाव का प्रवेश हो गया। हमारा हृदय उत्साहशून्य नहीं है और न रघुनाथ विद्रोही है और न भीरु। इस बातको अब तक लोग जानते हैं। किन्तु तुम बालिका हो। तुमसे सारी बात कहे कौन? तुम हमारे हृदय के भाव को किस प्रकार समझ सकती हो?"

लक्ष्मी पहले हँस पड़ी और फिर सोचने लगी—मैंने रोग का निदान ख़ूब जाना। दवा भी मैं ही बताऊँ! फिर प्रकट रूप में कहा, "भाई तुम्हारे उत्साह को देखकर मेरे प्राण सुखी हुए। तुम्हारे महत् उद्देश को मैं किस प्रकार समझ सकती हूँ? किन्तु यही हो, तुम्हारी छोटी बहन जब तक जीवित है। तुम पूर्णमनोरथ हो। जगदीश्वर से यही प्रार्थना करती हूँ।"

रघुनाथ—"अरे लक्ष्मी! जब तक मैं जीवित हूँ—तुम्हारा स्नेह कभी न भूलूँगा।"

थोड़ी देर के बाद लक्ष्मी ज़रा अनमनी सी होकर धीरे धीरे कहने लगी, "भाई! मैं एक बात और सुनानी चाहती हूँ। परन्तु तुमसे कहती हुई डरती हूँ?"

रघुनाथ—'लक्ष्मी! हमसे कहते हुए तुम्हें किस बात का भय है? मैं तुम्हारा सहोदर हूँ। सहोदर के निकट क्या डर?

लक्ष्मी—"चन्द्रराव नामक एक जुमलेदार है। तुम जानते हो न? उसी ने तुम्हारा अपकार किया है।

रघुनाथ की हँसी बन्द हो गई। मुँह लाल हो गया, परन्तु इस उद्वेग को रोक कर रघुनाथ ने कहा, "चन्द्रराव ने जो बात राजा के निकट कही थी वह ठीक नहीं है। किन्तु उन्होंने हमारा और कोई अनिष्ट किया हो तो उसकी हमें ख़बर नहीं।

लक्ष्मी—"उन्होंने जो कुछ किया हो, परन्तु भाई, अङ्गीकार करो कि उनका अनिष्ट नहीं करेंगे।

रघुनाथ निरुत्तर हो विचार करने लगा। लक्ष्मी ने फिर कहा—"भाई के निकट इस बात के अतिरिक्त मैंने पहले कोई भिक्षा नहीं माँगी। यदि भला मालूम हो तो इसका निर्वाह करो।"

लक्ष्मी के इस कथन से रघुनाथ जल गया। उसने भगिनी का दोनों हाथ पकड़ कर कहा—"लक्ष्मी! हमारे मन में सन्देह है कि चन्द्रराव ही ने हमारा सर्वनाश किया है—किन्तु तुम्हारे निकट हमें कुछ अदेय नहीं। हम ईशानी के मन्दिर में प्रतिज्ञा करते हैं कि चन्द्रराव का कुछ अनिष्ट नहीं किया जायगा। हम उनके दोष को क्षमा करते हैं। जगदीश्वर भी उन्हें क्षमा करें।"

लक्ष्मी ने भी भाई के साथ ही कहा—"जगदीश्वर उनको क्षमा करें।"

पूर्व की ओर प्रभात की अद्भुत छटा दीख पड़ने लगी। लक्ष्मी ने उस समय आँसुओं की वर्षा की और सस्नेह भ्राता से विदा ली। विदा होते समय उसने कहा—"हमारे साथ घर

से और लोग भी यहाँ आये थे। वे सब अभी तक सोते हैं। अब मैं जाती हूँ। परमेश्वर तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करें।"

"परमेश्वर तुम्हें सुखी रक्खें" इतन कह कर रघुनाथ ने भी लक्ष्मी से विदा ली और तुरन्त ही वह मन्दिर से बाहर चला गय।

पाठकगण! अब लक्ष्मी से विदा लेकर आओ हतभागिनी सरयू के यहाँ चलो।"

बीसवाँ परिच्छेद

सीतापति गोस्वामी

दुमरगडल दुर्ग पर चढ़ाई करते समय रघुनाथ को क्यों विलम्ब हो गया था, पाठकगण अवश्य ही उसे जानने को उत्सुक होंगे। उस दिन यह किसी को विश्वास नहीं था कि आज की लड़ाई से हम अवश्य बच निकलेंगे। इसी कारण रघुनाथ युद्धगमन करने के पूर्व ही अपनी स्नेहमयी सरयू को देखने चला गया था और सरयू ने रघुनाथ को आँसू भरी आँखों से विदा दी थी।

एक दिन, दो दिन करके बहुत दिन व्यतीत हो गये, परन्तु रघुनाथ का कोई संवाद नहीं मिला। हाँ, आशा कभी कभी सरयू के कान में यह कह जाती कि "रघुनाथ युद्ध में विजयी हुए हैं। विजयी रघुनाथ शीघ्र ही प्रफुल्लचित्त होकर आना चाहते हैं और बड़े प्रेम से पिता के निकट युद्ध की कथा सुनावेंगे।" परन्तु रघुनाथ आये नहीं, लड़ाई का वृत्तान्त सुनाया नहीं।

सहसा यह वज्रतुल्य संवाद आया कि रघुनाथ विद्रोही है। इसी विद्रोहाचरण के कारण वह अपमानित करके निकाल दिया गया। थोड़ी देर तक सरयू पहले पागलों की भाँति सहम गई। वह उसको भले प्रकार से समझ भी नहीं सकी।

धीरे धीरे उसका ललाट रक्तवर्ण हो गया। रक्तोच्छ्वास के कारण मुखमण्डल रञ्जित हो गया। शरीर कम्पायमान हो उठा। आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। दासी को बुलाकर कहा, "क्या कहा ? रघुनाथ विद्रोही ! रघुनाथ ने मुसलमानों का साथ दिया है ? किन्तु तू बड़ी पगली है। तुझसे किसने कहा है ? हट आँखों से दूर हो जा।"

धीरे धीरे लड़ाई पर से बहुतेरे सैनिक लौट आये—और सभों ने कहा—"रघुनाथ विद्रोही है !" सरयू की सखियों ने सरयू से ये बातें सब कह दीं। वृद्ध जनार्दन ने भी रोकर कहा—"कौन जाने उस सुन्दर उदारमूर्ति बालक के मनमें क्या क्रूरता है ?" सरयू ने सब कुछ सुना, परन्तु कुछ कहा नहीं। संसार के समस्त क्षुद्र लोगों ने रघुनाथ को विद्रोही बनाया, परन्तु सरयू के हृदय ने कहा—"सारा जगत् मिथ्यावादी है। भला रघुनाथ के चरित्र में ऐसा दोष स्पर्श कर सकता है ?"

इस प्रकार कई दिन व्यतीत हो गये। एक दिन सरयू तालाब की सैर करने गई। देखा, सरोवर के तीर, उसी अन्धकार में, जटा जूट-धारी एक दीर्घकाय गोस्वामी बैठे हैं। सरयू कुछ ठिठक सी गई और चुपचाप गोस्वामी की ओर देखने लगी। गोस्वामी के तेजस्वी शरीर को देखकर उसके हृदय में भक्ति-भाव संचरित हो गया।

गोस्वामी ने भी सरयू को देखा। थोड़ी देर के बाद ज़रा और ग़ौर से देख गम्भीर स्वर से कहा, "भद्रे ! क्या मेरे पास तुम्हारा कोई प्रयोजन है ? अथवा कोई विशेष अभीष्ट तो नहीं है ? रमणी ! तुम्हारे ललाट में दुःख के चिह्न क्यों दीख पड़ते हैं ? आँखों में जल क्यों आ गया है ? . . .

सरयू उत्तर न दे सकी। गोस्वामी ने फिर कहा, "मालूम होता है, हम तुम्हारे उद्देश को समझ गये हैं। शायद तुम किसी आत्मीय के विषय में कुछ पूछना चाहती हो।"

अब सरयू से न रहा गया और उसने कम्पितस्वर में उत्तर दिया, "भगवन्! आप में असाधारण शक्ति है। यदि अनुग्रह करके और कुछ कहिएगा तो मैं बाधित हूँगी। मेरे उस बन्धु की कुशलवार्त्ता बताइए। यही मेरी प्रार्थना है।"

गोस्वामी—"सकल संसार उसे विद्रोही कहता है।"

सरयू—"परन्तु आपसे तो यह विषय अज्ञात नहीं है।"

गोस्वामी—"महाराज शिवाजी ने उसे विद्रोही समझकर अपने यहाँ से निकाल दिया है।"

सरयू का मुखमण्डल रक्तवर्ण हो गया। लाल लाल आँखों से उसने कहा—"तपस्या पर तो मैं अविश्वास कर सकती हूँ, परन्तु रघुनाथ को विद्रोही नहीं समझ सकती। महाराज, मैं विदा चाहती हूँ। क्षमा करें।" स्वामीजी की आँखों में जल भर आया। उन्होंने धीरे से कहा, "हम और कुछ कहना चाहते हैं।"

सरयू—"कहिए।"

गोस्वामी—प्रत्येक मनुष्य के हृदय के भाव को जान लेना मनुष्य की शक्ति से बाहर है, परन्तु रघुनाथ के हृदय में क्या था उसके जानने का एक उपाय है। प्रणयिनी-हृदय प्रणयी-हृदय का दर्पणस्वरूप है। यदि रघुनाथ की यथार्थ प्रणयिनी कोई हो तो तुम उसके पास जाओ और उसके हृदय के भाव को देखो, उसके हृदय की चिन्ता मिथ्यावादिनी नहीं है। . . .

सरयू ने आकाश की ओर देखकर कहा, "जगदीश्वर, तुमको धन्यवाद देती हूँ कि तुमने इस समय मेरे हृदय को शान्तिदान दिया। मैं उसी उन्नतचरित्र योद्धा की प्रणयिनी होने की आशा करती हूँ। यदि जीती रहूँगी तो स्थिरभाव से उसकी उपासना करूँगी।"

क्षण भर बाद गोस्वामी ने फिर कहा, "भद्रे! तुम्हारी कथा सुनकर ऐसा मालूम होता है कि उस योद्धा की प्रकृत प्रणयिनी तुम्हीं हो। हम देशदेश में भ्रमण किया करते हैं। सम्भव है रघुनाथ से फिर साक्षात् हो सके। क्या उनसे तुम कुछ कहना चाहती हो? हमसे लज्जा मत करो। हम संसार से बहिर्भूत हैं।"

सरयू कुछ लजा गई, परन्तु धीरे धीरे कहने लगी, "क्या आपसे कभी उनका साक्षात्कार हुआ था?"

गोस्वामी—"कल रात के समय ईशानी के मन्दिर में वे मिले थे। उन्हीं ने तो हमें तुम्हारे पास भेजा है।"

सरयू—"उन्होंने अब क्या करने की प्रतिज्ञा की है? वे क्या कहते थे?"

गोस्वामी—"वे अपने बाहुबल के द्वारा अपना कार्य्य करेंगे। या तो अपयश को दूर करेंगे नहीं तो प्राणदान करदेंगे।"

सरयू—"धन्य वीरप्रतिज्ञा! यदि उनके साथ आपका फिर साक्षात् हो तो उनसे यह कहिएगा कि सरयू राजपूत-बाला है वह जीवन से यश की रक्षा को अधिक समझती है। सरयू उस दिन अपना जीवन सफल समझेगी जिस दिन रघुनाथ कलङ्कशून्य हो वीर भाव से पूजित होंगे। भगवन्! रघुनाथ का कार्य्य सफल करो।"

गोस्वामी—"भगवान् यही करें । किन्तु भद्रे ! सत्य की सदा जय नहीं होती । विशेषतः रघुनाथ जिस दुरूह उद्यम में प्रवृत्त हुआ है उसमें उसके प्राणों का भी संशय है ।"

सरयू—"राजपूत का यही धर्म्म है । आप उनसे कहिएगा कि यदि व्रतसाधन में उनके प्राण का वियोग हो जायगा तो सरयूबाला उनके यशोगीत को गाते गाते सहर्ष अपने प्राण त्याग देगी ।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे । फिर कुछ देर के बाद सरयू ने पूँछा, "रघुनाथ ने आपसे और भी कुछ कहा था ?"

गोस्वामी ने कुछ देर चुपचाप सोच कर कहा, "उन्होंने आपके लिए पूँछा था कि सारा संसार तो उसे विद्रोही कह कर घृणा करता है तुम अपने हृदय में उसे क्यों स्थापित किये हो ? जगत् उसके नाम को लेना नहीं चाहता । तुम क्यों उसके नाम का स्मरण करती हो ? घृणित, अपमानित, दूरीकृत रघुनाथ को सरयूबाला क्यों चाहती है ?"

सरयू ने कहा, "प्रभु ! आप उनको यह जनाइयेगा कि सरयू राजपूतबाला है । वह अविश्वासिनी नहीं है ।"

गोस्वामी—"जगदीश्वर ! फिर उसके हृदय में और कोई कष्ट नहीं है । संसार चाहे बुरा और मन्द भले ही कहे परन्तु अब भी उसका विश्वास एक व्यक्ति करता है ! अब विदा दीजिए । मैं इन सारी कथाओं को कह कर रघुनाथ के हृदय को शान्ति से सिंचन करूँगा ।

सजलनयन हो सरयू ने कहा, "उनसे और भी कहिएगा कि वह असि को हाथ में धारण करके अपने यश के पथ को परिष्कार करें । जगत्सृष्टा उनकी सहायता करेंगे ।"

दोनों जने की आँखों में आँसू भर आये। सरयू ने कहा, "प्रभु! आपने हमारे हृदय को शान्त किया है। इसलिए मैं आपके शुभ नाम की जिज्ञासा करती हूँ। आपका नाम क्या है?"

गोस्वामी ने कहा, "सीतापति गोस्वामी।"

रजनी जगत् में अन्धकार फैलाने लगी। उसी अन्धकार में गोस्वामी अकेले राजगढ़ दुर्ग की ओर जाने लगे।

एक्कीसवाँ परिच्छेद

रायगढ़-दुर्ग

पूर्वोक्त घटना के कई दिन बाद शिवाजी ने अपनी राजधानी रायगढ़ में आधी रात के समय एक सभा की थी। उस सभा में शिवाजी के समस्त प्रधान सेनापति, मन्त्री, कर्म्मचारी, पुरोहित और शास्त्रज्ञ ब्राह्मण सम्मिलित थे। पराक्रमी योद्धा, धीर मन्त्री, शीर्णतनु, शुक्लकेश बहुदर्शी न्यायशास्त्री इत्यादि से सभा सुशोभित हो रही थी। युद्ध व्यवसाय तथा विद्याबल में शिवाजी की यही लोग सहायता देते थे। शिवाजी की भाँति उन लोगों का हृदय भी स्वदेशप्रेम से परिपूर्ण था। परन्तु आज की सभा में सन्नाटा था। शिवाजी भी चुपचाप बैठे थे। महाराष्ट्रीय वीरगण मानो आज महाराष्ट्रीय-गौरव लक्ष्मी से विदा लेना चाहते हैं।

बहुत देर बाद शिवाजी ने मूरेश्वर पन्त को सम्बोधन करके कहा—"पेशवाजी! आप तो यह परामर्श देते थे कि सम्राट् की अधीनता स्वीकार करने से उनके अधीन एक जागीरदार की भाँति रहना पड़ेगा?"

मूरेश्वर—"मनुष्य जो कुछ भी कर सकता है, आपने वह सब किया, परन्तु 'विधि का लिखा को मेटन हारा'?"

शिवाजी—"स्वर्णदेव! जब आपने मेरे अनुरोध से रायगढ़ दुर्ग का निर्माण कराया था, तब यह राजा की राजधानी के

स्वरूप में बनवाया गया था, न कि जागीरदार के वासस्थान के लिए?"

आवाजी स्वर्णदेव ने क्षीणस्वर में उत्तर दिया—"क्षत्रियराज! भवानी के ही आदेशानुसार आज तक स्वाधीनता की आकांक्षा करते थे और अब भवानी की ही चेष्टा से निरस्त हो रहे हैं। उसकी महिमा यही है। ईशानी ने स्वयं हिन्दू-सेनापति के साथ युद्ध करने का निषेध किया है।"

अन्नजी दत्त ने भी कहा,"यह अनिवार्य्य है। आप अब दिल्ली के जाने के कर्त्तव्याकर्त्तव्य की विवेचना कीजिए।"

शिवाजी—"अन्नजी! आपका कथन सत्य है, परन्तु जिस आशा, जिस चेष्टा, ने बहुत दिनों से स्थान पाया था, वह सहज ही में उखड़ नहीं सकती। जो जो उन्नत पर्वत-श्रेणियाँ से चन्द्रकिरणों से शोभायमान हो रही हैं। ये सब लड़कपन से चढ़ी चढ़ाई हैं। ये सारे जङ्गल हमारे छाने हुए हैं। क्या अब ये स्वप्नवत् हो जायँगे? क्या फिर महाराष्ट्र देश स्वाधीन होगा? क्या भारतवर्ष पर कभी फिर हिन्दू-गौरव का सूर्य्य अपनी किरणें विस्तारित करेगा? हिन्दूराज्य हिमालय से सागर पर्य्यन्त समग्र देश पर फिर शासन करेगा। ईशानि! यदि यह आशा अलीक और स्वप्न मात्र है तो फिर इन मिथ्या स्वप्नों से बालक का हृदय क्यों चञ्चल कर रही हो?"

इन बातों को सुनकर सारी सभा में सन्नाटा छा गया। परन्तु उसी निस्तब्धता के मध्य में, घर के एक कोने से, एक गम्भीर शब्द सुनाई पड़ा—"ईशानी प्रवञ्चना नहीं करती! मनुष्य में यदि अध्यवसाय और वीरत्व है तो ईशानी सहायता करने से कुण्ठित न होगी।"

चकित होकर जो शिवाजी ने अनुसन्धान किया तो देखा कि इन सब्दों के कहनेवाले एक नये गोस्वामी सीतापति हैं ।

मारे उत्साह के शिवाजी के नयन जलने लगे और उन्होंने कहा—"गोसाईंजी ! आपने हमारे हृदय को फिर से उत्साह-पूर्ण कर दिया है । इसी प्रकार मृत्युशय्या पर लेटे हुए दादा कनाई देव ने भी लड़कपन में मुझे समझाया था । उससे बढ़ कर हमारे निकट और कोई महत्त्व की चेष्टा नहीं है । इस उन्नत पथ का अनुसरण करके, देश की स्वाधीनता का साधन करने, ब्राह्मण, गोवत्सादि और कृषिगणों की रक्षा करने, देवालयों के कलुषितकारियों को बल द्वारा परास्त करने के निमित्त ईशानी ने अनुरोध किया था । अतः इसी पथ का अनुधावन करना उचित है । बीस वर्षों से आजतक हमारे कानों में दादाजी के वही गम्भीर शब्द गूँज रहे हैं । क्याही उपकारी शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया था ।"

फिर उसी गोस्वामी ने गम्भीर स्वर में कहा, "कनाई देव ने ठीक ही कहा था । उन्नत पथ का अनुसरण करने से अवश्य ही उन्नति का लाभ होता है । यदि निरुत्साहित होकर हम रास्ते ही में बैठ जाते हैं तो यह कनाई देव की प्रवञ्चना नहीं है बल्कि यह हमारी भीरुता है ?"

"भीरुता" शब्द के उच्चारण मात्र से सारी सभा में खलबली मच गई । वीरों की तलवारें कमर में झनझनाने लगीं ।

गोस्वामी ने फिर गम्भीर स्वर से कहा, "राजन् ! गोस्वामी की वाचालता को क्षमा कीजिए । यदि कोई अन्यथा शब्द निकल

जाय तो उसे अनसुनी कर दीजिए। किन्तु मेरे दिये हुए उपदेश सत्य हैं अथवा झूँठ, अपने वीर हृदय से पूछ लीजिए कि जिसने जागीरदार पदवी से राजपदवी ग्रहण की है, जिसने खड्गद्वारा स्वतंत्रता का पथ अकंटक किया है, जिसने पर्वत, जङ्गल, गाँव और बड़े बड़े देशों में वीरत्व के चिह्न अंकित किये हैं। क्या उसे वह वीरभाव भूल गया है? क्या उसने स्वाधीनता को तिलांजली दे दी है? बालसूर्य्य की भाँति जो हिन्दूराज्य की ज्योति द्वारा चतुर्दिक के यवनों के अंधकार को विदीर्ण करके विस्तृत हुआ था, वही सूर्य्य क्या अकाल ही में अस्त हो गया! राजन्! हिन्दू-गौरव-लक्ष्मी ने आपको वरण किया था। क्या आप अपनी इच्छा से उसे त्यागना चाहते हैं? मैं केवल धर्म्मव्यवसायी मात्र हूँ। मुझे परामर्श देने का अधिकार नहीं है। आप स्वयं विवेचना करलें।

सारी सभा चुप है। शिवाजी भी चुपचाप बैठे हैं, परन्तु उनकी आँखें धक्धक् जलती थीं!

कुछ देर के पश्चात् शिवाजी ने स्वामीजी को सम्बोधन करके कहा, "गोस्वामिन्! आपके साथ परिचय हुए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। हम नहीं कह सकते कि आप मनुष्य हैं अथवा देवता। परन्तु आपकी कथा देववाणी से भी अधिक हृदयङ्गम होती है। मैं एक बात पूछना चाहता हूँ। वह यह कि हिन्दू-सेनापति का बड़ा प्रताप है और वह बड़ा रणकुशल है। उसके साथ राजपूतों की असंख्य सेना भी है। क्या उसके साथ युद्ध करने योग्य हमारे पास भी सेना है?"

सीतापति—"राजपूतगण वीराग्रगण्य हैं; परन्तु महाराष्ट्रीयगण भी खड्ग चलाने में दुर्बल नहीं हैं। जयसिंह रण-

पण्डित हैं तो शिवाजी ने भी क्षत्रिय-कुल में जन्म लिया है। पराजय की आशङ्का करना ही पराजित होना है। पुरुषसिंह! विपद् को तुच्छ समझ कर ईश्वर की कृपा पर भरोसा करके कार्य्य को साधिए। भारतवर्ष में कोई ऐसा हिन्दू नहीं है जो आपके यश का गायन न करता हो। आकाश में कोई देवता ऐसा नहीं है जो आपकी सहायता न करे!"

शिवाजी—"मैंने माना, किन्तु हिन्दू से हिन्दू को लड़ाकर पृथ्वी को हिन्दुओं के रुधिर से रञ्जित करना क्या मङ्गल है? इसे पुण्यकर्म्म कह सकते हैं?"

सीतापति—"इस पाप का भागी कौन है? जो स्वजातियों या स्वधर्म्मियों के साथ युद्ध करे, जो मुसलमानों के लिए स्वजातियों से वैरभाव रक्खे, वही है, अन्य नहीं?"

शिवाजी फिर कुछ देर के लिए चुप हो गये। मन ही मन सोचने लगे। उनका विशाल हृदय-सागर भीषण चिन्ता के कारण हिलोरें लेने लगा। क्या कहें? फिर एक घड़ी बाद धीरे धीरे मस्तक को उठा गम्भीर स्वर में कहा, "सीतापति! आज मैंने समझा कि अभी तक महाराष्ट्र देश वीरशून्य नहीं हुआ है। अब भी वह पराधीन नहीं है। फिर युद्ध हो, और उस युद्ध के समय आपकी अपेक्षा विचक्षण मन्त्री वा साहसी सहयोगी की हम आकांक्षा नहीं करते। परन्तु वह दिन अभी आने वाला नहीं है। हम पराजय की आशङ्का नहीं करते और न स्वधर्म्मियों के नाश से डरते हैं। किन्तु एक दूसरा कारण है कि जिससे हम युद्ध-विमुख हो रहे हैं। सुनिए:—

हमने जिस महाव्रत को धारण किया है उसके साधनार्थ अनेक षडयन्त्रों, अनेक गुप्त उपायों का अवलम्बन किया है।

म्लेच्छगण हमारे साथ सन्धिवाक्य स्थिर नहीं रक्खेंगे, इसलिए हम भी उनसे सन्धिस्थापन का विचार नहीं करेंगे।

आज हिन्दूधर्म के अवलम्बन स्वरूप, हिन्दूप्रताप के प्रतिमूर्त्तिस्वरूप, सत्यनिष्ठ जयसिंह के साथ जो सन्धि की है शिवाजी उसे त्याग नहीं सकता। महानुभाव राजपूत के साथ यह सन्धि की गई है। शिवाजी जीवित रहते उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता।

उस धर्मात्मा ने हमसे एक दिन कहा था—'सत्यपालन यदि सनातन हिन्दु-धर्म नहीं है तो क्या सत्यलङ्घन होगा।' वह वचन आज तक हमें भूला नहीं है और न हम उसे भुला सकते हैं।

सीतापति—"चतुर औरङ्गज़ेब यदि हमारी सन्धि का लङ्घन करे तो आप परामर्श को ग्रहण कीजिएगा कि उस समय शिवाजी दुर्बल हाथों में खड्ग न ग्रहण करे। परन्तु सत्य परायण जयसिंह के सहित इस सन्धि का लङ्घन करना अवश्य शिवाजी को अनुचित है।" सारी सभा चुप रही, परन्तु कुछ देर के बाद अन्न जी ने कहा, "महाराज! और एक बात है। कल आपने दिल्ली जाना निश्चित कर लिया है?"

शिवाजी—"हाँ, इस विषय के लिए तो हमने जयसिंह को वचन दे दिया है।"

अन्नजी—"महाराज! आप औरङ्गज़ेब की चालाकी को नहीं जानते। उसकी बातों का विश्वास नहीं करना चाहिए? उसने अपने किस कार्य्य का साधन इसमें बना रक्खा है, क्या आपने उसका अनुभव किया है?"

शिवाजी—"अन्न जी ! जयसिंह ने स्वयम् वचन दिया है कि "तुम्हें दिल्ली जाने में कोई अनिष्ट सहन नहीं करना पड़ेगा।"

अन्नजी—"कपटाचारी औरङ्गज़ेब यदि आपको क़ैद कर ले अथवा आपकी हत्या कर डाले तब जयसिंह किस प्रकार आपकी रक्षा करेंगे?"

शिवाजी—"तब तो सन्धिलङ्घन का फल औरङ्गज़ेब को अवश्य ही भोगना पड़ेगा।"

दत्तजी! महाराष्ट्र-भूमि वीर-प्रसविनी है। औरङ्गज़ेब के इस प्रकार के आचरण पर महाराष्ट्र-देश में युद्धानल प्रज्वलित हो जायगा। सारे समुद्र का जल उसे फिर बुझा नहीं सकेगा। औरङ्गज़ेब और सारा दिल्ली-साम्राज्य उसमें भस्म हो जायगा और पाप का फल लगकर रहेगा।

शिवाजी को अपनी प्रतिज्ञा में स्थिर समझकर लोगों ने और कुछ कहना उचित नहीं समझा, परन्तु थोड़ी देर के बाद शिवाजी ने फिर कहा—"पेशवाजी सूरेश्वर! आवाजी स्वर्ण-देव! अन्नजी दत्त! आप लोगों के समान कार्य्यक्षम, विचक्षण शक्तिशाली महाराष्ट्र देश में कोई विरले ही होंगे। आप तीनों जने मेरे परोक्ष समय में महाराष्ट्र देश पर शासन करना। आपके आदेश को लोग हमारा ही आदेश समझ कर उसका पालन करेंगे। मैं केवल आज्ञा दिये जाता हूँ।"

सूरेश्वर, स्वर्णदेव और अन्नजी ने शासनभार ग्रहण किया। परन्तु मालश्री ने फिर भी कहा—"क्षत्रियराज! मेरी एक प्रार्थना है। बाल्यकाल से मैंने कभी आपका साथ नहीं छोड़ा इसलिए आज्ञा दीजिए कि मैं भी आपके साथ दिल्ली चलूँ।"

आँखों में आँसू भर कर शिवाजी ने कहा—"मालश्री ! कोई वस्तु संसार में ऐसी नहीं है जो हम तुम्हें न दे सकें। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।"

सीतापति ने भी क्षण भर के बाद कहा—"राजन् ! फिर अब मुझे विदा दीजिए। मुझे अपने व्रतसाधन के हेतु बहुत से तीर्थों का भ्रमण करना है। जगदीश्वर आपको कुशल से रक्खें।

शिवाजी—"नवीन गोस्वामिन् ! कुशल के साथ दीर्घयात्रा कीजिए। युद्ध के समय में फिर आपका स्मरण करूँगा। आपकी अपेक्षा प्रकृत बन्धु हम देखने की आकांक्षा नहीं रखते। आपके समान थोड़ी अवस्था वाले में हमने ऐसा तेज और साहस किसी दूसरे में नहीं देखा।"

फिर एक दीर्घश्वास त्याग कर दबे स्वर में कहा—"हाँ, केवल एक व्यक्ति को और देखा था।"

बाईसवाँ परिच्छेद

चाँद कवि का गीत

सन् १६६६ ई० के वसन्त काल में शिवाजी पाँच सौ सवार और एक हज़ार पैदल सैनिक लेकर दिल्ली के पास पहुँच गये। शहर से लगभग ६ कोस दक्षिण ही शिवाजी ने अपना डेरा डाल दिया। सेना विश्राम करने लगी और शिवाजी चकित होकर अपने मनको इधर उधर भ्रमण कराने लगे। क्या दिल्ली में आकर हमने भला किया है? क्या मुसलमानों की अधीनता स्वीकार करना वीरोचित है? क्या अब भी लौट जाने का उपाय है? इसी प्रकार सैकड़ों कल्पनायें उठा करतीं। योद्धा के मुखमण्डल पर चिन्ता की रेखा अंकित रहने लगी। इससे पहले युद्ध के समय में भी शिवाजी को किसी ने इस प्रकार चिंतित नहीं देखा था।

शिवाजी अपने साथ तेजस्वी और उग्र स्वभाव अपने ६ वर्ष के बालक शम्भुजी को भी लिए लिए इधर उधर भ्रमण किया करते थे। कभी कभी बालक अपने पिता के गम्भीर मुख-मण्डल की ओर भी देखा करता और उनके हृदय के भाव को कुछ कुछ समझ भी लेता। रघुनाथपन्त न्यायशास्त्री नामक शिवाजी के पुरातन मन्त्री भी पीछे पीछे आ गये।

कुछ देर के पश्चात् शिवाजी ने मन्त्री से कहा, "न्यायशास्त्री, आप कभी पहले भी दिल्ली आये हैं?"

न्यायशास्त्री—"हाँ, लड़कपन में मैंने दिल्ली को देखा था।"

शिवाजी—"दूर से जो यह बहुविस्तीर्ण गुंबज की भाँति दीख पड़ती है आप बता सकते हैं कि यह क्या है? आप प्रायः अनमने होकर उसे क्यों देखा करते हैं?"

न्यायशास्त्री—"महाराज! दिल्ली के पहले हिन्दू राजा पृथ्वीराज के दुर्ग के गुंबज दिखाई पड़ते हैं।

शिवाजी ने विस्मित होकर कहा, "अँय्! यह पृथ्वीराज का दुर्ग है? यहीं उनकी राजधानी थी? क्या इस जगह पर पहले हिन्दू राजा राज्य-शासन करते थे? न्यायशास्त्रीजी! वे दिन स्वप्न की भाँति व्यतीत हो गये। "क्या भारत के वे दिन लौटकर फिर आवेंगे या नहीं? कुसुम के विलुप्त पत्र वसन्त में फिर देखे जाते हैं। क्या हमारे गौरव के दिन भी बहुरेंगे?

न्यायशास्त्री—"भगवान की कृपा से सब कुछ हो सकता है। यदि ईश्वर की कृपा होगी तो आपके बाहुबल से फिर वे दिन देखे जायँगे।

शिवाजी—"न्यायशास्त्री! लड़कपन में हमने कोकण देश में कई बार इस कथा को सुना है। चाँद कवि के गीतों में भी इसका विषय मिलता है। आप उसे क्या समझते हैं? यह टूटा फूटा दुर्ग पहले बड़े बड़े महलों और राजभवनों से परिपूर्ण था। बहुत से योद्धा रहते थे, पताका और तोरण से शोभित एक विशाल नगर था। योद्धाओं से भरी सभा में राजा बैठता था। आँख उठाकर जहाँ तक देखा जाता, पथ, घाट वाटिका, फुलवारी, नदी-तट सभी कुछ नागरिकों के आनन्द

और उत्सव के स्थान बने हुए थे। बाज़ार में बड़ा लेन देन होता था। उद्यानों में लोग आनन्द-मङ्गल किया करते थे। सरोवरों से ललनायें कलश भर भर जल लाया करती थीं और राजप्रासाद के पास सदा सेना सुसज्जित रहती थीं। हाथी, घोड़े इत्यादि भी खड़े रहते थे। बजानेवाले आनन्द के बाजे बजाया करते थे। अभी प्रभात के सूर्य्य की सुन्दर किरणें भली प्रकार से निकल भी नहीं सकीं थीं कि उसी समय मुहम्मदग़ोरी के दूत ने राजसभा में प्रवेश किया। क्या इस बात को आप जानते हैं? "

न्यायशास्त्री—"राजन्! चाँद कवि की बात तो जानता हूँ, परन्तु आप उसे कह डालें। आपसे मुख से वह कथा बहुत मनोहर मालूम होगी।"

शिवाजी—"मुहम्मदग़ोरी के दूत ने राजा से कहा था—"बादशाह! मुहम्मदग़ोरी ने आपकी सलतनत के निस्फ़ हिस्से ही पर क़िनाअत करने का क़स्द कर लिया है। क्या आप इसपर राज़ी हैं?"

महानुभाव पृथीराज ने उत्तर दिया था—"यदि सूर्य्यदेव आकाश में एक दूसरे सूर्य्य को स्थान दे दें, तो उसी दिन पृथ्वीराज भी अपने राज्य में दूसरे राजा को घुसने देगा।"

मुसलमान सफ़ीर ने फिर कहा—"महाराज! आपके ख़ुसर ने मुहम्मदग़ोरी से सुलह कर ली है। आप लड़ाई के वक्त मुसलमानों और राठौड़ों की फ़ौज को एकजा देखेंगे।"

पृथीराज ने जवाब दिया—"आप श्वशुरजी से मेरा प्रणाम कहकर उनसे कहिएगा कि मैं भी यही चाहता हूँ कि शीघ्र ही उनसे मिलकर उनके चरणरज को ग्रहण करूँ।"

बहुत जल्द चौहान-सेना इस प्रशस्त ढुग से बाहर निकली थी और चौहान वीरों ने मुसलमानों तथा राठौड़ों को आँधी से पीड़ित धूल की भाँति भगा दिया था। बड़ी कठिनता से तो गोरी ने अपने प्राण बचाये थे !

रघुनाथ ! वह दिन गया। इस समय चाँद कवि का गीत कौन गावे और कौन सुने ? परन्तु मैं जिस स्थान पर खड़ा हूँ उसके पूर्व गौरव को विचारने पर उन महाराजाओं की कीर्ति का स्मरण करने से स्वप्न की भाँति नई नई आशायें उठने लगती हैं। इस विशाल कीर्ति-क्षेत्र में सदा के लिए अँधेरा नहीं लिखा है। भारतवर्ष का दिन फिर कभी लौटेगा। ईश्वर ! रुग्ण को आरोग्यदान दीजिए, दुर्बल को बलवान् कीजिए, जीर्ण पद-दलित भारत-सन्तान को आपही उन्नति के शिखर पर बैठा सकते हैं।"

तेईसवाँ परिच्छेद

रामसिंह

"आत्मा वै जायते पुत्रः"

शिवाजी और उनके पुत्र शम्भुजी ज्यों ही डेरे में पहुँचे कि उसी समय एक प्रहरी ने आकर कहा—"महाराज ! जयसिंह के पुत्र रामसिंह एक सैनिक के साथ बाहर खड़े हैं। उन्हें सम्राट् ने आज्ञा दी है कि वे आपका स्वागत करें।"

शिवाजी—"सादर ले आओ।"

उग्रस्वभाव शम्भुजी ने कहा—"पिताजी ! आपको बुलाने के लिए औरङ्गज़ेब ने केवल दोही दूत भेजे हैं ?"

शिवाजी तो औरङ्गज़ेब की इस अपमानता से क्रुद्ध हो ही रहे थे; परन्तु उन्होंने इस विषय को प्रकाशित नहीं किया। इतने में रामसिंह शिविर में आ गये। राजपूत-युवक अपने पिता की भाँति तेजस्वी और वीर है—और पिता ही के समान धर्मपरायण और सत्यप्रिय है। तीक्ष्णबुद्धि शिवाजी ने युवक के मुखमण्डल को देखते ही उसके उदार और अकपट चरित्र को समझ लिया। परन्तु फिर भी उन्होंने, औरङ्गज़ेब का इसमें कुछ कपट है—दिल्ली का प्रवेश विपत्ति-जनक तो नहीं है इत्यादि विषयों का कुछ भी परामर्श नहीं किया। रामसिंह ने अपने पिता ही से शिवाजी के वीरत्व की कथा कई बार सुनी थी।

इसीलिए वे महाराष्ट्रवीर पुरुष की ओर आश्चर्य की दृष्टि से देखने लगे। शिवाजी ने रामसिंह का आलिङ्गन किया और कुशल-क्षेम पूछा।

थोड़ी देर के बाद रामसिंह ने कहा, "महाराज को मैंने इसके पहले कभी नहीं देखा था, परन्तु पिता जी से आपकी यशोवार्त्ता सविस्तर सुन चुका हूँ। अभी तक आप जैसा स्वदेशप्रिय, स्वधर्मपरायण वीर पुरुष मैंने नहीं देखा था। आज मेरे नयन सार्थक हुए।"

शिवाजी—"आज मेरे भी सौभाग्य हैं। आपके समान पितृतुल्य विचक्षण, धर्म्मपरायण, सत्यप्रिय वीर पुरुष राजस्थान में विरला ही कोई होगा। दिल्ली में आते ही मुझे उनके पुत्र के साक्षात् होने से बड़ा आनन्द हुआ। यह मेरे लिए उत्तम शकुन है।"

रामसिंह—"राजन्! आपके दिल्ली-आगमन की बात जब सम्राट् ने सुनी है तब उन्होंने मुझे आपके निकट भेजा है। क्या आप नगर प्रवेश की अभिलाषा रखते हैं?"

शिवाजी—"प्रवेश के सम्बन्ध में आपका क्या परामर्श है?"

रामसिंह—"हमारे निकट तो आप अभी चले चलें, क्योंकि देर होने से तो आँधी चलने लगेगी और गर्मी अधिक सतावेगी।"

रामसिंह के इस सरल उत्तर को सुनकर शिवाजी हँसने लगे। उन्होंने फिर कहा, "मैं यह नहीं पूँछता। आप तो दिल्ली में बहुत दिनों से रहते हैं। आपसे कोई बात छिपी न होगी?

हमें दिल्ली में क्यों बुलाया गया है—आप इस बात को तो अवश्य जानते होंगे।"

उदारचेता रामसिंह, शिवाजी के मनोगत भाव को समझकर हँस पड़े और कहने लगे, "महाराज, क्षमा कीजिए। मैंने आपके उद्देश को समझा नहीं था। यदि मैं आपकी जैसी अवस्था में होता तो सदैव पर्वतों में वास करता और अपने खड्ग पर भरोसा करता। खड्ग के तुल्य प्रकृत बन्धु और कोई नहीं है; किन्तु इस विषय को मैं नहीं जानता। जब पिताजी ने ही आपको दिल्ली में आने का परामर्श दिया है तो आपका आना अच्छा हुआ। वह अद्वितीय पण्डित हैं। उनका परामर्श कभी व्यर्थ नहीं होता।

शिवाजी ने समझ लिया कि दिल्ली में हमारे रोक लेने की कोई सम्भावना नहीं हुई है। यदि होगी भी तो रामसिंह उसे नहीं जानता। परन्तु फिर भी उन्होंने कहा—"हाँ,आपके पिता ने ही मुझे यहाँ भेजने का परामर्श किया है। मेरे आने के समय उन्होंने एक और वचन दिया है। कदाचित् उसे आप जानते हों?"

रामसिंह—"जानता हूँ, दिल्ली में आपको कोई कष्ट या विपद् न होने पावे। यही आपको वाक्य-दान दिया है और मुझे इसी का आदेश किया है।"

शिवाजी—"इसमें आपकी क्या सम्मति है?"

रामसिंह—"पिता का आदेश अवश्य पालनीय है। राजपूतों का वाक्य कभी मिथ्या नहीं होता। आप निरापद स्वदेश लौट जायँगे। इसमें दास कोई त्रुटि न होने देगा।"

शिवाजी ने निस्संदेह होकर कहा—"तो आपका परामर्श ग्रहण करता हूँ। देर होने से हवा कड़ी हो जायगी। चलो इसी समय दिल्ली चले चलें।"

सब के सब दिल्ली की ओर चल खड़े हुए। समस्त पथ मुसलमानों के टूटे फूटे महलों से परिपूर्ण था। पहले मुसलमानों ने दिल्ली को विजय करके पृथ्वीराज के क़िले के समीप अपनी राजधानी बसाई थी। इसलिए वहीं पुरानी टूटी फूटी मसजिदें और क़बरें देखी जाती हैं। संसार-प्रसिद्ध क़ुतुबमीनार यहीं बना हुआ है। और वीर नये नये सम्राट् और उत्तर को हटकर अपने अपने राजमहल बनवाते गये इस प्रकार दिल्ली उत्तरवाहिनी होती गई। शिवाजी ने चलते चलते नहीं मालूम कितनी मसजिदों, मीनारों और क़बरों को देख डाला। रामसिंह और शिवाजी साथ साथ चले जाते थे और एक दूसरे की सभ्यता की मन ही मन प्रशंसा करते जाते थे।

रास्ते ही में लोदी ख़ानदान के बादशाहों की बड़ी बड़ी क़बरें दीख पड़ीं। हर एक क़बर पर गुम्बज़ और महल बने हुए थे। जब अफ़गोनियों का गौरव सूर्य्य छिपा चाहता था उस समय भी दिल्ली वहीं बसी हुई थी। हाँ, उसके बाद से पीछे खसकती गई।

फिर हुमायूँ का भारी मकबरा दीख पड़ा। उसके पश्चात् चौंसठ खम्भे की इमारत मिली। फिर एक सुनसान कबरस्तान पड़ा। पृथ्वीराज के क़िले से वर्तमान दिल्ली तक आते आते शिवाजी को मालूम हुआ कि भारतवर्ष का इतिहास इसी रास्ते में अङ्कित है। एक एक महल और क़ब्र उस इतिहास-

पुस्तक के एक एक पन्ने हैं और एक एक दीवाल उसके अक्षर हैं। नहीं मालूम विकराल काल ने ऐसा इतिहास और भी कहीं लिखा है कि नहीं।

शिवाजी और आगे बढ़ गये। रामसिंह ने शिवाजी को सम्बोधन करके कहा,"महाराज, देखिए। यह हमारे पिताजी ने मन्दिर बनवाया है। राजन्! इस मन्दिर में ज्योतिष-गणना की जाती है और इसका नाम मान-मन्दिर है। रात के समय ज्योतिषी लोग ऊपर बैठकर नक्षत्रों की गणना करते हैं।"

शिवाजी—"आपके पिताजी जिस प्रकार वीर हैं उसी प्रकार बुद्धिमान् भी हैं। संसार में सर्व्वगुणसम्पन्न ऐसे मनुष्य विरले ही हैं।"

दिल्ली की सीमा के भीतर प्रवेश करते ही शिवाजी का हृदय एक बारही काँप उठा, तुरन्त उन्होंने घोड़े को थमा लिया; और पीछे की ओर देखने लगे, और सोचने लगे कि अभी तक तो स्वाधीनता है परन्तु थोड़ी ही देर बाद बन्दी हो जाना भी सम्भव है। परन्तु उसी समय उन्होंने जयसिंह के निकट जो वाक्यदान दिया था स्मरण हो आया और जयसिंह के पुत्र का उदार मुखमण्डल देखकर अपने कमर में "भवानी" नामक खड्ग का दर्शन कर दिल्ली में प्रवेश किया।

स्वाधीन महाराष्ट्रीय योद्धा उसी समय बन्दी हो गये।

चौबीसवाँ परिच्छेद

दिल्ली

दिल्ली आज मनोहर शोभा धारण किये हुए है। यद्यपि औरङ्गज़ेब स्वयम् तड़क भड़क को पसन्द नहीं करता, परन्तु राज-काज के साधनार्थ चमक दमक की आवश्यकता है। इसे वह ख़ूब जानता था। आज शिवाजी दरिद्र महाराष्ट्र देश से विपुल अर्थशाली मुग़लों की राजधानी में आया है। मुग़लों की क्षमता, सम्पत्ति और अर्थप्राचुर्य्य को देख कर शिवाजी अपनी हीनता को समझ जायगा। फिर वह मुग़लों के साथ लड़ाई करने का साहस न करेगा—औरङ्गज़ेब ने इन्हीं उद्देशों के साधनार्थ ऐसी नुमाइश बना रक्खी थी!

शिवाजी और रामसिंह साथ साथ राजमार्ग पर चलने लगे। रास्ते से होकर सैकड़ों अश्वारोही और पैदल सेना इधर उधर चल रही थी। सारा शहर मनुष्यों का जङ्गल मालूम होता था। सौदागरों और दूकानदारों ने अपनी अपनी दूकानों को विविध प्रकार की वस्तुओं से सुशोभित कर रक्खा था और बहुमूल्य वस्तुओं तथा चाँदी, सोने के पदार्थों को सब से आगे कर रक्खा था। किसी किसी मकान पर निशान उड़ रहा था। कहीं लोग अपनी छतों पर आ डटे थे। कुल-कामिनियाँ प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय योद्धा को झरोखों में से निहार रहीं थीं। रास्ते से होकर असंख्य पालकी, नालकी, हाथी, घोड़ा,

राजा, मनसवदार, शेख़, अमीर और उमरा लोग हर समय चला करते थे। बड़े बड़े हाथी सुन्दर सुन्दर गहने पहने लाल वस्त्र की झूल धारण किये शुण्ड उठाये नाचते मतवाली चाल से चले जा रहे थे। कहीं कहार "कङ्कड़ है—बच कर हूँ हूँ" करते हुए डोली उठाये चले जा रहे थे। शिवाजी ने कभी ऐसा शहर नहीं देखा था, पूना और रायगढ़ की तो बात ही क्या थी।

चलते चलते रामसिंह ने तीन सुफ़ेद गुम्बजों को दिखाया और शिवाजी से कहा—"यह देखिए यही जुम्मा मसजिद है। शाहजहाँ बादशाह ने संसार का धन एकत्रित करके इस मसजिद को बनवाया है। सुना है कि इसके अनुसार संसार में कोई दूसरा भवन नहीं है।

शिवाजी विस्मित हो उधर देखने लगे, कि मसजिद बड़ी लम्बी चौड़ी है। सुर्ख़ पत्थर की फ़सील बनी हुई है। गुम्बज़ उसके बड़े ऊँचे हैं।

इस अपूर्व मसजिद के सम्मुख ही राजभवन और क़िले की सुर्ख़ फ़सील देख पड़ती थी। दुर्ग के पीछे यमुना नदी बह रही थी। सामने शाहराह आदमियों से खचाखच भरा हुआ था। इसके समान उस समय भारतवर्ष में और कोई दूसरा स्थान नहीं था। शायद संसार में कोई दूसरा था या नहीं इसमें संदेह है। क़िले की फ़सील पर सैकड़ों निशान हवा लगने से फहराते थे, जिससे मुग़ल-सम्राट् की क्षमता और उनका गौरव प्रकाशित होता था। दरवाज़े पर एक प्रधान मनसवदार की नौकरी थी। क़िले के बाहर सैनिकों का पहरा जमा हुआ था। उनकी बन्दूकों और किरचों पर सूर्य्य की किरण पड़कर उन्हें

चमका रही थीं। किरचों में लाल लाल निशान लगे हुए थे। क़िले के सामने हज़ारों लोग क्रय-विक्रय कर रहे थे। क़िले से मसजिद तक आदमियों से खचाखच भरा हुआ था। हिन्दुस्तान के बड़े बड़े लोग हाथियों, घोड़ों, पालकियों पर सवार क़िले से बाहर भीतर आया जाया करते थे। उनके वस्त्रों की चमक दमक से आँखें चौंधिया जाती थीं। लोगों के कोलाहल से कान फटे जाते थे। परन्तु प्राचीरों पर तोपों की आवाज़ इन सब को पार कर जाती थीं और मानो ज़ोर ज़ोर से लोगों को सुना रही थी। इन सब स्थानों को बड़े विस्मय के साथ देखते देखते शिवाजी रामसिंह के साथ दुर्ग-द्वार लाँघ गये।

प्रवेश करते समय शिवाजी ने जो कुछ देखा उससे वे और भी विस्मित हो गये। चारोंओर बड़े बड़े "कारख़ाने" हैं। सैकड़ों कारीगर बादशाह के लिए भाँति भाँति की चीज़ें बना रहे हैं; अपूर्व ज़रदोज़ी का काम बन रहा है, मलमल और छींटें तैयार की जा रही हैं। क़ीमती ग़लीचा, तम्बू, परदा और शाल-दुशाले भी बनाये जा रहे हैं। बेगमों के लिए सोने की चीज़ों की गणना नहीं किन्तु मणियों के आभूषण तय्यार किये जा रहे हैं। खिलौने इत्यादि की कहाँ तक सूची दी जाय, जितने उत्तम शिल्पकार भारतवर्ष में थे वे सब शहंशाह से बड़ी बड़ी तनख़ाह पाते थे और क़िले ही में काम करते थे।

शिवाजी को इन सभों के देखने का अवसर नहीं मिला और सीधे "दीवान आम" के पास पहुँच गये। बादशाह यहाँ अपने वज़ीरों के साथ दरबार किया करता था। परन्तु शिवाजी को अपना

गौरव जताने के लिए आज का दरबार जगत्विख्यात "दीवान-ख़ास" में लग रहा था। शिवाजी ने उसी जगह पहुँच कर देखा कि प्रासाद के भीतर लाल मणियों से विनिर्म्मित सूर्य्य-किरणों के तुल्य "मोरसिंहासन" (तख़्तेताऊस) के ऊपर शाहंशाह औरङ्गज़ेब बैठा हुआ है और उसके चारों ओर चाँदी की चौकियों पर भारतवर्ष के अग्रगण्य, राजा, मनसबदार, उमरा और सिपहसालार लोग चुपचाप बैठे हुए हैं। शिवाजी का परिचय देने के लिए रामसिंह राजसदन में पहले ही से पहुँच गये।

शिवाजी ने औरङ्गज़ेब के इस अभिप्राय को पहले ही से समझ लिया था कि आज शहर की शोभा क्यों बढ़ाई गई है, परन्तु जिस समय वे राजसदन में पहुँचे उन्हें भले प्रकार से निश्चय हो गया। जिसने बीस वर्ष से बराबर लड़कर अपनी और स्वजातियों की स्वाधीनता की रक्षा की है वही महात्मा आज सम्राट् की अधीनता स्वीकार करके बादशाह की मुलाक़ात के लिए दिल्ली चले आये हैं। देखना है कि औरङ्गज़ेब उनका किस प्रकार से आतिथ्य करते हैं। शिवाजी आज एक मामूली कर्मचारी की भाँति औरङ्गज़ेब के महलों में खड़े हैं! यद्यपि शिवाजी का रक्त उबल उठा परन्तु उन्हें सामान्य कर्मचारी की तरह "तसलीम" करके "नज़र" देनी पड़ी। आज औरङ्गज़ेब का उद्देश सिद्ध हुआ। इसी उद्देश के साधनार्थ औरङ्गज़ेब ने आज शिवाजी से "नज़र" ग्रहण की है। परन्तु शोक है कि उसने शिवाजी का कुछ भी आदर न किया और "पञ्चहज़ारियों" की श्रेणी में उन्हें बैठने का आदेश किया। शिवाजी के नयन अग्निवत् प्रज्वलित हो उठे, शरीर काँपने लगा। उन्होंने दाँतों से अपने होठ को दबा कर स्पष्टरूप से कहा—"क्यों, शिवाजी पञ्च-

हज़ारी! यदि सम्राट् महाराष्ट्र देश में चले तो वह देख सकता है कि शिवाजी के अधीन कितने पञ्च हज़ारी हैं और वे भी तलवार चलाने में दुर्व्वल नहीं हैं।"

आवश्यकीय कार्य्यसम्पादन हुआ। बादशाह उठकर पास ही ऊँचे सुफ़ेद संगमरमर से बने हुए ज़नानख़ाने में चला गया। उसी समय नदी के स्रोतों की भाँति क़िले से असंख्य लोकस्रोत निर्गत होने लगा। जिसका जहाँ स्थान था वह वहीं चला गया। सागर की भाँति विस्तीर्ण दिल्ली-नगर में लोकस्रोत विलीन हो गया।

शिवाजी के रहने के लिए एक मकान निर्द्दिष्ट हुआ था। रोष से भरे हुए शिवाजी सन्ध्या होते होते उस मकान में पहुँचे और चुपचाप अकेले बैठकर चिन्ता करने लगे।

थोड़ी देर के बाद राजसदन से यह संवाद आया कि शिवाजी ने नाराज़ होकर जो कुछ कहा था बादशाह ने वह सब सुन लिया है। परन्तु वे शिवाजी को दण्ड देना नहीं चाहते किन्तु अब वे शिवाजी से भविष्य में कभी मिलना भी नहीं चाहते और न शिवाजी अब कभी दरबार में जाने पावेंगे। शिवाजी ने समझ लिया, भविष्यत् आकाश मेघाच्छन्न हो रहा है। व्याधा जिस प्रकार सिंह को फँसाने का जाल फैलाता है, क्रूर दुष्ट बुद्धि औरङ्गज़ेब भी धीरे धीरे उसी प्रकार शिवाजी को क़ैद करने के लिए मन्त्रणा-जाल फैला रहा है! शिवाजी मन ही मन विचारने लगे—"क्या इस जाल को काट कर फिर स्वाधीन हो सकूँगा? हा सीतापति गोस्वामी! चिरस्थायी युद्ध की तुम्हीं ने शिक्षा दी थी। वही बात अब याद आती है।

औरङ्गज़ेब ! सावधान ! शिवाजी तो तुम्हारे निकट सत्य का पालन करे और तुम उससे छल करो । याद रक्खो शिवाजी भी इस विद्या में शिशु नहीं है । भवानी तुम साक्षी रहो । महाराष्ट्र देश में फिर समरानल प्रज्वलित करूँगा और सारा दिल्ली नगर और मुसलमान-साम्राज्य एकबार ही उसमें भस्मीभूत हो जायगा ।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

निशा का आगन्तुक

"विभूति-भूषिताङ्ग ! तुम कौन ?"

कुछ दिन में शिवाजी ने औरङ्गज़ेब के उद्देश को स्पष्टरूप से समझ लिया। शिवाजी फिर स्वदेश को न लौट सके और वह चिरकाल के लिए वन्दी हो जाय, महाराष्ट्रीय फिर स्वाधीनता लाभ न कर सकें—यही औरङ्गज़ेब का उद्देश था। शिवाजी औरंगज़ेब के इस कपटाचार से यत्परोनास्ति रुष्ट हो गये, परन्तु क्रोध को छिपा कर दिल्ली से निकल जाने की चिन्ता करने लगे।

शिवाजी के चिरविश्वस्त मन्त्री रघुनाथपन्त न्यायशास्त्री सदा शिवाजी के साथ इस विषय में सोच-विचार किया करते। बहुत तर्क-वितर्क करने के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि पहले देश प्रत्यागमन के लिए सम्राट् से अनुमति ले ली जावे, जब अनुमति न दें तब उपाय करके चल देना चाहिए।

पण्डितप्रवर न्यायशास्त्री रघुनाथ ने शिवाजी के इस उद्देश को राजमहलों में पहुँचाने का भार लिया।

आवेदन-पत्र में शिवाजी के दिल्ली आने का कारण स्पष्ट रीति से लिखा गया, शिवाजी ने दिल्ली की सेना का साथ देकर जो जो कार्य्य सम्पादन किये थे और जिन्हें सम्राट् ने भी स्वीकार

कर लिया था उन सब का उल्लेख किया गया और यह भी लिखा गया कि बादशाह ने दिल्ली में उन्हें किस लिए बुलाया था ! उसके पश्चात् शिवाजी की यह भी प्रार्थना थी कि "हमने जिस कार्य्य-साधन के लिए कहा था उसके साधन में अब भी प्रस्तुत हैं, विजयपुर और गोलकुण्डा के राज्य को सम्राट् को अधीनता में लाने के लिए यथासम्भव सहायता करेंगे। यदि सम्राट् हमारी सहायता नहीं चाहते तो हम उनकी दी हुई जागीर को वापस भी कर सकते हैं । इस प्रान्त का जल-वायु हमारे लिए और हमारे साथियों के लिए बड़ा अनिष्टकारक है। इस देश में हमारा रहना असम्भव है।"

रघुनाथ न्यायशास्त्री इसी प्रकार का आवेदन-पत्र लेकर बादशाह के सम्मुख प्रस्तुत हुए। बादशाह ने उसका जो उत्तर दिया उसमें पचासों तरह की बातें थीं, परन्तु शिवाजी के चले जाने की कोई बात न थी। अब शिवाजी ने और भी निश्चय कर लिया कि "बादशाह का अभिप्राय सदैव वन्दीगृह में रखना ही है। इसलिए इस पाश से निकलने का सुदृढ़ उपाय करना चाहिए।"

ऊपर की घटना के कई दिन बाद, एक दिन, शिवाजी अङ्गलों में बैठे कुछ विचार रहे थे। सन्ध्या हो गई थी, सूर्य्यदेव अस्ताचल को प्रस्थानित हो रहे थे, परन्तु अभी अन्धकार नहीं हुआ था। राजमार्ग से होकर अभी तक लोगों का आना जाना बन्द नहीं हुआ था। देश देश के मनुष्य अपनी निराली निराली सजधज में अपने कार्य्य-सम्पादन के निमित्त इधर उधर घूम रहे थे। कहीं कहीं श्वेताङ्ग मुग़ल तेज़ी से चले जा रहे थे और कहीं पर दो चार काले हबशी काफ़िर भी घूमते फिरते दीख

पड़ते थे। फ़ारस, अरब, तातार और तुरकिस्तान के सौदागर और मुसाफ़िर लोग इस समृद्धिशाली नगर में व्यापार के लिए आये हुए थे। हिन्दू और मुसलमान सैनिक, राजा, मनसबदार और अमीर उमरा इधर उधर टहल रहे थे।

धीरे धीरे आदमियों की भीड़ कम होने लगी, और दिल्ली के असंख्य दुकानदार अपनी अपनी दुकान बन्द करने लगे। शहर का शोर गुल बन्द होने लगा और एकाध घर में चिराग़ भी जलने लगे। दूर की अट्टालिकायें धीरे धीरे नज़रों से ओझल होने लगीं। आकाश में दो एक तारे भी दीख पड़ने लगे। अब पश्चिम की दिशा से रक्तिमाच्छटा भी लुप्त हो चली। शिवाजी पूर्व की ओर देख रहे थे। देखते क्या हैं कि शान्त, विस्तीर्ण, दिगन्तप्रवाहिनी यमुना नदी शान्त भाव से अनन्त सागर की ओर बही चली जाती है।

उसी निस्तब्धावस्था में जुम्मा मसजिद से "अज़ाँ" का उच्च शब्द होने लगा, और इस शब्द की प्रतिध्वनि चारों ओर से आने लगी। शिवाजी भी चुपचाप उसी गम्भीर स्वर को सुनने लगे। कुछ देर के पश्चात् उन्होंने फिर अन्धकार की ओर लौट कर देखा तो केवल सुफ़ेद सुफ़ेद जुम्मा मसजिद के मीनार कुछ कुछ दीख पड़ने लगे, हाँ, और राजमहलों की लाल दीवारें पर्वत-श्रेणियों की भाँति मालूम होने लगीं।

रजनी गम्भीर हुई, परन्तु शिवाजी का चिन्तासूत्र अभी तक छिन्न नहीं हुआ, क्योंकि उनको पहली सब बातें एक एक करके आज याद आ रही हैं। जैसे—बाल्यकाल के सुहृद्वर्ग, बाल्यकाल की आशायें और उद्यम, साहसी और उन्नत चरित्र

पिता शाहजी, पितृतुल्य बाल्यसुहृद् दादाजी कनाईदेव, गरीयसी माता जीजी ! जिसने वीरमाता के समान शिशु शिवाजी को महाराष्ट्र की जय कथा सुनाई थी, विपद् में धैर्य्य दिया था और लड़ाई में उत्साहित किया था !

उसके पश्चात् यौवनावस्था की उन्नत आशायें, उन्नतकार्य्य-परम्परा, दुर्गविजय, देशविजय, राज्यविजय, विपद् पर विपद्, लड़ाई पर लड़ाई, अपूर्व्व जय-लाभ, दोर्द्दण्डप्रताप, दुर्द्दमनीय उच्चाभिलाषा—इसी प्रकार शिवाजी ने अपने बीस वर्ष के सारे कार्य्यों का पर्य्यालोचन कर डाला और देखा कि प्रत्येक वत्सर अपूर्वविजय अथवा असह्य साहसी कार्य्यों से अङ्कित और समुज्वल है।

क्या यह सब व्यर्थ है ? क्या यह आशा मायाविनी है ? ना, अब भी भविष्यत् आकाश गौरव-नक्षत्र से हीन नहीं हुआ है ? अब भी भारतवर्ष मुसलमान राज्य से छुटकारा पावेगा और हिन्दूराज्य चक्रवर्ती राजा के सिर पर राजच्छत्र सुशोभित करेगा।

शिवाजी इसी प्रकार की चिन्ता करते थे कि प्रहर रात व्यतीत हो जाने का घंटा बजा। राजमहलों के नक्कारख़ाने से नौबत बजकर सारे शहर को सूचित करने लगी। अभी नौबत का शब्द आकाश में लीन नहीं हुआ था कि शिवाजी को अपने गवाक्ष के सामने एक दीर्घ मनुष्यमूर्त्ति दीख पड़ी।

विस्मित होकर शिवाजी खड़े हो गये, और उसी आकृति की ओर तीव्रदृष्टि से देखने लगे। उन्होंने चुपचाप कमर से तलवार निकाल ली। अपरिचित आगन्तुक शिवाजी की

सम्मति लिए बिना ही सीधे शिवाजी के पास चला आया और फिर धीरे धीरे ललाट और भ्रूयुगल को पोंछने लगा।

शिवाजी ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखा कि आगन्तुक के सिर पर जटाजूट है, और सारे शरीर पर भस्म रमा हुआ है। हाथ में किसी प्रकार का अस्त्र भी नहीं है। आगन्तुक शिवाजी के वध करने को भेजा हुआ बादशाह का गुप्तचर भी नहीं है। परन्तु यह है कौन?

उस अँधेरी रात में आगन्तुक ने शिवाजी की ओर देखकर कहा—"महाराज की जय हो!"

अन्धकार के कारण शिवाजी उसे पहचान नहीं सके, परन्तु उसके स्वर को सुनते ही समझ गये। जगत् में प्रकृत बन्धु विरले ही हैं; विपदावस्था में ऐसे बन्धु को पाकर हृदय पुलकित हो जाता है। शिवाजी ने सीतापति गोस्वामी को प्रणाम करके सानन्द आलिङ्गन किया, और सादर पास बैठाया। थोड़ी देर के बाद एक दीपक जला कर शिवाजी ने कहा—"बन्धुवर! रायगढ़ की क्या दशा है? आप वहाँ से कब और किस प्रकार यहाँ आये हैं? इतनी दूर आने का क्या प्रयोजन था? और ऐसी अँधेरी रात में गलियों में होकर आने का कारण क्या है?"

सीतापति—"महाराज! रायगढ़ में सब कुशल है। आपने जिन मन्त्रियों को राजभार सौंपा है वे सब बड़ी बुद्धिमानी से कार्य्य कर रहे हैं। उनके प्रबन्ध में अमङ्गल होने की कोई सम्भावना नहीं है। परन्तु हम इस विषय को अच्छी तरह नहीं जानते; क्योंकि आपके चले आने के पश्चात् हम भी चले आये

थे । जैसा कि मैंने पहले ही कहा था कि व्रत के साधनार्थ मुझे देश देश का पर्य्यटन करना पड़ता है । इस अवस्था में जभी आपका साक्षात् हो जाय तभी मेरा सौभाग्य है ।"

शिवाजी—"परन्तु फिर भी विना कारण आप झरोखों में होकर कभी नहीं आ सकते । कारण कृपया प्रकाशित कीजिए ।"

सीतापति—"अच्छा, निवेदन करता हूँ । परन्तु पहले आप यह बता दें कि जब से आप यहाँ आये हैं तब से सकुशल तो हैं ?"

शिवाजी—"शरीर से तो कुशल हूँ, परन्तु मन की कुशलता कहाँ ?"

सीतापति—"जब आपसे और बादशाह से सन्धि हो गई तब फिर शत्रुता कहाँ ?"

शिवाजी—"भला मेढ़क और सर्प की मित्रता कब तक रह सकती है ? सीतापति ! आप सब कुछ जानते हैं और अधिक मुझे मत लजाइए । यदि रायगढ़ में आपका परामर्श मान लेता तो कंकण देश अथवा पर्वत-कन्दराओं में भी निवास करके आज तक स्वाधीन रहता और आज खल बादशाह की बातों में पड़ कर दिल्ली में वन्दी न होता ।"

सीतापति—"प्रभु ! आत्म-तिरस्कार मत कीजिए । मनुष्य मात्र भ्रान्ति में पड़ सकते हैं । यह जगत् ही भ्रान्ति से परिपूर्ण है । आपका दोष नहीं है । आपने सन्धि के वाक्यों पर विश्वास करके सदाचार का व्यवहार किया और वहाँ से यहाँ चले आये, परन्तु बादशाह कपटाचार का दोषी है । यदि ईश्वर ने चाहा तो उसे इसका फल चखाया जायगा । प्रभु ! छलियों की

कुशलता नहीं। आज जिस पाप के द्वारा उसने आपको बन्दी किया है उसीके फलरूप में वह सवंश नष्ट होगा। महाराज! आपने रायगढ़ में जो बात कही थी, महाराष्ट्रियों को वह बात भूली नहीं है। औरङ्गज़ेब यदि कपटाचरण करेगा तो समस्त महाराष्ट्र देश में इस प्रकार युद्धानल प्रज्वलित हो जायगा कि सारा मुग़ल-साम्राज्य उसमें जल कर भस्म हो जायगा।" यह सुनते ही उत्साह और उल्लास से शिवाजी के नयन जलने लगे। उन्होंने कहा—"सीतापति! यह आशा अभी लोप नहीं हुई है। अब भी औरङ्गज़ेब यह देखेगा कि महाराष्ट्र देश जीवित है! परन्तु शोक! कि हमारे वीराग्रगण्य सेनापति तो मुग़लों से संग्राम करें और मैं दिल्ली में पड़ा रहूँ!"

सीतापति—"औरङ्गज़ेब जब गगनसञ्चारी वायु को जाल से रोक लेगा तब तो यह सम्भव है कि वह आपको बन्दी रख सके, अन्यथा नहीं।"

शिवाजी ने हँस कर कहा—"ज़रा धीरे धीरे बोलिए। इससे तो यह निश्चय होता है कि आपने यहाँ से निकलने का कोई उपाय कर लिया है तब तो आधीरात के समय यहाँ चले आये हैं।"

सीतापति—"आप तीक्ष्णबुद्धि हैं। आपसे कोई बात छिपी नहीं रह सकती।"

शिवाजी—"अच्छा वह उपाय क्या है?"

सीतापति—"अँधेरी रात में तो आप यों ही छद्मवेश धारण करके यहाँ से निकल सकते हैं। यद्यपि दिल्ली के चारों ओर

शहर-पनाह है परन्तु पूर्व की ओर एक लौहशलाका के स्थापित होने के कारण कुछ भाग फ़सील का ख़ाली है, जिसे कूद जाना महाराष्ट्रियों के निकट कोई कठिन नहीं है; और दूसरी ओर नदी के पास आठ मल्लाह खड़े हैं वह तुरन्त ही नाव पर सवार कराके मथुरा पहुँचा देंगे। वहाँ आपके सैकड़ों मित्र और बन्धु हैं। सैकड़ों देवालयों में अनेक धर्मात्मा पुजारी हैं। उनके द्वारा आप अनायास ही स्वदेश को लौट सकते हैं।"

शिवाजी—"मैं आपके उद्योग से बड़ा सन्तुष्ट हुआ। आपके समान बन्धु दूसरा कोई नहीं देखा जाता। परन्तु यदि फ़सील कूदते समय किसी ने देख लिया तो भागना कठिन होगा, फिर तो औरङ्गज़ेब के हाथ से मारा जाना निश्चय है।"

सीतापति—"जहाँ लोहशलाकायें रक्खी गई हैं वहीं आपके दस सिपाहियों का पहरा है। जो कोई आपको रोके टोकेगा वह अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होगा।"

शिवाजी—"यदि नौका चलने पर तीरस्थ कोई प्रहरी सन्देहवश नौका रोक दे तो?"

सीतापति—"आठों मल्लाह आपही के छद्मवेशी योद्धा हैं। उनका शरीर वर्म्माच्छादित है और वे सब तरह से सुसज्जित हैं। सहसा कोई नौका रोक ले! भला किसके मुँह में बत्तीस दाँत हैं?"

शिवाजी—"मथुरा पहुँचने पर यदि कोई यथार्थ बन्धु न मिले?"

सीतापति—"आपके पेशवाजी के बहनोई मथुरा ही में हैं। वे आपके चिर परिचित और विश्वस्त हैं—यह आप भी

जानते हैं । मैं आज उन्हीं के पास से आता हूँ । लीजिए यह उनका पत्र, पढ़िए।

सीतापति ने अपने वस्त्रों से निकाल कर एक पत्र शिवाजी के हाथ में रख दिया । शिवाजी ने ज़ोर से हँस कर कहा—"लो, पत्र तुम्हीं पढ़ो ।"

सीतापति लज्जित हो गये—उन्हें अब स्मरण हुआ कि "शिवाजी तो अपना नाम भी नहीं लिख सकते—लिखना पढ़ना तो उन्होंने सीखा ही नहीं !"

सीतापति ने पत्र पढ़कर सुनाया । जिस जिस वस्तु की आवश्यकता थी मूरेश्वर ने सब कुछ ठीक कर रक्खा है । ख़त में इसका विस्तार भलीभाँति था ।

शिवाजी ने कहा—"गोस्वामिन् ! आपका सारा जीवन यागयज्ञ ही में व्यतीत नहीं हुआ है । आपके समान तो शिवाजी का मन्त्री भी कार्य्यसम्पादन नहीं कर सकता । किन्तु फिर भी एक बात है । हम तो चले जायँ परन्तु हमारा पुत्र कहाँ रहेगा, हमारे विश्वस्त मंत्री रघुनाथपन्त और प्रिय सुहृद् तन्नजी मालश्री कहाँ जायँगे ? भला हमारे सैनिक किस प्रकार औरङ्ग-ज़ेब के कोपसागर से तर सकेंगे ?"

सीतापति—"आपका पुत्र, प्रिय सुहृद् और मंत्री सभी आपके साथ आज रात को जा सकते हैं । आपकी सेना यदि दिल्ली में पड़ी भी रहे तो कोई हानि नहीं । औरङ्गज़ेब उनका क्या कर सकता है । अन्त में उसे छोड़ते ही बनेगा ।"

शिवाजी—"सीतापति ! आप औरङ्गज़ेब को नहीं जानते । वह अपने भाइयों को मार कर सिंहासन पर बैठा है ।"

सीतापति—"यदि औरङ्गज़ेब आपके सैनिकों पर कोई कठोर आज्ञा देगा तो लोग आपको निरापद समझ कर मरने और मारने को प्रस्तुत हो जायँगे।"

शिवाजी थोड़ी देर तक चुपचाप कुछ विचारने लगे। फिर प्रकटरूप में उन्होंने कहा—"गोस्वामिन्! मैं आपके उद्योग और परिश्रम का चिरबाधित हूँ, परन्तु शिवाजी अपने भृत्यों और आत्मीयों को आपत्ति में छोड़कर मुक्त होना नहीं चाहता। यह भीरुता का कार्य्य मेरे किये न होगा। सीतापति! कोई दूसरा उपाय सोचो, नहीं तो इस उपाय को छोड़ दो।"

सीतापति—"अन्य कोई उपाय नहीं है।"

शिवाजी—"तब समय दो, शिवाजी को यह पहली आपदा नहीं है। शिवाजी उपाय सोचने में कच्चा नहीं है।"

सीतापति—"समय नहीं है। आज ही की रात आप निकल चलें, नहीं तो कल आपका निकलना कठिन हो जायगा।"

शिवाजी—"क्या आपने किसी योगबल से यह जान लिया है। हम तो नहीं जानते, यदि आपका कथन वास्तव में यथार्थ निकले तो भी शिवाजी का दूसरा कोई वक्तव्य नहीं है। शिवाजी आश्रित, प्रतिपालित लोगों को विपत्ति में छोड़कर आत्मपरित्राण नहीं किया चाहता। गोस्वामिन्! यह क्षत्रिय धर्म्म नहीं है।"

सीतापति—"प्रभु! विश्वासघातकों को प्राणदण्ड देना क्षत्रियों का परम कर्त्तव्य है। अतः औरङ्गज़ेब को यही दण्ड

देना उचित है। इसलिए आप सुदूर महाराष्ट्र देश को वापस चलें। फिर वहीं से सागरतरङ्गवत् समरतरङ्ग प्रवाहित कीजिए, जिसमें औरङ्गज़ेब का सुखस्वप्नभङ्ग हो जाय और उसकी साम्राज्य रूपी नौका, जो पाप के पत्थरों से भारी हो रही है, अतुल रण सागर में मग्न हो जाय।

शिवाजी—"सीतापति! जो ब्रह्माण्ड के राजा हैं वही औरङ्गज़ेब को दण्ड देंगे। मेरी बात मानो, इसमें अधिक विलम्ब नहीं है। शिवाजी आश्रितों को छोड़ नहीं सकता।"

सीतापति—"प्रभु! अबभी आप अपनी प्रतिज्ञा को त्याग दीजिए। ज़रा ध्यान से विचारिए। कल सोचने का अवसर नहीं मिलेगा। आप कल क़ैद हो जायँगे।"

शिवाजी—"जो हो। आश्रितों को छोड़ नहीं सकता। शिवाजी की यह प्रतिज्ञा अटल है।"

सीतापति चुप हो रहे। शिवाजी ने देखा कि उनकी आँखों से आँसू निकल रहा है। तुरन्त उन्होंने सीतापति का हाथ पकड़ कर कहा—"गोस्वामिन्! दोष ग्रहण न कीजिए। आपके यत्न, आपकी चेष्टा, हमारे हृदय से आजन्म मिटने की नहीं। रायगढ़ में आपका धीर-परामर्श और दिल्ली में मेरे उद्धारार्थ आपका यह उद्योग मेरे हृदय में अंकित हो गया है। आप कृपा करें, आप ही के परामर्श द्वारा शीघ्र ही सबका उद्धार होगा।"

सीतापति—"प्रभु! आप के मिष्टभाषण से मैं यथोचित पुरस्कृत हो गया। ईश्वर की साक्षी देकर मैं कहता हूँ कि आप के साथ रहने के अतिरिक्त मेरी कोई और कामना नहीं है, परन्तु

हमारा अलङ्घनीय व्रत नाना स्थानों पर भ्रमण करने को बाध्य करता है।"

शिवाजी—"यह कौन असाधारण व्रत है,हमतो नहीं जानते। सीतापति ! यह कठोर व्रत क्यों धारण किया है ?"

सीतापति—"समस्त बात इस समय किस प्रकार समझा सकता हूँ ?"

शिवाजी—"अच्छा, इस व्रत को किस लिए धारण किया है"?

थोड़ी देर के विचार के बाद सीतापति ने कहा—"हमारे भाग्य में एक अमङ्गल लिखा हुआ था। हम अपने जिस इष्ट-देवता की बाल्यकाल से पूजा करते थे और जिसका नाम जपकर जीवन धारण कर रक्खा है, ईश्वर की अनिच्छा से वही देव हमारे ऊपर विमुख हो गये। उसी अमङ्गल के खण्ड-नार्थ व्रत धारण किया है।"

शिवाजी—"यह अमङ्गल आपको किसने बताया है ? क्या किसी ने उसके खंडनार्थ आपको व्रत धारण करने का परामर्श किया है ?"

सीतापति—"कार्य्यवश हमने स्वयम् जान लिया। ईशानी के मन्दिर में एक महात्मा ने हमें इस व्रत के साधनार्थ उपदेश किया है। यदि सफल मनोरथ हो गया तो सब आपसे निवेदन करूँगा। यदि अकृतार्थ हुआ तो इस अकिञ्चन जीवन का त्याग करूँगा। फिर जिसकी पूजार्थ यह जीवन धारण कर रक्खा है उसी के विमुख रहने पर जीवित रहने की क्या आवश्यकता?"

शिवाजी—"सीतापति ! आपने जो कुछ कहा है वह यथार्थ है। जिसके लिए प्राणप्रण किया जाय, जिसके लिए आत्म-

समर्पण कर निज जीवन तुच्छ समझा जाय, उसी के असन्तुष्ट रहने पर तो इस दुःख की तुलना नरक से भी नहीं की जा सकती।"

सीतापति—"प्रभु! क्या आपने कभी ऐसी यातना भोगी है?"

शिवाजी—"ईश्वर हमें क्षमा करें। हमने एक निर्दोषी वीर पुरुष को ऐसी यातना दी है, उस बालक की कथा जब स्मरण हो जाती है, हृदय कम्पायमान हो जाता है।"

सीतापति—"उस अभागे का नाम क्या था?"

शिवाजी ने कहा "रघुनाथ जी हवलदार!"

घर का दीप सहसा बुझ गया। शिवाजी दीपक के जलाने में लग गये। उसी समय सीतापति ने कहा—"दीपक की आवश्यकता नहीं है, कहिए, मैं योंहीं सुनता जाता हूँ।"

शिवाजी—"और क्या कहूँ! तीन वर्ष व्यतीत हो गये कि वह बालक वीरपुरुष हमारे निकट आकर सेना के कार्य्य में प्रवृत्त हुआ था। उसका वदन-मण्डल बड़ा उदार था। सीतापति! आप ही की भाँति उसका उन्नत ललाट था और आप ही की भाँति उज्ज्वल नयन थे। हाँ, उसकी अवस्था आप से कुछ कम थी, परन्तु उसका हृदय आप ही की भाँति दुर्द्दमनीय वीरत्व और साहस से सर्वदा परिपूर्ण रहता था। आपका बलिष्ठ उन्नत देह जब देखता हूँ, आप का परिष्कार कण्ठस्वर जब सुनता हूँ और जब आप के वीरोचित विक्रम की आलोचना करता हूँ तभी उस बालक की कथा हृदय में जागृत हो जाती है।

सीतापति—"फिर ?"

शिवाजी—"उस बालक को जब मैंने पहले ही दिन देखा था तभी समझ लिया था कि यह वास्तविक वीर होगा और उसी दिन उसे एक अपनी तलवार दे दी थी। रघुनाथ ने उस असि का कभी अपमान नहीं किया। विपत्ति के समय सर्वदा हमारे साथ छाया की भाँति फिरा करता था। लड़ाई के समय दुर्दमनीय तेज प्रकाशित करके शत्रुओं का भेदन करता था। मुझे ऐसा विश्वास है कि अब उसका गुच्छ गुच्छ कृष्ण-केश, वैसे उज्ज्वल नयन कदापि देखने में न आवेंगे।"

सीतापति—"फिर ?"

शिवाजी—"उस बालक ने लड़ाई में जीवन रक्षा की है। एक लड़ाई में उसी के विक्रम से दुर्गजय हुआ था। अनेकों लड़ाइयों में उसने असाधारण पराक्रम प्रकाश किया था।"

सीतापति—"उसके बाद ?"

शिवाजी—"और क्या पूँछते हैं ? एक दिन भ्रम में पतित होकर हमने उस चिरविश्वासी अनुचर का अपमान किया था और उसे अपने कार्य्य से पृथक् कर दिया, परन्तु उस वीर पुरुष ने अन्त तक कोई कड़ी बात भी नहीं कही और चलते समय वह सिर नवा कर चला गया।"

शिवाजी का कण्ठ रुद्ध हो गया और आँखों से आँसू निकल आये। कुछ समय तक कुछ कहा नहीं गया।

फिर कुछ देर के बाद सीतापति ने कहा—"इस में आपका दोष क्या था ? दोषी को तो दण्ड देनाही चाहिए।"

शिवाजी—"दोषी ! रघुनाथ उन्नत चरित्र का मनुष्य था। उसमें दोष का स्पर्श भी नहीं था। नहीं मालूम किस कुक्षण में मुझे भ्रम हुआ था। रघुनाथ को एक चढ़ाई में पहुँचने में कुछ देरी हो गई थी, और हमने उसी में उसको विद्रोही समझ लिया, परन्तु महानुभव जयसिंह ने अनुसन्धान करके पता लगा लिया था कि वह एक पुरोहित से आशीर्वाद लेने गया था और यही विलम्ब का कारण था। निर्दोषी का मैंने अपमान किया है, सुना है कि उसी अपमान के कारण रघुनाथ ने प्राण त्याग दिये हैं। युद्ध में जिसने हमारे प्राणों की रक्षा की थी—शोक ! हमने उसी के प्राण लिए।

शिवाजी की कथा समाप्त हुई। उनसे बोला नहीं गया। वह अनेक क्षण तक नीचे को देखते रहे। फिर कहने लगे—"सीतापति ! सीतापति !!"

किसी ने उत्तर नहीं दिया। कुछ विस्मित होकर शिवाजी ने दीपक जला लिया। देखते हैं तो कोई नहीं। सीतापति नहीं मालूम कहाँ चले गये।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

औरङ्गज़ेब

दूसरे दिन एक पहर दिन चढ़े शिवाजी की निद्रा भङ्ग हुई। वे जागते ही राजपथ पर गोलमाल सुनकर गवाक्ष से देखने लगे। देखते क्या हैं कि उन्हीं का स्थान पहरेदारों से घिरा हुआ है। बिना जाने पहचाने कोई अब भीतर नहीं जा सकता। उन्होंने यह भी देखा कि उनके मकान के चारों ओर शस्त्रधारी पहरेदारों की चौकसी है। जब तक अच्छी तरह परिचय नहीं पा लेते किसी को घर में आने नहीं देते। अब शिवाजी को गोस्वामी की कथा याद पड़ गई। कल तो शिवाजी निकल सकते थे, परन्तु आज वे औरङ्गज़ेब के वन्दी हैं!

अब शिवाजी विचार करने लगे कि इसका कारण क्या है? बहुत सोचने पर मालूम हुआ कि प्रार्थना पत्र से औरङ्गज़ेब को सन्देह हुआ है और इसी कारण उसने शहर के कोतवाल को आज्ञा दे दी है कि शिवाजी के मकान के चारों ओर दिन रात पहरा बिठा दो, जिसमें वे कहीं भी जाय तो उनके साथ डिटेक्टिव लगे रहें। अब शिवाजी को निश्चय हुआ कि सीतापति ने औरङ्गज़ेब की इच्छा जान ली थी इसी कारण इच्छा को कार्य्यरूप में परिणत होने से पहले ही वे मेरे चले जाने का प्रबन्ध करके कल रात को मेरे पास आये थे। शिवाजी मन ही मन गोस्वामी को धन्यवाद देने लगे।

औरङ्गज़ेब की कपट-लीला अब स्पष्ट रूप से प्रकट हुई। बादशाह ने पहले बड़े सम्मानसूचक शब्दों में पत्र लिखकर शिवाजी को बुला भेजा था । जब शिवाजी आ गये तब भरी सभा में उनका अपमान किया। स्वदेश के प्रत्यागमन में आपत्ति मचाई गई और तत्पश्चात् वह नज़रबन्द कर लिये गये । कोई कोई अजगर भक्षण करने के प्रथम अपने भक्ष्यपदार्थ को चारों ओर से अपने दीर्घ शरीर से लपेट लेते हैं और उसे सम्पूर्ण-रूप से वशीभूत करके निगलने लगते हैं। क्रूर औरङ्गज़ेब ने भी इसी प्रकार अपने कपटजाल में शिवाजी को फँसाकर उसके विनाश का संकल्प कर लिया। साधारण मनुष्य के लिए जो बात समझने के अयोग्य थी, शिवाजी ने शत्रु के उस गुप्त षड्यन्त्र को पलमात्र में समझ लिया।अब उनका अधर काँपने लगा, आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं । बहुत देर के पश्चात् शिवाजी होंठ चबाकर कहने लगे—"औरङ्गज़ेब ! शिवाजी को तूने अभी तक नहीं जाना। चतुरता में तू अपने को अद्वितीय समझता है, किन्तु शिवाजी भी इस विद्या में बालक नहीं है। यह ऋण एक दिन निबटा दूँगा। दक्षिण से लेकर सारे भारतवर्ष में समरानल प्रज्वलित हो जायगा।"

बहुत देर तक शिवाजी ने सोच विचार किया। पश्चात् अपने विश्वस्त मन्त्री रघुनाथपन्त को बुलाया। प्राचीन न्याय-शास्त्री उपस्थित हुए और चुपचाप सामने खड़े हो गये। शिवाजी ने कहा, "परिडतवर! आप औरङ्गज़ेब के खेल को देख रहे हैं न? आपके प्रसाद से शिवाजी भी इस खेल में कच्चा नहीं है। बन्दी तो मैं आज हुआ हूँ परन्तु इसका समाचार मुझे कल ही मिल गया था—परन्तु अपने अनुचर इत्यादि को दुःख में छोड़कर स्वयं निकल जाने की इच्छा मुझे नहीं है। क्यों?

न्यायशास्त्री ने बहुत सोच विचार के बाद कहा, "आप अनुचरों को स्वदेश प्रत्यागमन करने की बादशाह से प्रार्थना करें, जब उसने आपको बन्दी कर लिया है तब तो वह इस बात से और भी प्रसन्न होगा कि उसके नौकर चाकर जितने ही कम हों उतने ही बेहतर। मेरा ऐसा विचार है कि यह अनुमति आपको माँगते ही मिल जायगी।"

शिवाजी—"मन्त्रिवर, आपका परामर्श बड़ा उत्तम है। हमारी भी समझ में यह बात आती है कि धूर्त्त औरङ्गज़ेब इस विषय में आपत्ति नहीं करेगा।"

इसी मर्म का एक प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया गया। शिवाजी ने जो कुछ सोच रक्खा था वही हुआ। शिवाजी के अनुचर दिल्ली से चले जायँगे—इस विषय को सुनकर औरङ्गज़ेब बड़ा प्रसन्न हुआ और तुरन्त ही आज्ञा दे दी। शिवाजी कई दिन बाद इस अनुमति को सुनकर मनमें विचारने लगे, "मूर्ख! शिवाजी को बन्दी रक्खेगा? यदि अभी एक अनुचर का वेश बनाकर और एक अनुमति-पत्र ले यहाँ से चला जाऊँ तो तू मेरा क्या करेगा? यही होगा। अनुचर निरापद निकल जायँ फिर शिवाजी अपने निकलने का उपाय स्वयम् कर लेगा।"

पाठक! जिसने असाधारण चातुर्य, बुद्धिकौशल और रणनैपुण्य के द्वारा अपने भाइयों को परास्त कर, अपने बाप को बन्दी कर लिया और जो दिल्ली के तख़्तताऊस पर विराजमान हुआ और बङ्गदेश से कश्मीर पर्य्यन्त समस्त आर्य्यावर्त्त का अधिपति होकर भी फिर दक्षिण देश को जीतकर जिसने सब भारतवर्ष में एकाधीश्वर होने का सङ्कल्प किया था, वही एक

बार उस क्रूर कपटाचारी अथवा साहसी औरङ्गज़ेब के राज-भवन में प्रवेश कर उसके मनके भाव का निरीक्षण करें।

राजकार्य्य समाप्त हो गया है। औरङ्गज़ेब एक महल में बैठा हुआ है। यह मन्त्रियों के साथ गुप्त परामर्श करने का स्थान है। परन्तु आज यहाँ औरङ्गज़ेब अकेला ही बैठा हुआ विचार कर रहा है। कभी उसके ललाट पर गम्भीर चिन्ता की लकीरें पड़ जाती हैं, कभी उसके उज्ज्वल नयन रोप, अभिमान और दृढ़ प्रतिज्ञा से आच्छादित हो जाते हैं और कभी मन्त्रणा की सफलता की आशा से उसके होठों में हँसी दीख पड़ती है। बादशाह क्या कर रहा है? क्या यह चिन्ता तो नहीं कर रहा है कि मैं अपने बुद्धिबल से आज सारे भारतवर्ष का शाहनशाह हो गया? वह यह तो नहीं विचार रहा है कि अब हिन्दुओं का अच्छा अपमान हुआ। उनके सत्यानाश होने में कोई अधिक विलम्ब नहीं है। परन्तु हम नहीं जान सकते कि वह क्या क्या विचार रहा है, क्योंकि वह भारतवर्ष के किसी मनुष्य, किसी सेनापति और किसी मन्त्री का पूरा विश्वास नहीं करता और न उनसे कभी अपने मन का विषय खोलकर कहता था। अपनी बुद्धि की दूरन्दर्शिता के बल पर वह सभों को कठपुतली की भाँति नचाता था, और सारे देश में शासन करता था। जिस प्रकार शेष भगवान् पृथ्वी के धारण करने में विश्राम अथवा किसी की सहायता नहीं लेते, इसी प्रकार औरङ्गज़ेब अपने मानसिक बल द्वारा सारे साम्राज्य के शासनकार्य्य में किसी की सहायता नहीं चाहता था।

औरङ्गज़ेब बहुत देर से बैठा है। इतने में एक सैनिक ने आकर "तसलीम" के बाद कहा, "जहाँपनाह! आक़िल दानिश-मन्द आपका न्याज़ हासिल किया चाहता है।"

बादशाह ने दानिशमन्द को अन्दर बुलाने का हुक्म दिया और स्वयम् चिन्तावस्था को त्यागकर हँसमुख बन गया।

दानिशमन्द न तो औरङ्गज़ेब का मन्त्री था और न राज-कार्य्य में परामर्श देने का साहस करता था, परन्तु वह फ़ार्सी और अरबी का असाधारण पण्डित था। इसलिए सम्राट् उसकी बड़ी इज़्ज़त करता था और बात ही बात में कुछ पूछ भी लेता था, उदारचेता दानिशमन्द प्रायः उदारही परामर्श दिया करता था। जब औरङ्गज़ेब ने अपने बड़े भाई दारा को क़ैद कर लिया था तब दानिशमन्द ने उसके प्राण की रक्षा ही का परामर्श दिया था। परन्तु यह विषय औरङ्गज़ेब के मन को अच्छा नहीं लगा था और दानिशमन्द को "कमअक़्ल" का ख़िताब दिया था, परन्तु उसकी विद्या की सदैव प्रशंसा किया करता था। आज भी सरलस्वभाव दानिशमन्द (औरङ्गज़ेब के कम-अक़्ल) बादशाह को एक ज़रूरी बात बताने आये हैं।

दानिशमन्द—"इस वक़्त यहाँ आने की जो मैंने गुस्ताख़ी की है जहाँपनाह उसे मुआफ़ करेंगे—क्योंकि यह वक़्त हुज़ूर आला के आराम करने का है। मगर आपकी इनायत की उम्मीद पर यहाँ चला ही आया हूँ।

बादशाह ने हँसकर कहा, "दानिशमन्द! दीगरों के नज़दीक ख़ाह यह रास्त हो वले आप इज़्ज़त के क़ाबिल हैं।"

कुछ समय तक इसी प्रकार की मीठी मीठी बातें होती रहीं। अन्त में दानिशमन्द ने दूसरी बात छेड़कर कहा—'जहाँपनाह! आपने "आलमगीर" नाम को बामानी कर दिया। वाक़ई हिन्दुस्तान अब आपके ताबा है। उसके तसख़ीर में अब तवुक्कुफ़ नहीं।'

ज़रा खिलखिला कर औरङ्गज़ेब ने कहा—"क्यों, आपने किस ख़ास उम्र पर निगाह डाली है?"

दानिशमन्द—"जुनूबी बाग़ी अब तो आपके तावे है।"

औरङ्गज़ेब—"क्या शिवाजी की बात कहते हो? अब तो हिन्दू फँस गये।"

दानिशमन्द को अपने मन के भाव न समझ लेने के लिए औरङ्गज़ेब ने बात को बदल कर कहा—"दानिशमन्द! आप तो मेरे मक़सद को जानते ही होंगे कि मुल्क के बड़े बड़े सरदारों की इज्ज़त करने में अपना उसूल समझता हूँ। शिवाजी चालाक और बाग़ी है। लेकिन जवाँमर्द भी है, इसीलिए उसे दिल्ली में बुलाया है और एक दिन उसे दर्बार में बुलाकर बड़ी इज्ज़तकेसा थ? उसे वापस करूँगा, परन्तु वह ऐसा बेवक़ूफ़ है कि दरबार ही में उसने गुस्ताख़ी की, गो उसको मैंने क़ैद कर लिया है मगर उसके क़त्ल करने में मैं बिलकुल ख़िलाफ़ हूँ। इसीलिए दूसरी कोई सख़ सज़ा न देकर सिर्फ़ उसे दरबार में आने से रोक दिया है। अब भी सुन रहा हूँ कि वह दिल्ली के संन्यासियों और बाग़ियों से मशविरा कर रहा है—जिसमें कोई नुक़सान न हो। इसीलिए शहर के कोतवाल को हिदायत कर दी है कि वे उसकी ख़ास निगरानी रक्खें। कुछ दिनों के बाद मैं उसे इज्ज़त के साथ रुख़सत कर दूँगा।"

दानिशमन्द बादशाह की इन बातों को सुन कर बड़ा खुश हो गया।

औरङ्गज़ेब—"क्यों?"

उदारचेता दानिशमन्द ने कहा—"मैं बादशाह को सलाह देने के लायक़ कहाँ, मगर जहाँपनाह ! अगर शिवाजी के साथ रहम न किया गया और वह हमेशा के लिए क़ैद रक्खा गया तो लोगों को कहने का बड़ा मौक़ा होगा कि शिवाजी को बुला कर बेइन्साफ़ी के साथ उसे क़ैद कर लिया।"

औरङ्गज़ेब ने हँसी में अपने ग़ुस्से को छिपा लिया और कहा—"दानिशमन्द ! ख़राब लोगों के कहने से औरङ्गज़ेब का कोई हर्ज नहीं है। उनकी अच्छी बातों की बदौलत मैंने तख़्त नहीं हासिल किया है। हाँ ब नज़र इन्साफ़ उसे तम्बीह करूँगा। फिर उसकी इज़्ज़त की जायगी।"

दानिशमन्द—"ख़ुदावन्द के जद्द अमजद शाहंशाह अकबर इसी ख़ुशख़ुल्क़ी की बदौलत मुल्कों पर हुकूमत करते रहे और इसी हिकमत अमली से आपका भी नाम आलमगीर होगा।"

औरङ्गज़ेब—"भला किस प्रकार ?"

दानिशमन्द—"बादशाह से कोई बात छिपी नहीं है। देखिए न अकबरशाह ने जब दिल्ली के तख़्त को हासिल किया था उस ज़माने में सारी सल्तनत बाग़ियों से पुर थी; राजपूताना, बिहार, दकन और सभी मुक़ामों पर बाग़ियों का ज़ोर था। हालाँ कि दिल्ली का क़ुर्बजवार भी बाग़ियों से मुबर्रा न था। लेकिन उनके आख़िरी ज़माने में सारी बादशाहत बाग़ियों से पाक हो गई थी। हालाँ कि जो अवायल में सख़्त दुश्मन था वही राजपूत बादशाह का फ़रमाबर्दार बन गया और काबुल

से लेकर बङ्गाल तक दिल्ली के बादशाह के अलम के नीचे कर दिया। क्या फ़तह ताक़ते-बाज़ू ही पर मुनहसिर है? या सिर्फ़ हिम्मत पर? तैमूर के ख़ानदान में कोई शख़्स ताक़ते-बाज़ू और हिम्मत से ख़ाली नहीं था, मगर किसीने इस तरह की नसरत हासिल क्यों नहीं की? ख़ुदावन्द! यह सिर्फ़ शराफ़त का समरा था। अकबर ने दुश्मनों के साथ रहम किया, तावे हिन्दुओं पर इनायात कीं और उनका एत्वार किया; इस तरह हिन्दुओं ने भी अपने को फ़रमाँवरदार ज़ाहिर करने की कोशिशें कीं। मानसिंह टोडरमल, बीरबर वग़ैरह ने हिन्दू हो कर भी मुसलमानी सलतनत को वसअत दी। अच्छे आदमियों पर भी इत्मीनान न रखने से वह ख़राब हो जाता है। ख़राब काफ़िरों के साथ नेक वर्ताव करने से वह आहिस्ता आहिस्ता नेक बन जाता है। ये कुदरती क़वानीन हैं। हमारे दकन के मुहिम्म में शिवाजी ने बड़ी मदद दी है, जहाँपनाह! इसलिए उसकी इज़्ज़त करने से वह ज़िन्दगी भर मुग़ल सलतनत का एक रुक्न बना रहेगा।

हमारे पाठकगण समझ गये होंगे कि दानिशमन्द किस प्रयोजन को लेकर औरङ्गज़ेब से मिलने आया था। शिवाजी को बुलाकर दिल्ली में क़ैद करने से जितने ज्ञानी और सदाचारी मुसलमान सभासद् थे वे सब लज्जित हो गये थे। औरङ्गज़ेब दानिशमन्द की इज़्ज़त करता था, इसीलिए उसने बात बात में ही बादशाह का मन्द उद्देश उसको जता देने का साहस किया था और उसकी यह आन्तरिक इच्छा थी कि बादशाह शिवाजी का समादर करके उसे छोड़ दें। मगर दानिशमन्द को इसकी कहाँ ख़बर थी कि चाहे हाथ से पहाड़ उठा लिया जाय परन्तु औरङ्गज़ेब को अपने गम्भीर उद्देशों से विचलित करना असम्भव है।

दानिशमन्द की उदार और सारगर्भित कथा औरङ्ग़ज़ेब के मनोगत न हुई। उसने ज़ोर से हँस कर कहा—"हाँ, दानिशमन्द क्या कहना है। तुम बड़े अक़्लमन्द हो। दखिन में ता शिवाजी रुक रहे। राजपूताने में बाग़ियों ने पहले ही से मीनार खड़ी कर रक्खी है। कश्मीर फिर ख़ुदमुख़्तार कर दिया और बङ्गाल में पठानों को इज़्ज़त के साथ फिर बुला लिया जाय बस फिर क्या इन्हीं चार रुक़्नों पर मुग़ल सल्तनत ख़ूब मज़बूत हो जायगी!"

दानिशमन्द का मुख रक्तवर्ण होगया। उसने धीरे धीरे कहा—"आपके बाप मेरी इज़्ज़त करते थे। आप भी मेहरबानी रखते हैं। इसीलिए कभी कभी मन की बात कह देता हूँ, वरना मुझ में जहाँपनाह को सलाह देनी की क़ाबलियत कहाँ!"

औरङ्ग़ज़ेब ने दानिशमन्द को निर्बोध, सरल-व्यक्ति जानकर भी उसकी इस सरलता को बुरा नहीं समझा। जब उसको यह मालूम हुआ कि दानिशमन्द को दुःख हुआ है तब उसने कहा—"दानिशमन्द! हमारी बातों से नाराज़ न होना। अकबरशाह अक़्लमन्द थे, इसमें कोई शक नहीं, लेकिन उन्होंने काफ़िरों और मुसलमानों को एक ही नज़र से देखा जिससे मज़हब की तौहीन हुई? एक और बात है जिसको हम रोज़ रोज़ देखते हैं कि जिस तरह अपने हाथ से काम अच्छा बनता है उस तरह दूसरों से कराने से बेहतर नहीं होता? जब ख़ुद सारी बादशाहत का इन्तिज़ाम कर सकता हूँ तो फिर काफ़िरों से मदद लेने की क्या ज़रूरत? औरङ्गजेब लड़कपन ही से अपनी तलवार पर भरोसा करता है और उसीकी बदौलत तख़्त हासिल किया है। अब उसीके ज़रिये से तख़्त क़ायम रक्खूँगा।

हम किसीकी सहायता नहीं चाहते और न किसी का विश्वास करते हैं।"

दानिशमन्द—"जहाँपनाह, अपने हाथ से रोज़ाना काम किया जा सकता है, परन्तु इतनी बड़ी बादशाहत का इन्तिज़ाम करना बिला मदद लिए मुशकिल है। क्या बङ्गाल, दक्खिन और काबुल हर जगह आप वर्त्तमान रहेंगे? बिला किसी के मुक़र्रर किये कैसे मुमकिन है?"

औरङ्ग़ज़ेब—"ज़रूर किसी दोस्त को मुक़र्रर करना पड़ेगा, परन्तु ऐसे नौकर नौकर की भाँति रहेंगे, नकि मालिक बनकर। आज हम जिसको ज़्यादा अख़्तियार दे दें कल वही यदि बरख़िलाफ़ हो जाय; अथवा आज जिसका अधिक विश्वास किया जाता है वही कल विश्वासघात कर सकता है—इस लिए क्षमता और विश्वास दूसरे के हाथ में न देकर स्वयम् उसका अधिकारी होना चाहिए। दानिशमन्द! जिस तरह तुम घोड़े पर चढ़कर उसकी लगाम अपने हाथ में लेते ही मनमाना जिधर चाहो घुमा सकते हो—यही हालत सलतनत की है और बादशाह को इसी प्रकार अपना प्रबन्ध करना चाहिए। न तो किसी को ज़्यादे अख़्तियार देना चाहिए और न किसी सेनापति के सम्पूर्ण वशीभूत रहना चाहिए।

दानिशमन्द—"प्रभु! आदमी घोड़ा नहीं है। ख़ुदावन्द ने आदमी को अक़्ल दी है। वे अपने फ़रायज़ से वाक़फ़ियत रखते हैं।

औरङ्ग़ज़ेब—"यह मैं भी जानता हूँ कि आदमी घोड़ा नहीं है। नहीं तो चाबुक से न काम लिया जाता। इसीलिए तो

वह अक़्ल से चलाया जाता है। जो अच्छा काम करता है उसे इनआम दिया जाता है और बुरा काम करने वाला सज़ा पाता है, इसीलिए आदमी इनआम की ख़्वाहिश और सज़ा के डर से तमाम काम करता है। औरङ्गज़ेब इन सब को इसीलिए अपने हाथ में रक्खेगा।

दानिशमन्द—"हज़ूर! इनआम और सज़ा का असर लोगों के दिलों पर मुख़्तलिफ़ तौर पर होता है। आदमियों में गुण है, कोई साहसी होता है, और वह अपनी इज्ज़त चाहता है; लेकिन जो शख़्स महज़ सज़ा के डर से काम करता है वह ठीक नहीं। हाँ, जिसकी आप इज्ज़त करते हैं, विश्वास करते हैं, वह आपके इन आदरों के तावा होकर अपने मालिक का काम सच्चे मन से करता है। इसकी सैकड़ों मिसालें मौजूद हैं।

औरङ्गज़ेब—"दानिशमन्द! हम तुम्हारी तरह आलिम नहीं हैं। शाइरी में जो कुछ बयान है हम उसका यक़ीन नहीं करते। हाँ, आदमियों की ख़सलत ही हमारा शास्त्र है। हमने उनकी ख़सलतों को ख़ूब देखा है। बदमाशी, धूर्तता, शरारत, एहसान-फ़रामोशी को ख़ूब समझ लिया है। इसीलिए काफ़िरों के ऊपर जिज़िया लगा दिया है। बाग़ी राजपूतों को सख़्ती के साथ नज़र में रक्खा है। महाराष्ट्रियों को दुश्मनी का मज़ा चखा देंगे। विजयपुर और गोलकुन्डा को अपनी सलतनत में मिला लेंगे। फिर हिमालय से रासकुमारी तक बिला शिरकते ग़ैरी बादशाहत करके "आलमगीर" को इस्म बा मुसम्मा कर देंगे।

मारे उत्साह के बादशाह की आँखें उजली हो गईं। उसने अभी तक अपने मन के गम्भीर भाव को किसी पर प्रकाशित

नहीं किया था, परन्तु आज बात ही बात में हठात् बहुत सी बातें प्रकट हो गईं। वह दानिशमन्द के उदार चरित्र को जानता था। इसीलिए उसने उससे दो एक बात बता देने में कोई हानि नहीं समझी।

थोड़ी देर के बाद औरङ्ग़ज़ेब ने ज़ोर से हँसकर कहा—"ऐ सादालौह भाई! आज आपने हमारे मक़सद और ख़यालात को कुछ कुछ समझ लिया है?"

इसी प्रकार कथनोप-कथन हो रहा था कि एक सैनिक ने आकर संवाद दिया—"रामसिंह जहाँपनाह से मुलाक़ात किया चाहते हैं। दरवाज़े पर खड़े हैं।

बादशाह ने कहा—"आने दो"

थोड़ी देर के पश्चात् राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह औरङ्ग़ज़ेब के सामने आकर खड़े हो गये।

रामसिंह—"यद्यपि इस समय आपसे साक्षात् करना उचित नहीं था, परन्तु पिताजी के निकट से बहुत बड़ी ख़बर आई है। उसी को सुनाने आया हूँ।"

औरङ्ग़ज़ेब—"आपके पिता के पास से आज ही हमको भी एक ख़त मिला है—जिससे सब बातें मालूम हुईं हैं।

रामसिंह—"फिर आप जानते ही हैं कि पिताजी ने समस्त शत्रुओं को पराजित करके उनकी राजधानी विजयपुर पर आक्रमण किया है—परन्तु अपने पास सेना के कम होने से नगर तक भी प्रवेश करना असम्भव है, क्योंकि गोलकुण्डे के

सुलतान ने विजयपुर की सहायता की है और उसका नेकनामख़ाँ सेनापति अपनी बहुसंख्यक सेना को लेकर पहुँच गया है।"

औरङ्गज़ेब—"सब मालूम है।"

रामसिंह—"चारों ओर शत्रुओं से घिरे रहने पर भी पिताजी ने आपके आदेशानुसार अभी तक लड़ाई बन्द नहीं की है। परन्तु युद्ध में जयलाभ असम्भव है इसीलिए आपसे थोड़ी सी सेना की सहायता माँग भेजी है।"

औरङ्गज़ेब—"आपके पिता बड़े वीर हैं। क्या वे अपनी फ़ौज से विजयपुर नहीं जीत सकते?"

रामसिंह—"मनुष्य के निकट जो कुछ साध्य है, पिताजी ने भी वही किया। शिवाजी अभी तक किसी से परास्त नहीं हुए थे। विजयपुर पर अभी तक किसी ने आक्रमण नहीं किया था। यह सब पिताजी के बाहुबल का फल है। वे आपसे अल्पमात्र सैन्य की सहायता चाहते हैं। सारे दक्षिण में मुग़लों का साम्राज्य स्थापित करने की उनकी प्रबल इच्छा है। वह पूर्ण करनी चाहिए।

ऐसी अवस्था में यदि कोई दूसरा बादशाह होता तो अवश्य सहायता पहुँचाकर दाक्षिणात्य देश के विजय-कार्य्य को सिद्ध करता। परन्तु औरङ्गज़ेब अपने को बड़ा दूरदर्शी और तीक्ष्ण बुद्धि समझता था इसीलिए उसने सहायता नहीं पहुँचाई, किन्तु कहने लगा—"रामसिंह! आपके पिता हमारे सुहृद् हैं।

उनके कष्ट को सुनकर हमें बड़ा दुःख हुआ। हम ख़त में लिख रहे हैं कि आप अपने असाधारण बाहुबल से अवश्य जयलाभ करेंगे। शोक है कि दिल्ली में सेना की संख्या बड़ी न्यून है। हम सहायता पहुँचाने में असमर्थ हैं।"

रामसिंह ने कातर स्वर में कहा—"जहाँपनाह ! हमारे पिता दिल्ली के पुराने नौकर हैं। आपके सामने और आपके पिता की ओर से उन्होंने सैकड़ों लड़ाइयों में जी जान खपाया है। आज उन्हें सङ्कट पड़ा है। आपको अवश्य सहायता देनी चाहिए। यदि आप सहायता न देंगे तो जयसिंह के ससैन्य बच कर लौट आने की आशा नहीं है।"

बालक रामसिंह को इस बात की कहाँ ख़बर थी कि औरङ्ग-ज़ब इस कातर स्वर से अपने गम्भीर उद्देश्य और गूढ़मन्त्रणा से विचलित नहीं हो सकता? राना जयसिंह अतिशय क्षमताशाली प्रतापान्वित सेनापति थे। उन्होंने अपनी असंख्य सेना, विस्तीर्ण यश, अनन्त प्रताप द्वारा आजीवन दिल्लीश्वर का कार्य्य किया। परन्तु इतनी क्षमता किसी दूसरे सेनापति को प्राप्त नहीं थी। इसी कारण औरङ्गज़ेब जयसिंह का विश्वास नहीं करता था। अतः उसने निश्चय कर लिया था कि यदि वह इस युद्ध में यशोलाभ न कर सके तो उनके प्रताप और यश में कुछ ह्रास हो जायगा और यदि ससैन्य विजयपुर की लड़ाई में मारा जायगा तो मानो एक पाप कटा। जिस प्रकार व्याधों के जाल से पक्षियों का बचना दुस्तर हो जाता है उसी प्रकार आज औरङ्गज़ेब के कपट और अविश्वास के जाल में महा-राजा जयसिंह फँसे हैं। बचना कठिन है।

जयसिंह ने बहुत काल से दिल्लीश्वर का कार्य्य प्राण पण से किया है इसीलिए उनका इस सूक्ष्ममन्त्रणा जाल से बचकर निकलना आज व्यर्थ है।

जयसिंह का उदारचित्त पुत्र सम्मुख खड़ा रो रहा है। परन्तु क्या दूरदर्शी औरङ्गज़ेब अपने उद्देश को त्याग सकता है? माया, सुकुमारता, और शीलता के लिए औरङ्गज़ेब के हृदय में स्थान नहीं था। आत्मपथ के परिष्कारार्थ आज एक कंटक को फेंक बहाया है। कल ही एक अपने सहोदर का वध किया है। एक दिन पिता, भ्राता, भतीजा और अन्य आत्मीयवर्ग उसी पथ में पड़ गये थे। धीरे धीरे उन सभों को साफ़ किया था। पिता को मोहवश नहीं जीवित रक्खा था और न भाई की क्रोधवश हत्या की थी। यह सब लड़कों का खेल भी नहीं था। पिता के जीवित रहने में भविष्य में विपद् की सम्भावना नहीं थी, क्योंकि अपने उद्देश्य-साधन में कोई बाधा न पड़े तो कोई भी जीवित रहो, हानि ही क्या है? बड़े भाई के जीवित रहने में उद्देश्य साधन में बाधा पड़ती, इसलिए आलिमों से फ़तवा लेकर उसे जल्लाद के हवाले कर दिया था।

आज मन्त्रणा-साधनार्थ जयसिंह को ससैन्य हत होने की आवश्यकता है। इसलिए चाहे वे बुरे हों या भले, विश्वासी हों अथवा अविश्वासी, इसके अनुसंधान की आवश्यकता नहीं। उन्हें ससैन्य मरना ही चाहिए। इस परिच्छेद की घटना के केवल दो ही तीन मास व्यतीत होने पर यह संवाद मिला कि जयसिंह ने प्राण त्याग दिये! इसीलिए किसी किसी इतिहास-लेखक को इस विषय पर सन्देह होता है कि हो न हो औरङ्गज़ेब ही के आदेश से कहीं जयसिंह को विष न दे दिया गया हो।

अनेक क्षण के पश्चात् रामसिंह ने दीर्घ निश्वास त्याग करके कहा—"प्रभु! हमारी एक प्रार्थना है।"

औरङ्गज़ेब—"बयान करो।"

रामसिंह—"शिवाजी जब दिल्ली में आये थे तब पिताजी ने उन्हें वचन दिया था कि, दिल्ली में उन्हें किसी प्रकार की आपदा न भुगतनी पड़ेगी।"

औरङ्गज़ेब—"आपके पिता ने हम से जता दिया है।"

रामसिंह—"राजपूतों को अपने वचन से फिर जाना बड़ा निन्दनीय विषय है। पिताजी की यही प्रार्थना है और हमारी भी यही प्रार्थना है कि यदि शिवाजी ने कोई दोष भी किया हो तो प्रभु उसे क्षमा करके लौटा दीजिए।

औरङ्गज़ेब ने क्रोध को सँभालकर धीरे से कहा—"बादशाह वही काम करेगा जो उसके निकट उचित होगा। आप इसमें चिन्ता न करें।"

आज शिवाजी रूपी एक दूसरा पक्षी बादशाह के उस मन्त्रणा-जाल में फँसा है, दानिशमन्द और रामसिंह उस जाल से शिवाजी का उद्धार नहीं कर सकते।

जयसिंह और शिवाजी का एक ही प्रकार का दोष था। शिवाजी ने सन्धिस्थापन काल से प्राण-प्रण से सम्राट् का कार्य्य किया था और उनके पास असीम साहसी सेना थी इसीलिए शिवाजी की क्षमता औरङ्गज़ेब को खटकती थी।

जिसके प्रति बराबर अविश्वास किया जाता है वह धीरे धीरे अविश्वास का पात्र हो ही जाता है। औरङ्गज़ेब के जीवित काल ही में महाराष्ट्रीय और दिल्ली के चिरविश्वासी राजपूतों ने जो भयङ्कर समरानल जलाई थी उसमें मुग़ल-साम्राज्य जलकर भस्म हो गया।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

शिवाजी को अतिशय सङ्कट-जनक पीड़ा हुई, और यह बात सारी दिल्ली में फैल गई। रात दिन शिवाजी के घर की खिड़कियाँ और दरवाज़े बन्द रहते, वैद्यों की भीड़ लगी रहती। यह भीषण रोग बड़ा कठिन हो चला था। आज जैसी पीड़ा बढ़ गई है वह यदि कल तक बनी रही तो उनके जीवित रहने में सन्देह है। कभी कभी यह ख़बर उड़ जाती कि शिवाजी अब नहीं हैं। और लोग राजपथ से गुज़रते समय उँगली उठाकर उनके गवाक्ष की ओर इशारा करते, सिपाही और सवार लोग थोड़ी देर रुक कर शिवाजी का संवाद पूछते। शिविकारोही राजा और मनसबदार लोग उस स्थान पर थोड़ी देर रुक जाते और कुछ पूँछ पाँछ कर फिर आगे बढ़ते। दिल्ली में जिन लोगों का पहले पहले आना हुआ था वे इस स्थान पर पहुँचकर पूँछ ताँछ करते—"भाई! शिवाजी किस प्रकार से आये? अब वे भला किस प्रकार छूट सकते हैं। इसी तरह की बातें क्या गली क्या घर सारे शहर में चारों ओर फैल रहीं थीं। जहाँ देखो इसी की चर्चा है। औरङ्ग़ज़ेब रोज़ रोज़ शिवाजी के रोग-समाचार को मालूम करता रहता, परन्तु फिर उनके घर के चारों ओर पहरेदारों का कठिन चौकसी रहती। लोगों के सामने औरङ्गज़ेब शोक प्रकट करता, परन्तु अपने मनमें विचारा करता कि भला हुआ, यदि इसी रोग में शिवाजी मर जाय तो बेखटके बला टल जाय और लोग मुझे कुछ दोष भी न देंगे।

शाम हो गई थी कि एक बुड्ढे हकीम जी शिवाजी के घर के सामने आकर खड़े हो गये। पहरेदारों ने पूँछा—"हकीम जी! क्या आप शिवाजी से मिलना चाहते हैं?" हकीम जी ने उत्तर दिया, "बादशाह ने मुझे शिवाजी को आराम करने के लिए भेजा है, इसलिए मैं उनकी दवा करने आया हूँ।" इतना सुनते ही उन्होंने आदर के साथ दरवाज़ा छोड़ दिया।

शिवाजी शय्या पर सो रहे थे कि उसी समय एक भृत्य ने ख़बर दी कि बादशाह ने एक हकीम जी को भेजा है। तीक्ष्ण-बुद्धि शिवाजी ने उसी समय समझ लिया कि हो न हो किसी प्रकार से विष देने का यह षड्यन्त्र रचा गया है। शिवाजी ने कहा कि हकीम जी से जाकर मेरा सलाम कह दो और उन्हें यह भी समझा दो कि "हिन्दू कविराज मेरी चिकित्सा कर रहे हैं, चूँकि मैं हिन्दू हूँ अतः हिन्दू-वैद्यों के अतिरिक्त और किसी से मैं दवा कराना नहीं चाहता। बादशाह की इस कृपा पर मैं उनको सहस्रों धन्यवाद दे रहा हूँ।"

भृत्य अभी यह समाचार लेकर बाहर निकला भी नहीं था कि हकीमजी शिवाजी के कमरे में आ पहुँचे। शिवाजी का हृदय मारे क्रोध से जल उठा, परन्तु उन्होंने क्रोध के वेग को सँभाल कर क्षीण स्वर में कहा, "आइए हकीम जी! विराजिए, आपको बड़ा कष्ट हुआ। हकीम जी शय्या के पास बैठ गये।

आकृति देखने से हकीमजी पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं होता था। अवस्था अधिक होने के कारण बाल सब सुफ़ेद हो गये थे, दाढ़ी बढ़कर घुटने तक पहुँच गई थी, सिर पर लम्बी पगड़ी विराजमान थी। हकीमजी का स्वर गम्भीर और धीर था।

हकीमजी ने कहा—"महाशय! भृत्य से आपने जो आदेश दिया था। हमने उसे सुना है। आप हमारी दवा नहीं किया चाहते, तथापि मानव-जीवन की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। मैं इसे अवश्यमेव सिद्ध करूँगा।"

शिवाजी मन ही मन और भी क्रोधित हो गये और विचारने लगे—यह विपत्ति कहाँ से फट पड़ी? परन्तु प्रकट में उन्होंने कुछ कहा नहीं।

हकीमजी—"आपको कैसी पीड़ा है?"

कातर स्वर में शिवाजी ने कहा—"जानता नहीं कि यह किस प्रकार की भीषण पीड़ा है! सारा शरीर अग्निवत् जल रहा है; हृदय में बड़ी पीड़ा है और सारे शरीर में दर्द है।"

हकीमजी ने गम्भीर स्वर में कहा, "पीड़ा की अपेक्षा चिन्ता से शरीर अधिक जलता है और मानसिक क्लेश से हृदय में पीड़ा भी उत्पन्न होती है। आपको क्या यही पीड़ा तो नहीं है?" विस्मित और भीतावस्था में शिवाजी ने हकीमजी की ओर देखा, मुख उसी प्रकार गम्भीर है, और किसी प्रकार के विलक्षण भाव लक्षित नहीं होते। शिवाजी निरुत्तर हो चुप रहे। हकीमजी ने उनका शरीर और उनकी नाड़ी देखनी चाहिए। अब शिवाजी और भी डर गये, परन्तु शरीर और हाथ दिखा दिया।

बहुत देर तक सोच विचार कर हकीमजी ने कहा—"आप का वचन जिस प्रकार क्षीण है, नाड़ी वैसी दुर्बल नहीं है। धमनी में रक्त का संचार हो रहा है, पेशियाँ पूर्ववत् दृढ़ हैं। क्या यह सब आप का बहाना तो नहीं है?"

फिर शिवाजी विस्मित हो कर इस विलक्षण हकीम को देखने लगे। चिकित्सक का मुखमण्डल उसी प्रकार गम्भीर और अकम्पित है। किसी प्रकार का कपट-भाव प्रकाशित नहीं होता। शिवाजी का शरीर अब गरम होने लगा, किन्तु क्रोध को रोक कर उन्होंने फिर क्षीण स्वर में कहा—"आपने जो कहा है और भी कई चिकित्सकों ने यही बताया था। इसी कठिन पीड़ा के वाह्यलक्षण तो कोई है ही नहीं, किन्तु शरीर दिन दिन क्षीण होता जाता है और मृत्यु समीप आई हुई प्रतीत होती है।"

हकीमजी ने फिर सोच विचार कर कहा—अल्फ़लैला वलाऊन नामक हमारे यहाँ चिकित्सा के दो शास्त्र हैं। उनमें १००१ पीड़ाओं की दशा लिखी हुई है जिसमें कि असीर इशारत कर्द भी एक पीड़ा है। कैदी लोग काम न करने के लिए इस पीड़ा का बहाना करते हैं। इसकी सज़ा क़तल है। एक और दर्द का नाम दीगराँ दोज़ख़ अख़ियार कुनंदहै। इस पीड़ा के बहाने युवक नरकगामी होते हैं। इसकी दवा जूते से मारना है। तीसरी एक वाह्य-लक्षण शून्य पीड़ा है। उसका नाम ऐवहा वरगिरफ़्ता ज़ेर बग़ल है। दोषी लोग अपना दोष छिपाने के लिए इसी पीड़ा का सहारा लेते हैं। उसकी भी दवा है। वही दवा आज हम आपको देंगे।"

शिवाजी ने इन बातों को अच्छी तरह समझा नहीं, परन्तु तीक्ष्ण बुद्धि हकीम ने उसके दिल की बातें सब समझ लीं। लेकिन शिवाजी यह भी नहीं समझ पाया। चुपचाप इति-कर्तव्य विमूढ़ हो कहने लगे—"वह कौन सी दवा है?"

हकीम ने कहा—"वह एक उत्कृष्ट औषध है और उसका परिणाम भी उत्कृष्ट ही है। रब्बुलआलमीन का नाम लेकर यह दवा आप को दी जायगी। यदि यथार्थ में रोग होगा तो वह जाता रहेगा, परन्तु यदि बहाना होगा तो प्राणनाश होगा।"

शिवाजी का हृदय कम्पायमान होगया। मस्तक से दो एक बूँद स्वेद गिरने लगा। यदि औषध खाने से इन्कार किया जाता है तो भेद खुल जायगा और उसे खा लेने पर तो मृत्यु निश्चय ही है!

हकीम ने दवा तैयार की। शिवाजी ने कहा—"मुसलमान का छुआ हुआ पानी हम नहीं पीते।" शिवाजी ने इतना कहकर ज़ोर से दवा का बर्त्तन फेंक दिया—परन्तु हकीमजी इससे नाराज़ नहीं हुए, बल्कि धीरे धीरे कहने लगे—"इस प्रकार ज़ोर से हाथ चलाना क्षीणता का लक्षण नहीं कहा जाता।"

शिवाजी ने बहुत देरसे क्रोध को सँभाल रक्खा था, परन्तु अब और न सँभाल सके और ज़ोर में आकर उठ खड़े हुए और यह कहते हुए कि "रोगी को चिढ़ाने का यह मज़ा है" धड़ाम से एक चपत हकीमजी को रसीद कर सुफ़ेद दाढ़ी पकड़ ज़ोर से अपनी ओर खींच लिया। अब देखते क्या हैं कि नक़ली दाढ़ी हकीमजी के मुँह से गिर पड़ी और साफ़ चिकना सिर निकल आया। ओ हो! यह तो बाल्य सुहृद् तन्नजी मालश्री खिल-खिला कर हँस रहे हैं।

थोड़ी देर के बाद तन्नजी ने हँसी को रोक कर घर का दरवाज़ा बन्द कर लिया और शिवाजी के पास आकर कहने लगे, "प्रभु! क्या सर्वदा चिकित्सकों को इसी प्रकार का

पारितोषिक दिया करते हैं ? इससे तो रोगी के पहले चिकित्सक ही मर जायगा ! वज्र के समान आप के चपत से मेरा सिर घूम रहा है !"

शिवाजी ने हँसकर कहा—"भाई ! व्याघ्र के साथ खेलने से कभी कभी आहत भी होना पड़ता है। यही हुआ भी। परन्तु आपको देख कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। कई दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। कहिए, क्या समाचार हैं ?"

तन्नजी—"प्रभु के समस्त आदेशों का पालन कर लिया। सभों की यही इच्छा है कि स्वामी अब निरापद दिल्ली से स्वदेश को लौट आवें।"

शिवाजी—"ईश्वर को धन्यवाद है। आज आपने मुझे शान्ति प्रदान की। मैं आप के कथनानुसार भागना तो नहीं चाहता परन्तु गगनविहारी पक्षी को कौन रोक सकता है ?"

तन्नजी—"आपके समस्त अनुचर दिल्ली से निकल कर मथुरा-वृन्दावन में गोस्वामियों के वेष में स्थित हैं। मथुरा के बहुत से पुजारी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमने दिल्ली से मथुरा के मार्ग को अच्छी तरह शोध लिया है। जहाँ जहाँ जिनके रहने की आवश्यकता थी वहाँ वहाँ वे आगये हैं।"

शिवाजी—"चिरवन्धु ! जैसे आप कार्य्यदक्ष हैं उससे हमें आशा है कि अवश्य ही हम यहाँ से स्वदेश को लौट जायँगे।"

तन्नजी—"आपने दिल्ली के फ़सील के बाहर एक शीघ्रगामी घोड़ा रखने को कहा था उसको हमने ठीक कर दिया है और

जिस दिन के लिए आप स्थिर करें उस दिन सब ठीक कर दिया जायगा ।

शिवाजी—"बहुत अच्छा ।"

तन्नजी—"राजा जयसिंह के पुत्र राजा रामसिंह के पास मैं गया था । उनको उनके पिता के वाक्यदान का स्मरण करा दिया है । रामसिंह अपने पिता के तुल्य सत्यप्रिय और उदार-चेता हैं । मैंने सुना है कि उन्होंने स्वयम् बादशाह के पास जाकर आपके स्वदेश लौट जाने का निवेदन किया था ।"

शिवाजी—"बादशाह ने क्या कहा ?"

तन्नजी—"उन्होंने कहा था कि बादशाह को जो उचित प्रतीत होगा वही करेगा ।"

शिवाजी—"विश्वासघातक ! कपटाचारी ! अब तुम्हें इसका बदला दिया जायगा ।"

तन्नजी—"रामसिंह का वह उद्योग यद्यपि निष्फल हुआ है तथापि रोष के साथ उन्होंने कहा है कि राजपूतों के वाक्य झूँठे नहीं होते । अर्थद्वारा, सैन्यद्वारा, चाहे जिस प्रकार से हो, आपकी सहायता करूँगा । इसमें प्राण तक देने को उप-स्थित हूँ ।"

शिवाजी—"वे पिता के उपयुक्त पुत्र हैं । परन्तु हम उन्हें विपद्-ग्रस्त नहीं करना चाहते । हमने जिस प्रकार निकलने का विचार किया है क्या आपने उन्हें वह विषय समझा दिया है ?"

तन्नजी—"हाँ, बता दिया है । उसे जान कर वे बड़े सन्तुष्ट हुए हैं और कहा है कि हम आपके सब कार्य्यों में सहायक रहेंगे ।"

शिवाजी—"बहुत अच्छा।"

तन्नजी—"उन्होंने दानिशमन्द प्रभृति औरङ्गज़ेब के ख़ास ख़ास सभासदों को भी अर्थद्वारा अपने पक्ष में कर लिया है। दिल्ली का क्या हिन्दू क्या मुसलमान ऐसा कोई भी बड़ा आदमी नहीं है जो आपके पक्ष का समर्थन न करता हो, परन्तु औरङ्ग-ज़ेब किसी के परामर्श को ग्रहण नहीं करता।"

शिवाजी—"तो सब ठीक है न? हम आरोग्य लाभ कर सकते हैं न?"

तन्नजी ने सहास्य कहा—"जब हमारे जैसे चतुर हकीम ने आपकी पीड़ा की चिकित्सा करना प्रारम्भ किया है तब आरोग्यलाभ करने में क्या सन्देह? परन्तु आपके पीने के लिए जो सुन्दर मिष्ट शरबत बनाया गया था उसे तो आपने सब नष्ट कर डाला?"

शिवाजी—"भाई फिर उसी पात्र में बना न लो। तन्नजी ने उसी बर्तन को उठाकर फिर शरबत तैयार किया। शिवाजी ने उसे पी कर कहा—"चिकित्सक! आपकी औषध जिस प्रकार मीठी है उसी प्रकार गुणकारी भी है। हमारी पीड़ा तो एकबार में ही जाती रही!"

शिवाजी को सस्नेह आलिङ्गन करके फिर उसी नक़ली पगड़ी और दाढ़ी को लगा तन्नजी वहाँ से बाहर निकल आये।

द्वार पर खड़े हुए प्रहरी ने पूँछा—"आपने पीड़ा कैसी देखी है?"

हकीमजी ने उत्तर दिया, "पीड़ा बड़ी कष्टकारक थी, परन्तु हमारी अव्यर्थ औषध ने बहुत कुछ लाभ पहुँचाया है।

ऐसा मालूम होता है कि शिवाजी इस क्लेश से शीघ्र ही आरोग्य लाभ करेंगे।"

हकीमजी शिविका में बैठकर चलते बने। एक प्रहरी ने दूसरे प्रहरी से कहा—"हकीम बड़ा बुद्धिमान् प्रतीत होता है। आज तक जिस पीड़ा को किसी दूसरे ने समझा तक भी नहीं हकीमजी ने उसे एक ही दिन में किस प्रकार ठीक कर लिया?"

दूसरे प्रहरी ने कहा—"भला क्यों न हो, ये तो बादशाही महलों के हकीमजी हैं न?'

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

ऊपर की घटना के कई दिन बाद दिल्ली शहर में यह संवाद फैल गया कि शिवाजी की पीड़ा कुछ कम हो गई है। शहर में फिर धूम-धाम मच गई और सब के मुँह से यही बात सुनी जाने लगी। हिन्दू मात्र को इस बात के सुनने से आनन्द प्राप्त होता और सज्जन मुसलमानों को भी सुनकर सुख प्राप्त हुआ। लोग चलते, फिरते, दूकान, हाट, बाट अर्थात् सभी स्थानों पर इसी की बातचीत करते। औरङ्गज़ेब ने भी इस समाचार को सुनकर प्रकाश रूप में सन्तोष प्रकाशित किया।

शिवाजी ने आराम होते ही ब्राह्मणों को दान देना प्रारम्भ कर दिया और देवालयों में पूजा भेजनी जारी करदी, चिकित्सकों को अर्थदान से प्रसन्न कर लिया। शिवाजी ने इतनी अधिकता के साथ मिठाइयाँ वँटवाईं कि सारे दिल्ली शहर में मिष्ठान्न का अभाव सा होगया। जितने जान पहचान के भद्र लोग थे सभी का मिठाइयों से सत्कार किया गया एवम् मसजिद में और फ़क़ीरों के घरों में भी मिठाइयाँ वँटवाई गईं। बादशाह के दिल में चाहे जो बात रही हो; परन्तु दिल्ली के समस्त सज्जन शिवाजी के इस आचरण की प्रशंसा किये बिना न रह सके। सारांश यह कि दिल्ली में लड्डुओं की वर्षा हो गई। हम नहीं कह सकते कि इस वर्षा से किसी की कुछ हानि भी हुई या नहीं? परन्तु औरङ्गज़ेब के मनोगत भवन की नीव हिलगई और उसे पछताना पड़ा।

शिवाजी केवल मिठाइयाँ बटवा करही संतुष्ट न हुए, किन्तु मिठाइयाँ ख़रीद ख़रीद कर वे बड़े बड़े भावों में ख़ुदही सजाते और उसे बँटवाते थे। कभी कभी इन भावों की ऊँचाई ३ या ४ हाथ की हुआ करती और ८ या १० कहार उसे उठाकर बाहर लेजाते। कई दिनों तक इसी प्रकार मिठाइयाँ बँटती रहीं।

सन्ध्या होगई है। आज भी मिठाइयों के दो झावे जिनको दस दस कहार उठाये हुये हैं शिवाजी के प्रासाद से बाहर निकाले गये हैं। पहरेदारों ने इतने बड़े झावों को देखकर पूछा—"ये किसके घर जायँगे?" लेजानेवालों ने उत्तर दिया—"राजा जयसिंह के महल में।"

पहरेदार—"तुम्हारे प्रभु और कब तक इस प्रकार मिष्टान्न बाँटते रहेंगे?"

वाहकगण—"बस, आज ही भर।"

झावों को उठाये हुए कहार चले गये।

बहुत दूर चलने के पश्चात् एक गुप्त स्थान में कहारों ने इन दोनों झावों को उतारा। सन्ध्या की अँधियारी अच्छी तरह छागई है। कहार चारों ओर देखने लगे। कहीं कोई चिड़िया का पूत भी दीख नहीं पड़ता। हाँ रह रह कर वायु अलबत्ता चल रहा है। कहारों ने झावों को खोल डाला। एक में से शिवाजी और दूसरे में से शम्भुजी बाहर निकल आये। दोनों ने जगदीश्वर की वन्दना की।

बहुत ही शीघ्र दोनों छद्मवेश धारण कर दिल्ली की प्राचीर की ओर बढ़ने लगे। सन्ध्या हो जाने के कारण राजपथ पर भीड़ नहीं है, फिर भी एक दो मनुष्यों का आना जाना लगा हुआ है शम्भुजी जब किसी पथिक को अपने पास से निकलते हुए

देखते हैं, उनका हृदय धक् धक् करने लगता है। शिवाजी तो ऐसी आपदाओं को कई बार भुगत चुके हैं। अतः उनके निकट यह विपत्ति कुछ चीज़ नहीं है, परन्तु उनका हृदय भी उद्वेग शून्य न था।

दोनों ने कम्पित हृदयावस्था में प्राचीर को पार किया। हाँ, एक पहरेदार ने पूछा भी "कौन जाता है?"

शिवाजी ने उत्तर दिया—"गोस्वामी। हरेर्नाम, हरेर्नाम, हरेर्नामैव केवलम्!"

पहरेदार—"कहाँ जाओगे?"

शिवाजी—"तीर्थस्थान श्रीमथुरा-वृन्दावन। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।"

दोनों प्राचीर से पार हो गये।

प्राचीर के बाहर भी अनेक धनाढ्य और उच्च पदाधिकारियों की कोठियाँ बनी हुई थीं और वे लोग उसमें वास करते थे। इसलिए शिवाजी और शम्भुजी दोनों ने किनारों से होकर आगे बढ़ना प्रारम्भ किया।

दूर ही से एक पेड़ के नीचे घोड़े को बँधा हुआ देखकर शिवाजी बड़ी सतर्कता के साथ उसी ओर बढ़ने लगे और वहाँ पर पहुँच कर देखते क्या हैं कि तन्नजी ने जैसा बताया था वही घोड़ा बँधा हुआ है। पास पहुँचकर शिवाजी ने पूछा—"भाई अश्वरक्षक! तुम्हारा नाम क्या है?"

रक्षक—"जानकीनाथ।"

शिवाजी—"जाओगे कहाँ?"

रक्षक—"मथुरा।"

शिवाजी ने कहा—"हाँ, यही अश्व है।"

शिवाजी घोड़े पर चढ़ गये और पीछे से शम्भुजी को बैठा लिया, फिर मथुरा की ओर चल खड़े हुए। पीछे पीछे अश्व-रक्षक भी भागता हुआ चलने लगा।

अँधेरी रात में शिवाजी गाँव को छोड़ छोड़ कर चुपचाप चले जाते हैं। आकाश में तारे डबडबा रहे हैं। कभी कभी मेघ गगन को एक बारही छा लेते हैं। भादों की रात है। यमुनाजी उमड़ी हुई बह रही हैं, मार्ग, घाट, कीचड़ और जल से भर रहे हैं और शिवाजी उद्वेगपूर्ण अवस्था में भगे हुए चले जा रहे हैं।

दूर ही से कुछ घोड़ों की टाप सुन पड़ी! शिवाजी छिपने की चेष्टा करने लगे, परन्तु वहाँ वृक्ष अथवा कुटी नहीं है। अतः पूर्ववत् आगे बढ़ना ही ठीक किया।

तीन सवार दिल्ली की ओर घोड़ा बढ़ाये चले आ रहे हैं। उनके पास लड़ाई के सब सामान ठीक हैं। जब उन्होंने दूर ही से शिवाजी के घोड़े को देखा तब उसी ओर आप भी बढ़ने लगे। अब शिवाजी के हृदय पर कुछ कुछ उद्वेग का प्रकाश होने लगा। परन्तु सवार अब निकट ही पहुँच गये और एक ने पूछा भी—"कौन जाता है?"

शिवाजी—"गोस्वामी।"

अश्वारोही—"कहाँ से आते हो?"

शिवाजी—"दिल्ली नगरी से।"

अश्वारोही—"हम भी दिल्ली जायँगे, परन्तु मार्ग भूल गये हैं। अतः हमारे साथ चलकर रास्ता दिखा आओ, फिर तुम मथुरा चले जाना।"

शिवाजी के मस्तक पर मानो वज्र टूट पड़ा। दिल्ली जाने से अस्वीकार करने में अश्वारोही ज़बर्दस्ती करेंगे, और विवाद करने से पहचाने जाने का भय है, क्योंकि दिल्ली का कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो शिवाजी को पहचानता न हो। दिल्ली लौटने में तो हज़ार बखेड़े हैं। शिवाजी इसी विषय में इति कर्त्तव्यविमूढ़ हो चिन्ता करने लगे।

केवल एक ही अश्वारोही ने सामने आकर वार्त्तालाप किया था। शेष दो स्पष्ट स्वरमें परामर्श करते थे। वह परामर्श क्या था ?

एक ने कहा—"इस सवार को मैं जानता हूँ, एक दिन जब शाइस्ताख़ाँ की मातहती में लड़ाई कर रहा था इसे देखा था। मैं ठीक ठीक कहता हूँ। यह गोस्वामी नहीं है।"

दूसरे ने कहा—"फिर कौन है ?"

पहला—मेरा ऐसा विश्वास है कि यह स्वयम् शिवाजी है। क्योंकि दो मनुष्यों का कंठ स्वर ठीक एक सा नहीं होता।

दूसरा—"धत् मूर्ख ! शिवाजी तो दिल्ली में क़ैद है।"

पहला—"यही मैंने भी विचार किया था कि शिवाजी सिंहगढ़ दुर्ग में छिपा है, परन्तु सहसा उसने एकही रात में पूना का ध्वंस कर डाला।"

दूसरा—"अच्छा, सिर के कपड़े को हटाकर देखने ही से पता चल जायगा।"

सहसा एक अश्वारोही ने पास पहुँचकर शिवाजी की पगड़ी को अलग फेंक दिया। शिवाजी ने उसे पहचान लिया कि यह तो शाइस्ताख़ाँ का एक प्रधान सैनिक है।

यदि हाथ में कोई अस्त्र होता तो शिवाजी अकेले तीनों को मारने की चेष्टा करते परन्तु शस्त्रहीन होते हुए भी शिवाजी ने एक सवार को मुक्के से अचेत कर डाला। शेष अब दोनों अश्वारोहियों ने तलवार निकालकर शिवाजी को भूमि पर पटक दिया।

शिवाजी इष्टदेव का स्मरण करने लगे। वे मन में सोचने लगे कि अब फिर बन्दी होकर विदेश में औरङ्गज़ेब के हाथों से मारा जाऊँगा। वे यही विचार कर रहे थे कि शम्भुजी को ओर देखकर आँखों में जल भर आया।

सहसा एक शब्द हुआ। शिवाजी ने देखा कि एक अश्वारोही तीर से विँधकर भूतलशायी हो गया है। फिर एक तीर; और एक दूसरा तीर; से क्रमशः तीनों अश्वारोही शत्रु-भूतलशायी ! होकर मर गये।

शिवाजी परमेश्वर को धन्यवाद देकर उठ खड़े हुए, देखते क्या हैं कि पीछे से उसी अश्वरक्षक जानकीनाथ ने तीर चलाये थे। विस्मित होकर शिवाजी उसको जीवन रक्षार्थ सैकड़ों धन्यवाद देने लगे। जब अश्वरक्षक पास पहुँच गया तब शिवाजी को और भी विस्मय हुआ कि यह तो सीतापति गोस्वामी हैं !

अब सहस्रबार क्षमा की प्रार्थना करके शिवाजी ने कहा—"सीतापति ! आपके अतिरिक्त असली बन्धु शिवाजी का और कोई नहीं है? आपको अश्वरक्षक समझ कर मैंने आपका विशेष आदर नहीं किया था। क्षमा कीजिए। क्या मैं आपके इस उपयुक्त कार्य्य का पुरस्कार दे सकता हूँ?"

सीतापति ने शिवाजी के सम्मुख घुटने टेक हाथ जोड़कर कहा—"राजन् ! इस छद्मवेश धारण करने के लिए मुझे आप

क्षमा करें। मैं न तो अश्वरक्षक हूँ और न गोस्वामी, किन्तु मैं आपका पुराना भृत्य रघुनाथजी हवलदार हूँ ! आप जानते हैं कि मैंने आपकी सेवा की है और आजन्म आपकी सेवा में तत्पर रहूँगा। इसके सिवा मेरी और कोई कामना नहीं है और न इसके अतिरिक्त कोई पुरस्कार चाहता हूँ। यदि भूल चूक में कोई दोष हो गया हो तो इस निराश्रय को आश्रय दीजिए और क्षमा कीजिए।"

शिवाजी चकित होकर बालक रघुनाथ को देखने लगे। वे अपने हृदय के उद्वेग को रोक न सके। उन्होंने सजल नयन हो रघुनाथ को हृदय से लगा लिया। गद्गद् स्वरमें शिवाजी कहने लगे—"रघुनाथ! रघुनाथ! शिवाजी तुम्हारे निकट सैकड़ों दोषों का अपराधी है, परन्तु तुम्हारे महत् आचरण ने ही मुझे दण्ड दिया है। तुम्हारे ऊपर जो मैंने सन्देह किया था उसे स्मरण करके मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है। शिवाजी जब तक जीवित रहेगा तुम्हारे गुण को कभी न भूलेगा।"

शान्त निस्तब्ध रजनी में दोनों परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर आनन्दमग्न हो गये। रघुनाथ का व्रत आज समाप्त हुआ। शिवाजी की हृदय वेदना आज दूर हुई। बालकों की भाँति दोनों मिलकर आज रो रहे हैं।

उन्तीसवाँ परिच्छेद

प्रासाद में

रात में सीतापति गोस्वामी से विदा होकर राजपूतबाला अपने घर लौट आई। परन्तु घर लौटकर उसने देखा कि हृदय शून्य है! जिस स्वदेशी योद्धा के प्रथम दर्शन मात्र ही से सरयू चकित और आनन्दित हो गई थी, उसके कई महीने बाद जिसे उसने हृदयेश्वर समझा था, जिससे वृद्ध जनार्दन ने विवाह करने का वाक्यदान दे दिया था, उसी रघुनाथ के अदर्शन से आज सरयू का हृदय शून्य हो रहा है।

वह दिन गया। सप्ताह गया। मास भी बीत चला। परन्तु सरयू के प्राणाधार अभी तक लौटे नहीं। कभी कभी अँधेरी रात में बालिका अपनी खिड़की में बैठकर सन्ध्या से आधीरात बिता देती, कभी आधीरात से बैठकर दिन निकाल देती, उसी रघुनाथ की चिन्ता में निमग्न रहती। उसे यह आशा लगी रहती कि इसी मार्ग से होकर वे आते होंगे।

कभी वह अकेली दोपहर के समय आमों के बाग़ में निकल जाती। वहाँ टहलती और उसी दशा में उसे, तोरण दुर्ग की कथा, कण्ठमाल का प्रेम, रायगढ़-आगमन और वहाँ से विदा होने की बातें याद पड़ जातीं और बेचारी कुंहनियों पर गाल रख धीरे धीरे सिसका करती। कभी सोती सोती चौंक पड़ती

और भादों में बढ़ी हुई नदी के बन्द टूट जाने की भाँति प्रेम-नद में निमग्न हो जाती। अहो! कोई देखता तो उसे पता चलता कि सरयू के नयनों से श्रावण मास की वारि-वर्षा होती है। रात व्यतीत हो जाती, प्रातःकालीन रक्तिमाच्छटा पूर्व दिशा में शोभायमान हो जाती तोभी बालिका की शोक-निशा दूर नहीं होती!

प्रातःकाल फूल तोड़ने जाती। फूलों से उद्यान चैन करता हुआ मिलता, प्रफुल्ल पुष्पलता एक एक शोभायमान दीख पड़ती। उन्हें अब क्या चिन्ता है—यह कौन जान सकता है? सरयू फिर शोकाकुल हो जाती। फिर फूलों की ओर देखती और प्रातःकालीन पुष्पदलस्थ शिशिरबिन्दु की भाँति अपने कमलदलनयनों में नीर भर लाती। सायंकाल होते ही हाथों में वीणा लेलेती और कभी कभी कुछ गाने भी लगती। अहा! इस शोकरससिञ्चित स्वर को सुनकर सुनने वालों के नयनों में प्रेम का सागर उमड़ आता।

इस प्रकार चिन्ता-क्रम से सरयू का शरीर शुष्क होने लगा। मुखमण्डल ने पाण्डुवर्ण धारण कर लिया और आँखें कालिमावेष्टित हो गईं। परन्तु सरल स्वभाव जनार्दन ने अभी तक सरयू के हृदय की बात को समझा नहीं था। हाँ उसकी शारीरिक अवस्था देखकर उसे बड़ी चिंता हुई और कारण का अनुसन्धान करने लगा।

स्त्रियों के निकट स्त्रियों की बात छिपी नहीं रहती। यद्यपि सरयू अनेक यत्नों द्वारा अपने शोक को छिपाये हुए थी तथापि उसकी सखियों और दासियों को कुछ कुछ मालूम हो गया था।

अतः उन्होंने बात बनाकर वृद्ध जनार्दन से कहा—"सरयू सयानी होगई। अब उसका विवाह स्थिर करना चाहिए।" सरयू ने भी इस बात को सुन लिया। इसलिए उसने कहला भेजा—"पिताजी से कहना कि मुझे विवाह करने की इच्छा नहीं है। चिरकाल पर्य्यंत अविवाहित रहकर उनके चरणों की सेवा करूंगी।"

उन्होंने इस बात को नहीं माना। वे विवाह के लिए पात्र ढूँढ़ने लगे। राजपुरोहित द्वारा पालित भद्र क्षत्रिय कन्या के पात्र का अभाव नहीं था। अन्त में राजा जयसिंह के एक प्रधान सेनापति से विवाह होना स्थिर हो गया। सरयू को जब यह बात मालूम हुई तब उसका सारा शरीर काँपने लगा। लज्जा को अलग करके उसने पिता को कहला भेजा—"पिताजी से कहना, उन्होंने एक सैनिक से वाक्यदान कर दिया है। वही हमारे वाग्दत्त पति हैं। अन्य किसी से विवाह करने में व्यभिचार-दोष होगा।"

जनार्दन इस बात को सुनकर रुष्ट हो गये और उन्होंने सरयू का बड़ा तिरस्कार किया। कन्या की अनुमति न होते हुए भी विवाह का दिन स्थिर किया गया। सरयू इस बात को सुनकर अपने बाप के चरणों पर गिर पड़ी और ज़ोर ज़ोर से रोकर कहने लगी—"पिताजी, क्षमा कीजिए। नहीं तो आपको इस चिरपालिता अभागिनी कन्या के मरने का दुःख होगा।" परन्तु जनार्दन कन्या को डाटने लगे।

कन्या की बात कौन सुनता है। पाँच भले मानुष जो कुछ कह दें वही समाज का परामर्श है। उसी के अनुसार कार्य्य होगा। विवाह का दिन निकट आने लगा। जनार्दन ने बहुत

कुछ समझाया-डाँटा भी और बहुत तिरस्कार भी किया; परन्तु इसका कुछ प्रभाव अच्छा न पड़ा।

अन्त में विवाह के दिन उन्होंने कन्या से कहा—"अरे पापिनी! क्या तेरे लिए मुझे इस वृद्धावस्था में अपमानित होना पड़ेगा? क्या तू अपने निष्कलङ्क पिता के कुल को कलङ्कित करेगी?"

धीरे धीरे भीगी आँखों से सरयू ने उत्तर दिया—"पिताजी! मैं अबोध हूँ। यदि आप के निकट मैंने कोई दोष किया हो तो क्षमा कीजिए। जगदीश्वर मेरी सहायता करें। मुझसे आपका अपमान न होगा।"

उस समय इस बात का अर्थ जनार्दन ने नहीं समझा। परन्तु दूसरे दिन वे समझ गये जब विवाह के दिन कन्या दीख न पड़ी।

तीसवाँ परिच्छेद

कुटी

शरद् ऋतु के प्रातःकालीन प्रकाश में वेगवती नदी बही चली जा रही है, और सूर्य्य की किरण की आभा से जल की तरङ्गें उछलती कूदती भाँति भाँति के रङ्गों को धारण कर रही हैं और नदी के दोनों ओर धान के खेत लहलहा रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कृषकों के तप से मेदिनी ने प्रसन्न होकर हरा वस्त्र धारण कर लिया है। उत्तर और पूर्व दिशा में भी उसी प्रकार के खेत दीख पड़ते हैं परन्तु बहुत निगाह जमाने पर कुछ गाँव का भी दृश्य दिखाई पड़ता है। दक्षिण दिशा में पर्वत-शिखर बालसूर्य्य की किरणों से और ही प्रकार की शोभा दिखा रहे हैं।

उसी नदी के तट पर एक स्थान श्यामल क्षेत्रों से घिरा हुआ एक छोटे से गाँव के स्वरूप में शोभायमान था। उसी गाँव में एक किसान की कुटी थी। कुटी के पास ही एक बालिका नदी के तीर पर खेल रही थी, और पास ही एक दासी खड़ी थी परन्तु किसान की स्त्री अपने काम धन्धे में लगी हुई थी।

घर के देखने से किसान कुछ धनी मालूम होता है। पास ही दो एक ग्वालों के घर हैं और चार पाँच गायें भी बँधी हैं। घर के भीतर वाले खण्ड में दो चार कोठरियाँ भी हैं और बाहर

एक बड़ी सी बैठक बनी हुई है। इससे यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि किसान गाँव का एक प्रधान व्यक्ति है और कुछ लेन देन का भी कार्य्य करता है।

लड़की की अवस्था अभी सात वर्ष की है परन्तु रङ्ग उसका साँवला है और देखने में चञ्चल और प्रफुल्लचित्त प्रतीत होती है। बालिका कभी तो दौड़कर नदी के किनारे पहुँच जाती है और कभी वहाँ से सीधी अपनी माँ के पास रसोईघर में जा बैठती है और कभी मन होता है तो दासी का हाथ पकड़ कर उससे दो चार बातें कर लेती है।

बालिका बोली—"जीजी, चलो न आज भी कल की तरह नदी में स्नान कर आवें ?"

दासी—"नहीं बहिनी, अम्मा ने कह दिया है कि अब से घाट पर न जाया करना।"

बालिका—"चलो, माँ को ख़बर भी न होगी।"

दासी—"नहीं, जिस बात को माँ ने मना किया है हम उसे क्यों करेंगी ?"

बालिका—"अच्छा दीदी, क्या मेरी माँ तुम्हारी भी अम्मा हैं ?"

दासी—"हाँ"

बालिका—"नहीं, दीदी ठीक ठीक कह।"

दासी—"हाँ, सच्ची माँ है।"

बालिका—"नहीं दीदी, तुम तो राजपूत-स्त्री हो, मैं तो राजपूतनी नहीं हूँ ?"

दासी ने वालिका का मुख चूम लिया; और कहने लगी—"फिर क्यों जानकर पूँछती है ?"

वालिका—"पूछने का तात्पर्य्य यह कि फिर तू मेरी अम्मा को "माँ" कैसे कहती है ?"

दासी—"जिसने हमको खाने पीने को दिया है, जिसने रहने के लिए हमको घर दिया है, और जो हमें अपनी कन्या के समान लालन पालन करती है उसे माँ न कहूँगी तो और किसको कहूँ ? इस संसार में हमारा और कहीं ठिकाना नहीं है। केवल माँ ने हीं मुझे स्थान-दान दिया है।"

वालिका—"दीदी ! तेरी आँखों में आँसू क्यों भर आये, वातों वात रोने क्यों लगी ?"

दासी—"नहीं वहिनी, रोऊँगी क्यों ?"

वालिका—"तेरी आँखें में जल देखकर मेरी आँखें भी भर आईं।"

दासी ने वालिका को फिर चूम कर कहा—"तू मुझे बड़ी प्यारी लगती है।"

वालिका—"और तू भी तो मुझे वड़ी प्यारी मालूम होती है।"

दासी—"अच्छा है।"

वालिका—"अच्छा सदा प्यार करोगी ? कभी भूलोगी तो नहीं ?"

दासी—"हाँ, परन्तु तुम एक दिन मुझे भूल जाओगी।"

बालिका—"वह भला कब ?"

दासी—"जब तुम्हारे वर आवेंगे तब ।"

बालिका—"वे कब आवेंगे ?"

दासी—"बस अब दो ही चार वर्ष के बीच में ।"

बालिका—"ना, दीदी, मैं तुझे कभी नहीं भूलूँगी । वर से भी मैं तुमको अधिक प्रेम करूँगी । परन्तु जब तेरा वर आ जायगा तब तू तो न भूल जायगी ?

दासी के चक्षु फिर अश्रुपूर्ण हो गये । उसने कहा—"नहीं, कभी नहीं भूलूँगी ।"

बालिका—"अपने वर से मेरा अधिक प्रेम करोगी न ?"

दासी ने हँसकर कहा—"ज़रूर, ज़रूर ।"

बालिका—"तुम्हारे वर कब आवेंगे दीदी ?"

दासी—"भगवान जाने । छोड़, अब रसोई का समय हो गया; मैं जाऊँ ।"

पाठकगण ! आपसे यह बताना अनावश्यक है कि सरयू को जब संसार में कोई स्थान निरापद प्रतीत नहीं हुआ तब उसने दासी बनकर एक कृषक के घर दासी-वृत्ति करना अङ्गीकार कर लिया था । किसान का नाम गोकरणनाथ था । वह कुछ सम्पत्तिशाली था और महाजनी का भी काम करता था । गोकरण का अन्तःकरण सरल और स्नेहपूर्ण था इसीलिए उसने राजपूत-कन्या को अपने घर में आश्रय दे दिया था । गोकरण की स्त्री भी बड़ी सच्चरित्रा थी । उसने राजपूत-बाला को अपनी कन्या के समान समझा । सरयू कृतज्ञ होकर गोकरण

और उसकी स्त्री का यथोचित आदर करती और उनकी बालिका की देखभाल भी रखती। इस प्रकार किसान की स्त्री का काम-काज बहुत कुछ सरयू ने बाँट लिया था। इसलिए वह दिन दिन सरयू के ऊपर अधिक प्रसन्न होती गई।

रघुनाथ के न रहने पर यदि सरयू को कहीं सुख की सम्भावना होती तो वह स्थान उदार स्वभाव गोकरणनाथ और उनकी सरला सुहृदया गृहणी के भवन सदृश होता। गोकरण की अवस्था लग भग ४५ वर्ष की थी परन्तु सदैव नियमित परिश्रम करने से अब भी उनका शरीर सुदृढ़ और बलिष्ठ था। गोकरण का एक लड़का शिवाजी का सिपाही था और बहुत दिनों से घर को वापस नहीं आया था। उसके अतिरिक्त यही एक कन्या हुई थी, पिता माता दोनों उसको अधिक प्यार करते थे। प्रातःकाल उठकर गोकरण अपने खेती के अथवा अन्य किसी काम धन्धे पर चले जाते और सरयू घर का सब काम सँभाल लेती। गोकरण की स्त्री कभी कभी कहा करती—"अरी सरयू! तू बड़े की लड़की है। इस प्रकार काम करने से तेरा शरीर थक नहीं जाता? इतना मत किया कर। मैं कर लिया करूँगी।" सरयू स्नेह के साथ उत्तर देती—"माँ, तुम मेरी इतनी ख़ातिर करती हो। तुम्हारा काम करने में मुझे थकावट नहीं मालूम होती। मैं जन्म जन्म तुम्हारी सेवा करूँगी।"

इस स्नेह मयी बातों को सुनकर सरलस्वभावा वृद्ध किसानी की आँखों में जल भर आता और वह आँसू पोंछकर कहती—"सरयू! मैंने तेरे समान लड़की अब तक नहीं देखी। यदि तेरे समान मेरी जाति में कोई लड़की मिलती तो, मैं अपने लड़के का उसके संग विवाह कर लेती। बहुत दिन हुए, मेरे बेटे ने घर छोड़ दिया।"

इसी प्रकार कई महीने व्यतीत हो गये । एक दिन सन्ध्या के समय गोकरण अपनी स्त्री के पास बैठे हुए थे और दूसरी ओर सरयू और उनकी लड़की खेल रहीं थीं, कि उसी समय गोकरणनाथ ने कहा—"ज़रा चुप हो जाओ, और एक सुसंवाद सुन लो ।"

गृहिणी—"आहा, तुम्हारे मुख में पुष्प-चन्दन पड़े । भीमजी का क्या संवाद मिला है ?"

गोकरण—"शीघ्रही आता है । वह शिवाजी के साथ दिल्ली गया हुआ था । आज़ मैंने सुना है कि दुष्ट बादशाह के हाथ से निकलकर शिवाजी यहाँ लौट आये हैं । इसलिए हमारा भीमजी भी अवश्य ही उनके साथ साथ होगा ?"

गृहिणी—"अहा, भगवान् यही करें । प्रायः एक वर्ष हो गया कि बेटे को नहीं देखा है । नहीं मालूम वह कैसे है ? भगवान् ही जानें ।"

गोकरण—"भीमजी अवश्य ही लौटेगा । वह रघुनाथजी हवलदार के अधीन कार्य्य करता है, क्योंकि रघुनाथजी का भी संवाद मिला है ।"

सरयू का हृदय खिल गया । उसने उद्वेग के साँस को रोक कर गोकरण की बात सुनने में चित्त लगाया । गोकरण कहने लगे—"जिस दिन रघुनाथ विद्रोही प्रसिद्ध होकर शिवाजी से अपमानित हुए थे उसी दिन हमारे पुत्र ने क्या कहा था—तुम्हें याद है?"

गृहिणी—"नहीं, मैं भूल गई ।"

गोकरण—"पुत्र ने कहा था, 'पिताजी ! हम हवलदार को पहचानते हैं। उसके समान वीर शिवाजी के सैन्य में दूसरा कोई नहीं है। नहीं मालूम किस भ्रम में पड़कर राजा उन्हें अपमानित कर रहे हैं। पीछे ज्ञात होगा और रघुनाथ के गुण स्मरण होंगे।' इतने दिनों के पश्चात् पुत्र की वात ठीक निकली।

सरयू का हृदय उल्लास और उद्वेग से फड़कने लगा और उसके मस्तक से पसीना टपकने लगा।

गोकरणनाथ कहने लगे—"रघुनाथ छद्मवेश धारण करके शिवाजी के साथ ही साथ दिल्ली गये थे और उन्होंने अपनी बुद्धि-कौशलता के द्वारा राजा को बचा लिया और सम्पूर्ण रूप से अपनी निर्दोषिता सिद्ध कर दी। सुना है कि शिवाजी ने रघुनाथ से अपने दोष की क्षमा माँगी है और उनको भाई कहकर आलिङ्गन किया है। हवलदार से एक वारही रघुनाथ को पँच हज़ारी बना दिया है। शहर में और कोई चर्चा नहीं है, गाँव में भी कोई दूसरी वात नहीं है, जहाँ देखो केवल रघुनाथ ही की वीर-कथा का वर्णन हो रहा है और लोग उनका जय जयकार मना रहे हैं।"

आनन्द और उल्लास से सरयू ज़ोर से चिल्ला उठी और मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़ी।

इकतीसवाँ परिच्छेद

उसी दिन से सरयू की सूरत बदल गई ! बहुत दिनों में आशा, आनन्द और उल्लास का भाव उसके हृदय में प्रविष्ट हुआ । अब उसकी आँखें प्रफुल्लित हुईं, होठों पर मधुरता का प्रवेश हुआ और उसका कलमरूपी हृदय खिल गया । प्रातःकाल जब सुशीतल, सुमन्द, सुगन्धित समीर बहता और कोकिलरव सरयू के कानों में प्रवेश करता तब उसका चित्त विह्वल होजाता । दोपहर के समय घर का कामकाज करके सरयू नदी के तट पर जा बैठती और सूर्य्य की ओर देख कर नहीं मालूम क्या क्या विचारा करती । सन्ध्या के समय जब कभी दूर से वंशी की ध्वनि कानों में पड़ जाती तब मृगी की भाँति सरयू चौंक पड़ती ।

गोकरण की कन्या ने सरयू के भावों में इस परिवर्त्तन को देखा और जब दोनों एक दिन नदी के किनारे बैठी हुई थीं तब कन्या ने पूछा—"दीदी ! दिन दिन तुम तो निखरती जाती हो ! इसका क्या कारण है ?"

सरयू—"क्या कहती है ?"

बालिका—"कहूँ क्या ? क्या मैं देखती नहीं ?"

सरयू—"नहीं, तुम्हारे देखने में भूल है ।"

बालिका—"खूब कही ! मैं भूलती हूँ न ? सिर में पहले भी कभी तुमने फूल खोंसा था ?"

सरयू—"पगली कहीं की !"

वालिका—"मैं पगली हूँ कि तुम? कण्ठ में माला, हाथों में मोतियों की लड़ियाँ, मैं नहीं देख रही हूँ?"

सरयू—"चल, दूर हट।"

वालिका—"क्यों न, नदी के तीर बैठी हुई वहुत देर तक पानी में कौन मुँह देखा करती है?"

सरयू—"वहन! झूठी वातें मत वना।"

वालिका—"ख़ूव! पेड़ों की आड़ में छुप कर मीठेमीठे स्वर में गाती कौन है? क्या मैं इसे भी नहीं जानती?"

सरयू से रहा न गया, हँसते हुए दौड़कर वालिका का मुँह दवा लिया।

वालिका ने हँसते हँसते कहा—"ठहरो, मैं ये सव वातें माँ से कहूँगी।"

सरयू—"नहीं वहन, तुम्हारे पाँ पड़ती हूँ, कहना मति।"

वालिका—"फिर, एक वात पूछती हूँ वता?"

सरयू—"पूँछ।"

वालिका—"इसका अर्थ क्या है? इस पुष्प, इस कण्ठमाला और इस गीत का कारण क्या है? तुम्हारी दोनों आँखें सदा हँसीली क्यों दीख पड़ती हैं और होंठों पर ललाई क्यों फूटी पड़ती है? सारा शरीर तुम्हारा लावण्यमय क्यों होगया?"।

सरयू—"तुम्हारी माँ जो तुम्हारा सिर गूँथकर तुम्हें गहना-कपड़ा पहनाती है वह क्यों?"

बालिका इस बार कुछ लजा सी गई, परन्तु तुरन्त ही उसने उत्तर दिया—"माँ, कहती है कि अगले साल तुम्हारा विवाह होगा और तुम्हारा दूल्हा आवेगा।"

सरयू—"हमारा भी दूल्हा आने वाला है।"

बालिका—"सचमुच ?"

सरयू और बालिका में इसी प्रकार बातचीत हो रही थी कि उसी समय एक दीर्घकाय संन्यासी "हर हर महादेव !" शब्द उच्चारण करता हुआ नदी के तट पर बैठ गया। सन्ध्या के मध्य विकाश में संन्यासी का विभूति-भूषित शरीर बड़ा मनोहर प्रतीत हो रहा था। बालिका तो मारे डर के भग गई, परन्तु सरयू तीक्ष्ण दृष्टि से उसी ओर देखने लगी। ओह! यह तो सीतापति गोस्वामी है!

सरयू का हृदय सहसा कम्पायमान होगया और मन के आवेश से सारा शरीर काँपने लगा। परन्तु लज्जा से कम्पनवेग को रोक सरयू धीरे धीरे संन्यासी के पास चली गई और कहने लगी—"प्रभु, आप का दर्शन एक बार इस अभागिनी को जनार्दन के मन्दिर में हुआ था। उसके पश्चात् आज दासीवृत्ति में आपका दर्शन कर रही हूँ। पिता ने कलङ्किनी कह कर मुझे अलग कर दिया है। इसके अतिरिक्त मेरा कोई दोष नहीं है।"

संन्यासी के नयन अश्रुपूर्ण होगये। धीरे धीरे उन्होंने कहा—"रघुनाथ के लिए तुमने यह कष्ट सहा है?"

सरयू—"नारी जब तक पति का नाम जप सकती है तब तक इसे कष्ट नहीं कहा जा सकता।"

संन्यासी का गला रुक गया और आँखों से जल की वर्षा होने लगी।

सरयू ने कहा—"क्या प्रभु से उस देवपुरुष के साथ साक्षात् हुआ था?"

गोस्वामी—"हाँ, हुआ था।"

सरयू—"फिर क्या कहा था?"

गोस्वामी—"आप को वे ज़रा भी नहीं भूले हैं। हमने उनसे कहा था—सरयू राजपूतबाला है। वह जीवन से यश को अधिक चाहती है। सरयू जब तक जीवित रहेगी रघुनाथ को कलङ्कशून्य वीर कह कर उन्हीं का यश गावेगी।"

सरयू—"अच्छा।"

गोस्वामी—"हमने और भी उनसे कहा था कि—"सरयू तुम्हारे उन्नत उद्देश्य की बाधक नहीं है। रघुनाथ हाथ में तलवार लेकर पथ का परिष्कार करें, ईश्वर उनकी सहायता करेंगे। यदि इस दशा में उनका शरीरांत हो जायगा तो सरयू भी आनन्दसहित प्राण त्याग देगी।

सरयू ने गद्गद् स्वर में कहा, "महाराज, फिर उन्होंने क्या कहा?"

गोसाईंजी ने कहा—"रघुनाथ ने उत्तर नहीं दिया। वे केवल आपकी बात को सुनकर असाध्य-साधन में तत्पर हो गये। अब तो सुना है कि उन्होंने अपनी जीवन-यात्रा के मार्ग को स्वच्छ कर लिया।"

उस सन्ध्या के अन्धकार में गोसाईं के नयन धक्धक जल रहे थे और उनकी ज्वलन्त ध्वनि वृक्षों से प्रतिध्वनित होती रही।

"जिस आदि पुरुष ने जगत् को बनाया है उन्हें प्रणाम करती हूँ" यह कहकर सरयूबाला आकाश की ओर देखकर प्रणाम करने लगी। गोस्वमी ने भी जगत् के आदिपुरुष को प्रणाम किया।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। उस समय सायंकालीन शीतल पवन वह रहा था इसलिए उनके शरीर शीतल होगये और आँखों के आँसू सूख गये।

कुछ देर बाद गोस्वामी ने कहा—"देवता के प्रसाद से जब कार्य्य सिद्ध होगया था तब रघुनाथ ने एक बात कही थी और मुझ से परामर्श किया था कि इसे सरयू को अवश्य सुना दीजिएगा।"

सरयू ने उत्कण्ठित स्वर में कहा—"महाराज, वह कौन सी बात है?"

गोस्वामी—"उन्होंने कहा था कि इतने दिन तक सरयू जिसे मन में रक्खे है क्या उसके आने पर उसे पहिचान भी सकेगी?"

सरयू—"क्या इस जीवन में उन्हें भूल सकती हूँ?"

गोस्वामी—"आपको वे भली प्रकार से जानते हैं, परन्तु स्त्रियों का हृदय सर्वदा स्थिर नहीं रहता। सम्भव है कि भूल जायँ।"

गोस्वामी की चपलता और ज़ोर से हँसना देखकर सरयू को कुछ विस्मय हुआ और उसने कहा—"नारी का हृदय चपल होता, है मैं तो ऐसा नहीं जानती।"

गोस्वामी—"मैं भी तो नहीं जानता था परन्तु आज देख रहा हूँ।"

सरयू—किसको देखा है?"

गोस्वामी—जो हमारी वाग्दत्ता वधू हैं, वही हमें आज भूल गई हैं। देखकर भी पहचान नहीं सकतीं।"

गोस्वामी—"वह वही भाग्यवती है, जिसको तोरण दुर्ग में जनार्दन के घर देखा था और भोजन लाते समय उसका साक्षात् हुआ था। उसी समय हमने उसे अपना तन, मन और धन सौंप दिया था। वह वही सौभाग्यवती हैं जिन्हें मुक्तामाल पहना कर अपने जीवन का मनोरथ सफल समझा था। वह वही सुस्वरूपा हैं जिन्हें राजा जयसिंह के शिविर में अपने नयनों का मणि बना रक्खा था। वह वही हृदयेश्वरी हैं जिनके शब्द हमारे कानों को संगीतवत् प्रतीत होते हैं और जिनके शरीर का स्पर्श हमें चन्दन से भी अधिक सुवासित होता है। वही हमारी जीवन मूल हैं।

वह वही अर्द्धाङ्गिनी हैं कि जिनके ज्वलंत शब्दों को सुनकर मुझे दिल्ली जाना पड़ा था और उन्हीं के उत्साह से उत्साहित होकर यश के पथ का परिष्कार किया है और अनन्त विपद् सागर से पार हुआ हूँ। बहुत दिनों के पश्चात् आज उसी भाग्यवती के चरणों के समीप खड़ा हूँ। क्या वह आज मुझे पहचान सकती है?

इन्हीं कोकिलविनिन्दित शब्दों ने सरयू के हृदय को मन्थन कर डाला। अब जाकर उन्होंने गोसाईं को समझा। सरयू अपने हृदय के वेग को सँभाल न सकी। उसका सिर घूम रहा था, नेत्र बंद थे। "रघुनाथजी! क्षमा कीजिए"—इतना

कहकर सरयू ने रघुनाथ की ओर हाथ बढ़ाया। लड़खड़ाती हुई सरयू को रघुनाथ ने अपने हाथों में सँभाल लिया और अपने उद्वेगी हृदय को उसके हृदय से लगा लिया।

कुछ देर के पश्चात् सरयू चेतन हुई और अपनी आँखों को खोलकर क्या देखती है कि रघुनाथ, हृदयनाथ, उसे धारण किये हुए हैं। चिरप्रार्थित पतिने आज सरयू बाला का गाढ़ आलिङ्गन किया है।

अहा! बहुत दिनों के पश्चात् आज सरयू का, तप्त हृदय रघुनाथ के शान्त हृदय से लग कर शीतल हुआ है। सरयू के घनश्वास रघुनाथ के निश्वास से मिश्रित हुए हैं। सरयू के कम्पित दोनों अधरों को आज ही जीवन भर में रघुनाथ के अधरों ने छुआ है।

ओह! शरीर के स्पर्श करने से बालिका सहम गई! बालिका इस प्रगाढ़ आलिङ्गन से, इस बारंबार चुम्बन से काँपने लगी! यह क्या सत्य है अथवा स्वप्न है?

वायुताड़ित पत्र की भाँति सरयू काँपती हुई मनही मन कहने लगी—"जगदीश्वर! यदि यह स्वप्न है तो इस सुख निद्रा से कभी मत जगाइए।"

बत्तीसवाँ परिच्छेद

जीवन-निर्वाण

महाराष्ट्रदेश में महासमारोह आरम्भ हो गया। गाँव गाँव में यही चर्चा फैल गई कि शिवाजी स्वदेश लौट आये हैं। वह फिर औरङ्गज़ेब से लड़ाई करेंगे और म्लेच्छों को से निकाल देंगे। फिर हिन्दूराज्य संस्थापित होगा।

इधर राजा जयसिंह ने विजयपुर नगर पर स्वयं चढ़ाई कर दी परन्तु उसे हस्तगत नहीं कर सके और बार बार उन्होंने बादशाह से सेना की सहायता माँग भेजी, परन्तु औरङ्गज़ेब के निकट उनका सब आवेदन निष्फल गया। अतः महाराजा जयसिंह ने समझ लिया था कि मेरे ससैन्य विनाश होने के अतिरिक्त औरङ्गज़ेब का और कोई उद्देश नहीं है। परन्तु फिर भी उन्होंने विजयपुर को छोड़ औरंगाबाद की ओर लश्कर डाल दिया।

मृत्यु पर्य्यंत औरङ्गज़ेब के विश्वस्त अनुचर ने वीरोचित कार्य्य किया; औरङ्गज़ेब के अभद्र आचरण करने अथवा हिन्दुओं की मूर्त्ति नष्ट भ्रष्ट करने पर भी महाराज जयसिंह ने उदासीनता प्रकाशित न की। जब उन्हें यह निश्चय हो गया कि मुग़लों के पंजे से महाराष्ट्र देश निकलना चाहता है तब उन्होंने यथासाध्य बादशाह की रक्षा की। लोहगढ़, सिंहगढ़ और पुरन्दर

इत्यादि दुर्गों का विजय करना मुसलमानी सेना की शक्ति के वाहर था। इन्हें हस्तगत करना जयसिंह का ही काम था।

परन्तु इस जगत् में इस प्रकार के विश्वस्त कार्य्यों का पुरस्कार नहीं है। जब औरङ्गज़ेब ने सुना कि महाराजा जयसिंह अपने कार्य्य में फलीभूत नहीं हो सकते तब उसे बड़ी सन्तुष्टि हुई और उन्हें अपमानित करने के लिए दक्षिणदेशस्थ सेनापति के पद से हटा करके दिल्ली बुला भेजा, और उनके स्थान पर यशवन्तसिंह को भेज दिया।

वृद्ध सेनापति ने आजीवन यथासाध्य दिल्ली का कार्य्य साधन किया, परन्तु अन्तिम दिनों में अपमानित होने से उनका हृदय विदीर्ण हो गया और मृत्युशय्या पर पड़ गये!

अपमानित, पीड़ित, वृद्ध महाराजा जयसिंह मृत्युशय्या पर पड़े हुए थे, कि इसी अवसर में एक दूत ने आकर समाचार दिया, "महाराज! एक महाराष्ट्रीय सैनिक आपका दर्शन किया चाहता है। उसने कहा है कि महाराज के चरणों में पड़कर एक दिन उपदेश ग्रहण किया था। आज फिर शिक्षा ग्रहण करने के लिए उपस्थित हूँ।"

राजा ने कहा—"सम्मानपूर्वक ले आओ। जो महाशय आये हैं उन्हें हम भली प्रकार से जानते हैं। उन्हें आने दो। उनके लिए कोई रोक टोक नहीं है।"

थोड़ी देर के बाद एक छद्मवेशी महाराष्ट्रीय योद्धा वहाँ आ गया। राजा उनकी ओर देखकर कहने लगे—"सुहृद्वर शिवाजी! मृत्यु के पूर्व एक बार फिर तुम्हें देखकर मुझे बड़ा सन्तोष प्राप्त हुआ। उठकर तुम्हारे सत्कार करने की शक्ति नहीं है। क्षमा करना वत्स!"

गद्गद् वाणी में शिवाजी ने उत्तर दिया—"पितः ! जब आप से विदा लेकर मैं यहाँ से दिल्ली को प्रस्थानित हुआ था तब मुझे इस बात की शंका भी न हुई थी कि आपको इतना शीघ्र इस दशा में देखूँगा।"

जयसिंह—"राजन् ! मनुष्यदेह क्षणभुँगुर है। इसमें विस्मय किस बात का है ? शिवाजी ! मुझे जब तुम्हारा अन्तिम दर्शन हुआ था तब से और अबके मुग़लराज्य में कितना अन्तर दीख पड़ता है ?"

शिवाजी—"महाराज, आप उस समय साम्राज्य के स्तम्भ थे। जब आप ही की यह दशा है तब मुग़लराज्य की और आशा कहाँ ?"

जयसिंह—"वत्स ! यह नहीं है। राजपूतभूमि वीरप्रसविनी है। जयसिंह की मृत्यु पर कोई दूसरा जयसिंह निकल आवेगा। अब भी जयसिंह के समान सैकड़ों योद्धा वर्तमान हैं। इसलिए मेरे जैसे एक सैनिक के मर जाने से मुग़लराज्य की कुछ हानि न होगी ?"

शिवाजी—"आपके अमङ्गल से अधिक मुग़ल-साम्राज्य का और क्या अधिक अनिष्ट होना शेष रहता है ?"

जयसिंह—"शिवाजी ! एक योद्धा के जाने से दूसरा योद्धा आजाता है, परन्तु पाप से जो क्षति होती है, उसकी पूर्णता कदापि नहीं की जा सकती। मैंने पहले ही कह दिया है कि जहाँ पाप और कपटाचार है वहीं अवनति और मृत्यु के डेरे पड़े हुए हैं। अब उस बात को प्रत्यक्ष देखलो।"

शिवाजी—"वह क्या बात है ?"

जयसिंह—"जब मैंने आप को दिल्ली भेजा था तभी आप का हृदय बादशाह से निश्चिन्त नहीं था, परन्तु आप दृढ़प्रतिज्ञ थे। जब तक बादशाह आपका विश्वास करता, आप कभी उससे विश्वासघात नहीं करते। आपके साथ बादशाह सदाचरण करके दक्षिण देश में अपना एक प्रबल मित्र बना लेता; परन्तु अपने कपटाचरण की बदौलत उसने उसी स्थान पर अपना एक दुर्दमनीय शत्रु बना लिया।"

शिवाजी—"महाराज! आप की बुद्धि असाधारण और बहु-दर्शी है। सारा संसार यथार्थ में आप को विज्ञ कहता है।"

जयसिंह—"हम औरङ्गज़ेब के बाप के समय से दिल्ली का कार्य्य करते हैं। विपत्ति से कष्ट सह कर जहाँ तक सम्भव था बादशाह का उपकार ही किया है। स्वजाति-विजाति की कुछ विवेचना नहीं की। जिस कार्य्य का संकल्प किया था, आजन्म उसी को निभाने का प्रयत्न किया है। परन्तु वृद्धावस्था में बादशाह ने मेरा अपमान ही कर डाला। तथापि ईश्वरेच्छा है कि हमने जिन जिन दुर्गों को जीता है वहाँ वहाँ प्रबन्ध के लिए अपने सैनिकों को छोड़ रक्खा है। अतः शिवाजी, उसे बिना युद्ध ही अपने अधिकार में करना असम्भव है। किन्तु इस आचरण से औरङ्गज़ेब को स्वयम् क्षति भोगनी पड़ेगी। अम्बर के राजगण दिल्ली के विश्वासी और सहायक होते आये हैं, परन्तु अब आगे से वे भी शत्रु बन जायँगे।"

शिवाजी—"आप ने ठीक कहा है। औरङ्गज़ेब ने अपने दुष्टाचरण से अम्बर और महाराष्ट्र इन दो देशों को अपना शत्रु बना लिया है।"

जयसिंह—"हमने तो केवल दो उदाहरण दे दिये हैं कि अम्बर देश और महाराष्ट्र देश। परन्तु सारे भारतवर्ष की यही दशा है। शिवाजी! औरङ्गज़ेब भारतवर्ष के सभी विश्वस्त अनुचरों का अपमान करेगा। इससे उसके सारे मित्र शत्रु हो जायँगे। क्या हिन्दुओं के लिए यह कम है कि उसने काशी धाम में विश्वेश्वर के स्थान पर मसजिद बनवाई है। राजपूतों का अपमान किया है और सारे हिन्दुओं पर जिज़िया लगाया है।

थोड़ी देर के बाद जयसिंह आँख मूँद कर गम्भीर स्वर में फिर कहने लगे—मानो मृत्यु शय्या पर महात्मा के दिव्य नेत्र खुल गये हैं और उन्हीं नेत्रों से भविष्यत् देख कर वह राजर्षि के समान बोले—"शिवाजी! हम देख रहे हैं कि इस कपटाचरण के कारण भारतवर्ष में चारों ओर युद्धानल प्रज्वलित होगा और यह दावानल, महाराष्ट्र देश में, राजस्थान में और बंगाल में प्रज्वलित किया जायगा परन्तु औरङ्गज़ेब बीस वर्ष भी प्रयत्न करके इस अग्नि को बुझा न सकेगा। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि, असामान्य कौशल, और उसके असाधारण साहस सब व्यर्थ जायँगे और बुढ़ापे में दिल्ली में बैठकर उसको पश्चात्ताप करना पड़ेगा। युद्धानल प्रबलवेग से जलेगा और चारों ओर से धू धू का शब्द सुनाई पड़ेगा। सारा मुग़ल-साम्राज्य उसी में भस्म हो जायगा! उसके पश्चात् महाराष्ट्रीय जाति का नक्षत्र बली होगा। महाराष्ट्रगण आगे बढ़कर दिल्ली के सूने सिंहासन पर विराजमान होंगे!"

राजा का गला रुक गया और उनसे अधिक नहीं कहा गया वैद्य लोग जो पास ही बैठे हुए थे वे भाँति भाँति का

संदेह करने लगे और कभी स्पष्ट रूप में और कभी गुप्त रीति से रोग की दशा का अनुभव करने लगे।

कुछ देर बाद जयसिंह ने मृदुस्वर में कहा—"कपटाचारी! अपने आप ही अपना नाश करेगा। सत्यमेव जयति।" इतना कहते ही जयसिंह का श्वास रुक गया और शरीर से प्राण निकल गये।

तेंतीसवाँ परिच्छेद

महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात

केवल पहर रात और शेष थी कि उसी समय शिवाजी राजपूतों के शिविर से बाहर चले आये। प्रातःकाल होने के पूर्व ही प्रधान प्रधान सेनापतियों और अमात्यों को उन्होंने एकत्रित कर लिया। थोड़ी देर तक वे उनसे परामर्श करते रहे फिर शिविर से बाहर निकल कर अपनी सारी सेना को बुला लिया और उनसे कहने लगे—"बन्धुगण! प्रायः एक वर्ष हुआ कि हमने औरङ्गज़ेब से सन्धि की थी परन्तु उसने अपने कपटाचारु से सन्धि को तोड़ डाला है। आज हम उन कपटा-चरणों का प्रतिशोध किया चाहते हैं। मुसममानों के साथ फिर लड़ाई होनी चाहिए।

जो औरङ्गज़ेब के प्रधान सेनापति थे, और जिससे लड़ने के लिए ईशानी देवी ने निषेध किया था, जिनसे कि बिना लड़े ही शिवाजी परास्त होगया था, उसी महात्मा राजा जयसिंह ने कल रात औरङ्गज़ेब के कपटाचरण से दुःखित हो प्राण त्याग दिये। सैन्यगण! दिल्ली हमारे लिए कारावास बनी थी और हिन्दूप्रवर जयसिंह की मृत्यु ने तो और भी जलेपर नमक छिड़क दिया। इन सबका परिशोध करना हमारा कर्त्तव्य है।

मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए महाराज जयसिंह के दिव्य चक्षु खुल गये थे। उन्होंने देखा था कि औरङ्गज़ेब और मुग़लों के

भाग्य नक्षत्र अवनति की ओर झुक रहे हैं। दिल्ली का सिंहासन उनसे छिन जायगा! बन्धुगण ! अग्रसर हो, और पृथ्वीराज के सिंहासन को अधिकार में करलो।

पूर्व की ओर रक्तिमाच्छटा देख पड़ने लगी है। यह प्रभात की लालिमा है। परन्तु यह हमारे लिए सामान्य प्रभात नहीं है। महाराष्ट्रगण! आज हमारा जीवन-प्रभात है।

सारी सेना और सैनिकगण इस महावाक्य को सुनकर गर्ज उठे—"आज हमारा जीवन-प्रभात है।" आज "महाराष्ट्र-जीनव-प्रभात है।"

चौंतीसवाँ परिच्छेद

विचार

उसी दिन सन्ध्याकाल को अकेला रघुनाथ नदी के तट पर घूमता था। अपनी ख्याति, सरयू का पुनर्म्मिलन, मुसलमानों से फिर युद्ध, हिन्दुओं की भावी स्वाधीनता—ऐसे ही ऐसे नूतन विचारों से रघुनाथ का हृदय भर रहा था कि सहसा पीछे से एक व्यक्ति ने पुकारा, "रघुनाथ!"

रघुनाथ ने पीछे फिर कर देखा तो चन्द्रराव जुमलादार खड़ा है। रोष के मारे उसका शरीर काँपने लगा, परन्तु ईशानी के मन्दिर की प्रतिज्ञा को स्मरण करके ठिठक गया।

चन्द्रराव ने कहा—"रघुनाथ, इस जगत् में हम तुम दोनों साथ नहीं रह सकते। अतः एक को अवश्य मरना चाहिए।"

रघुनाथ ने क्रोध को रोक कर धीरे से कहा—"चन्द्रराव! कपटाचारी मित्रहन्ता चद्रराव! तुम्हारे इन आचरणों का दण्ड तो शिरच्छेदन है, परन्तु रघुनाथ तुम्हें क्षमा करता है और तुम ईश्वर से क्षमा माँगो।"

चन्द्रराव—"बालक की दी हुई क्षमा हम ग्रहण नहीं करते। तुम अब और अधिक जीवित नहीं रह सकते इसलिए जो लगा कर मेरी बातों को सुन लो। जन्मही से तुम हमारे शत्रु हो, और हम भी तुम्हारे परम शत्रु हैं।

हम तुम्हारी दशा लड़कपन से जानते हैं। हज़ारों दफ़ा तुम्हारे सिर काट लेने का संकल्प किया है, परन्तु वह न करके

तुमको देश से निकलवाया, तुम्हें विद्रोही कहकर अपमानित कराया, तुमसे कहाँ तक कहा जाय! तुम हमारे मन्त्रों से कब तक बच सकते हो। तुम्हारे भाग्य मन्द हैं। तुम फिर उन्नति करके सैन्य में सम्मिलित हुए हो, परन्तु चन्द्रराव भी अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नहीं हुआ। यह कभी सम्भव नहीं कि तुम्हारे सिर का छेदन बिना किये चन्द्रराव शान्त हो जाय। जब तक तुम्हारे हृदय का रुधिर पान न कर लूँगा तब तक जीवन शान्तिलाभ नहीं कर सकता।"

रोष के मारे रघुनाथ की आँखें जलने लगीं। उसने कम्पित स्वर में कहा—"पामर! सामने से दूर हो जा, नहीं तो मैं अपनी पवित्र प्रतिज्ञा को भूल जाऊँगा और तुम्हें तुम्हारे पापाचरणों का उचित दण्ड दूँगा।"

चन्द्रराव—"भीरु! अब भी युद्ध से हटता है? और सुन ले, "उज्जैन की लड़ाई में इसी तीर से तुम्हारे पिता का हृदय विदीर्ण हुआ था। वह कोई दूसरा शत्रु नहीं था। चन्द्रराव तुम्हारा पितृहन्ता है!"

रघुनाथ से और कुछ नहीं देखा गया। ज्योंहीं उसने सुना, तुरन्त ही तलवार निकाल कर चन्द्रराव पर आक्रमण करने लगा। चन्द्रराव भी तलवार चलाने में अनाड़ी नहीं था। बहुत देर तक दोनों में युद्ध होता रहा। दोनों की तलवारों से दोनों की ढालें नष्ट होगईं। दोनों के शरीर से रक्त बहने लगा। चन्द्रराव भी कम बली नहीं है परन्तु रघुनाथ ने दिल्ली में रहकर तलवार चलाना और भी उत्तम रीति से सीख लिया था। बहुत देर तक लड़ाई होती रही। अन्त में रघुनाथ ने चन्द्रराव को परास्त कर लिया और उसे भूमि पर दे पटका और दोनों

घुटनों से उसके वक्षःस्थल को दबा लिया । फिर रघु-नाथ ने कहा—"पामर ! आज तुम्हारी पापराशि का प्रायश्चित्त होगा, और पिता की मृत्यु का परिशोध किया जायगा ।"

मृत्यु के समय भी चन्द्रराव निर्भीक था । उसने विकट-हास्य में कहा—"अब तो तुम्हारी बहन विधवा होगी । इस लिए मैं सुखपूर्वक प्राणविसर्जन कर सकता हूँ ।"

बिजली की तरह सब बातें रघुनाथ की आँखों के सामने फिरने लगीं । लक्ष्मी ने इसीलिए अपने स्वामी का नाम नहीं बताया था और चन्द्रराव का अनिष्ट करने से प्रार्थना की थी । पितृहन्ता, रक्तपिशाच चन्द्रराव ने बलपूर्वक लक्ष्मी से विवाह किया है ! मारे क्रोध के रघुनाथ की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं परन्तु फिर भी उसके हाथ की उठी हुई तलवार चन्द्रराव के हृदय में न धँस सकी । रघुनाथ धीरे से उसे छोड़ कर अलग खड़ा होगया ।

दोनों योद्धा एक दूसरे को रोष में भरी हुई आँखों से घूरने लगे । मानों दो हुताशन लड़ाई से अभी अलग किये गये हैं और फिर अभी लड़ना चाहते हैं । चूँकि चन्द्रराव असियुद्ध में परास्त हो चुका था इसलिए वह धूल में सने हुए रक्त से असुर के समान दीख पड़ता था और मारे क्रोध के जला जा रहा था । इधर रघुनाथ पिता की हत्या की बात और भगिनी के अपमान को याद करके परिशोधके दावानल में जला जा रहा था । इसी बीच में वृक्षों के भीतर से सहसा एक योद्धा बाहर निकल आया । दोनों ने देखा—"ये तो शिवाजी हैं ।"

शिवाजी ने कुछ भी न कहा। उन्होंने अपने चार सैनिकों को, जो छुपे हुए थे, बुलाने का संकेत किया। तुरन्त ही चारों सैनिक बाहर आकर चन्द्रराव के निकट खड़े हो गये और उसके हाथों से ढाल तलवार छीन ली। फिर उसे वन्दी कर लिया। शिवाजी तो फिर छिप गये। परन्तु रघुनाथ भौंचक्का हो गया॥

दूसरे दिन प्रातःकाल ही चन्द्रराव का विचार है! उसने रघुनाथ के पिता का हनन किया था, इसका विचार नहीं है। रघुनाथ के ऊपर कल आक्रमण किया था, इस दोष का भी विचार आज नहीं है। रुद्रमण्डल पर आक्रमण करने के पहले ही शत्रु रहमतख़ाँ को चन्द्रराव ने गुप्त संवाद दिया था, अब उसका प्रमाण मिल गया है। आज उसी विषय का विचार है।

पहले ही कह आये हैं कि अफ़ग़ान-सेनापति रहमतख़ाँ रुद्रमण्डल से वन्दी होकर लाया गया था, परन्तु शिवाजी ने भद्राचरणपूर्वक उसे मुक्त कर दिया था और रहमतख़ाँ स्वतंत्र होकर फिर अपने प्रभु विजयपुर के सुलतान के निकट चला गया था। जयसिंह ने जब विजयपुर पर चढ़ाई की थी तब रहमतखाँ ने बड़ी बहादुरी से उनका सामना किया था, परन्तु एक लड़ाई में आहत होकर फिर महाराजा जयसिंह का वन्दी हो गया। जयसिंह ने उसे अपनी सेना में रखकर उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और उसकी दवा कराई परन्तु रोग से उसे छुटकारा नहीं मिल सका और अन्त में मर गया।

रहमतख़ाँ की मृत्यु के एक दिन पहले ही जयसिंह ने कहा था—"ख़ाँसाहिब! अब आप और अधिक जीवित नहीं रह

सकते। सारी दवा-दारू वृथा होती जाती है। यदि आप इससे कोई हानि न समझें तो कृपया एक बात बता दीजिए।

रहमतख़ाँ ने कहा—"हमें अब जीने की लालसा नहीं है। परन्तु आपने जिस प्रकार मेरा आदर सत्कार किया है उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। क्या आप जानना चाहते हैं? मैं आपसे कोई बात छिपा नहीं सकता।"

जयसिंह—"रुद्रमण्डल के आक्रमण के पूर्व ही आपको एक सैनिक ने संवाद दिया था। वह कौन था। हम नहीं जान सके। उसके बदले में एक दूसरा तो अवश्यमेव दण्डित हुआ था।"

रहमतख़ाँ—"हमने उससे प्रतिज्ञा की है कि "आजन्म उसका नाम किसी को नहीं बताया जायगा।"

राजपूत! मैं आपके भद्राचरण से बहुत सम्मानित हुआ हूँ। परन्तु पठान अपनी प्रतिज्ञाभङ्ग नहीं कर सकता।

जयसिंह—"पठान योद्धा! मैं आपकी प्रतिज्ञा भङ्ग कराना नहीं चाहता परन्तु हाँ, यदि कोई निदर्शन हो तो उसे मुझे देने में आप आपत्ति न करेंगे?"

रहमतख़ाँ—"प्रतिज्ञा कीजिए कि यह निदर्शन मेरी मृत्यु के पूर्व न पढ़ा जायगा?"

जयसिंह ने वही प्रतिज्ञा की। तब रहमतख़ाँ ने उन्हें कई एक काग़ज़ों का बण्डल दे दिया। रहमतख़ाँ की मृत्यु के पश्चात् जयसिंह ने उन पत्रों को पढ़कर यह निश्चय किया कि "विद्रोही चन्द्रराव है।"

चन्द्रराव ने रहमतख़ाँ को अपने हाथ से लिखकर पत्र भेजा था। उसी विषय से सम्बन्ध रखने वाले ये सब पत्र थे

जयसिंह ने उसे पढ़कर यह भी ज्ञात किया था कि चन्द्रराव ने पठानों से पारितोषिक भी प्राप्त किया था । जयसिंह की मृत्यु के दिन उनके मन्त्री ने यही सब कागज़ शिवाजी को दे दिये थे ।

विचार करने में अधिक समय नहीं लगा । शिवाजी के चिरविश्वस्त मन्त्री रघुनाथ न्यायशास्त्री ने एक एक करके सब पत्रों को पढ़ सुनाया । जब पढ़ना समाप्त हुआ तब सारी सेना ने गर्ज्ज कर रोष से कहा—"चन्द्रराव ही विद्रोही है । उसी ने शत्रु को संवाद दिया है और उनसे पारितोषिक लाभ किया है । शोक कि इस दोष में निर्दोषी रघुनाथ फँस गया था ।"

उसी समय शिवाजी ने कहा—"पापाचारी विद्रोही ! तेरी मृत्यु निकट है । क्या तू कुछ कहना चाहता है ?" मृत्यु के समय भी चन्द्रराव निर्भीक था । उसका दुर्दमनीय दर्प और साहस तथा अभिमान पूर्ववत् वर्त्तमान था । उसने कहा—"मुझे और क्या कहना है ? आपकी विचारज्ञता प्रसिद्ध है । एक दिन इसी दोष में रघुनाथ को दण्ड मिला था, आज मुझे दण्ड मिल रहा है । मेरे मरने पर फिर एक दिन दूसरे को दण्ड दीजिएगा । तब आप जानेंगे कि यह सब का सब जाल था । इसमें कोई भी सत्य नहीं है ।"

इन शब्दों से शिवाजी का क्रोध और बढ़ आया । उन्होंने कहा—"जल्लाद, चन्द्रराव के दोनों हाथों को काट डाल कि जिससे यह और घूस न ले सके । फिर जलते लोहे से इसके सिरपर "विश्वासघातक" शब्द लिख दे जिससे फिर कोई इसका विश्वास न कर सके ।"

जल्लाद इस नृशंस आदेश को पालन करने चला । उसी समय रघुनाथ वहाँ आकर खड़ा हो गया और कहने लगा—"महाराज ! मेरा एक निवेदन है ।"

शिवाजी—"रघुनाथ ! इस विषय में तुम्हारा निवेदन अवश्य सुना जायगा । क्या इसी पामर ने तुम्हारे पिता के प्राण नाश किये हैं ? क्या उसकी प्रतिहिंसा लेना चाहते हो ? निवेदन करो ?"

रघुनाथ—"महाराज की आज्ञा अलंघ्य है; परन्तु हम यह प्रतिहिंसा नहीं किया चाहते । हाँ, इस समय चन्द्रराव को कोई क्षति न पहुँचाई जाय । यही मेरी आकांक्षा है ।"

सारी सभा निस्तब्ध हो गई ।

शिवाजी क्रोध को सँभाल न सके । उन्होंने कड़क कर कहा—"तुम्हारे प्रति इसने अत्याचार किया है । इसी को तुम क्षमा कराना चाहते हो । राजविद्रोहाचरण की सज़ा मृत्यु है । हम इसे वही दण्ड दिलावेंगे । जल्लाद ! तुम अपना कार्य्य करो ।"

रघुनाथ, महाराज का विचार अनिन्दनीय है, परन्तु यह दास प्रभु के निकट भिक्षा चाहता है । आप मुझे क्षमा करें । शिवाजी के आदेश पर आज तक किसी ने फिर कुछ नहीं कहा है, परन्तु मैं यही चाहता हूँ कि इसे विना दण्ड दिये ही छोड़ दिया जाय ।

शिवाजी—"इस भिक्षादान के देने में मैं असमर्थ हूँ । रघुनाथ, इस वार तो मैंने तुम्हें क्षमा किया, परन्तु मैं फिर ऐसा करने में असमर्थ हो जाऊँगा ।"

रघुनाथ—"आपके दो एक कार्य्य करने में मुझे सफलता प्राप्त हुई थी और आपने उसके प्रति इस दास को इच्छित पुरस्कार देने को कहा था। आज उसी पुरस्कार को चाहता हूँ कि चन्द्रराव को बिना दण्ड दिये ही छोड़ दिया जाय!

रोष में भरे हुए शिवाजी की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं और उन्होंने गर्ज कर कहा—"रघुनाथ! कभी कभी तुमने हमारे उपकार किये हैं अवश्य, परन्तु क्या आज उसी द्वारा शिवाजी का न्याय अन्यथा किया चाहते हो? अब अन्यथा नहीं हो सकती। तुम अपनी वीरता अपने पास रक्खो"

इन तिरस्कृत वाक्यों को सुनकर रघुनाथ का मुख लाल हो गया। उसने धीरे से, परन्तु कम्पित स्वर से, कहा—"प्रभु! पुरस्कार चाहना दास को अभ्यस्त नहीं है। आज जीवन भर में मैंने एक पुरस्कार माँगा है। प्रभु यदि इस पुरस्कार के देने में असमर्थ हैं तो दास फिर कभी न माँगेगा। दास की केवल यही भिक्षा है। अब मुझे सदा के लिए विदा दीजिए। रघुनाथ सैनिक व्रत त्याग करके फिर गोस्वामी बनकर देश देश भिक्षा माँगता फिरेगा!"

शिवाजी थोड़ी देर के लिए निस्तब्ध हो गये थे कि एक अमात्य ने शिवाजी के पास आकर उनके कान में कहा—"चन्द्रराव रघुनाथ का बहनोई है। इसीलिए रघुनाथ उसके प्राण की भिक्षा चाहता है।

शिवाजी ने अब विस्मित होकर चन्द्रराव को छोड़ देने का आदेश किया परन्तु वज्रनाद करके कहा—"जाव चन्द्रराव, शिवाजी के राज्य से निकल जाव। दूसरे देश में जाकर मित्र का सर्वनाश करो, शत्रुओं से पारितोषिक लो, षड्यन्त्र और

विद्रोहाचरण द्वारा उसका नाश करो और अपने पापजीवन के भाग्य को रोओ।"

चन्द्रराव भीरु न था। वह धीरे धीरे क्रोध से जल रहा था। वह रघुनाथ के निकट आकर कहने लगा—"बालक! मैं तुम्हारी दया नहीं चाहता और न तेरे दिये हुए जीवन को धारण करना चाहता हूँ!" इतना कहते ही उसने अपनी छुरी से अपना हृदय फाड़ डाला और अभिमानी, भीषणप्रतिज्ञ चन्द्रराव ने अपने चिरनिरुद्धतिसाधन को सिद्ध किया। जीवन-शून्य शरीर धड़ाम से सभा में गिर पड़ा।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

भाई-बहन

हमारा यह उपन्यास पूर्ण हुआ। इसलिए हम उपन्यास के समस्त नायकों और नायिकाओं का कुछ विशेष वृत्तान्त बताना आवश्यक समझते हैं।

वृद्ध जनार्दन की पालित कन्या जब से हरी गई थी तब से वे बेचारे पागल से हो गये थे, परन्तु कन्या के फिर मिल जाने से आनन्दाश्रु वर्षण करते हुए सरयू को पुलकित हृदय से लगा लिया और रघुनाथ को बुलाकर अच्छी घड़ी, उत्तम नक्षत्र में उन्होंने कन्यादान कर दिया। अब सरयू को जो सुख लाभ हुआ उसका कौन वर्णन कर सकता है? आज चार वर्षों से सरयू जिस देवमूर्त्ति की उपासना करती थी, उसी ने उसी को आज हृदय से लगाया है और सरयू के होठों को अपने दोनों होठों से दबा लिया है। अहा! क्या कहना है! वह तो उन्मादिनी सी हो गई है। और रघुनाथ? रघुनाथ ने तो तोरण दुर्ग में जिस स्वप्न को देखा था आज वही सार्थक हो गया है। आज उसी कण्ठमाल को वह बार बार हिला रहा है। वही पुष्पविनिन्दित देह आज हृदय से लगा हुआ है और उन्हीं स्नेह-पूर्ण नयनों की ओर देख देख कर जगत् को रघुनाथ ने भुला दिया है।

सरयू ने अपनी सात वर्ष की "दीदी" को भुला नहीं दिया है। रघुनाथ के अनुरोध से शिवाजी ने गोकरण को एक

जागीर दे दी और उसके पुत्र भीमजी की पदवी बढ़ा कर उसे हवलदार बना दिया है।

सरयू अपनी "दीदी" को सदा अपने घर में रखती और अपने पति के साथ उसका भी आदर करती। इसी प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गये, परन्तु एक दिन एक स्वदेशीय पात्र को देखकर सरयू ने अपनी "दीदी" का उसके साथ विवाह कर दिया। विवाह के दिन सरयू और रघुनाथ दोनों उपस्थित थे। सरयू ने कन्या के कान में कहा—"देख दीदी! यही मैंने कहा था। याद रखना। वर से मेरी अधिक चाहना रखनी।"

रघुनाथ उस समय से १३ वर्ष पर्य्यंत सुख्याति और सम्मान के साथ शिवाजी के अधीन रहकर कार्य्य करता रहा। यशवन्तसिंह ने जब यह सुना कि रघुनाथ उन्हीं के प्रिय अनुगृहीत गजपतिसिंह का पुत्र है तब उसने रघुनाथ की सब पैतृक भूमि छोड़ दी और अपनी ओर से भी कुछ और देकर उसे वहाँ भेजना चाहा, परन्तु शिवाजी ने उन्हें जाने नहीं दिया और जब तक वे जीवित रहे रघुनाथ को अपने से अलग नहीं किया। परन्तु जब सन् १६८० ई० के चैत्र मास में शिवाजी का शरीरान्त हुआ और उनके अयोग्य पुत्र शम्भूजी का दौर दौरा हुआ तब रघुनाथ ने वहाँ का रहना उचित न समझकर सरयू और जनार्दन को ले फिर अपने प्रपितामह तिलकसिंह के सूर्य्यमण्डल दुर्ग में प्रवेश किया।

पाठकगण! इच्छा तो यह थी कि इसी स्थान पर आपसे विदा लेकर चुप हो जायँ, परन्तु अभी एक व्यक्ति की कथा

बाक़ी है, शान्त, चिरसहिष्णु, लक्ष्मीरूपिणी लक्ष्मी का हाल और सुनाना रह गया है।

जिस दिन चन्द्रराव ने आत्महत्या कर ली थी उसी दिन रघुनाथ लक्ष्मी से मिलने चले गये। वहाँ जाकर क्या देखते हैं कि लक्ष्मी चन्द्रराव के मृतक शरीर के समीप केश खोले विलाप-परिताप कर रही है। रघुनाथ का हृदय काँपने लगा। आर्य्य-कुल की ललनाओं को जिस भीषण दुःख और यातना का सामना करना पड़ता है उसे कौन वर्णन कर सकता है? आज लक्ष्मी के निकट सारा संसार प्रकाश शून्य है। उसका हृदय शून्य हो गया है। शोक, नैराश्य तथा वैधव्य की यातना से हे ईश्वर! तुम्हीं इस बूड़ते भारत को पार लगाओ तो कुशल है, नहीं तो जिस देश में लाखों करोड़ों बाल-विधवायें हों वहाँ का क्या ठिकाना है?

रघुनाथ ने उसको कुछ धैर्य्य देना चाहा, परन्तु धैर्य्य तो दूर रहा, लक्ष्मी ने अपने भ्राता को पहचाना भी नहीं। लाचार रघुनाथ रोता हुआ उसके घर से बाहर निकल आया।

सन्ध्या के समय रघुनाथ फिर लक्ष्मी को देखने आया। बहन की दशा परिवर्तित देखकर रघुनाथ को कुछ विस्मय हुआ। उन्होंने देखा कि लक्ष्मी की आँखों में आँसू की एक बूँद नहीं है और वह धीरे धीरे अपने मृतक स्वामी के शरीर को सुगन्ध से सजा रही है। ऐसा प्रतीत होता था कि मानों बालिका पुतली को पुष्पों से सजा रही है। रघुनाथ घर में आगया। लक्ष्मी भी धीरे धीरे रघुनाथ के पास आगई और धीरे से कहने लगी, "भाई रघुनाथ! तुमसे यह एक बार और अन्तिम

साक्षात् है। मैं परम भाग्यवती हुई। मुझे अब कोई कष्ट नहीं है।"

रोती हुई आँखों से रघुनाथ ने कहा—"प्राणों से अधिक दुलारी बहन लक्ष्मी! यदि मैं इस समय भी तुम्हें न दीख सकती तो कब दीखता '।"

लक्ष्मी ने अपने अञ्चल से रघुनाथ के आँसू पोंछ कर कहा—"भाई, सत्य है। तुमने तो बहुत दया की। राजा के निकट प्राण-प्यारे के बचाने की तुमने बहुत प्रयत्न किया है। हमने यह सब कुछ सुना है, परन्तु हमारे भाग्य में तो यही लिखा था। ईश्वर तुम्हें सुखी रक्खें।"

रघुनाथ—"लक्ष्मी! तुम बुद्धिमती हो। तुमने अपने असह्य शोक को किसी प्रकार से रोका तो। मुझे इससे बड़ी संतुष्टता हुई। मनुष्य जीवन ही शोकमय है। जो लिखा था वह हुआ। अब धैर्य्य धारण करो। चलो, मेरे घर चलो। यदि भाई के यत्न से, उसके स्नेह से, कुछ भी तुम्हारे शोक में न्यूनता हुई तो मुझे परम आनन्द होगा।"

इस बात को सुन कर लक्ष्मी हँस पड़ी। इस हँसी को देख कर रघुनाथ के प्राण सूख गये। लक्ष्मी ने कहा—"भाई! तुम दया की खान हो, परन्तु ईश्वर ने स्वयम् लक्ष्मी को सान्त्वना देदी है और शान्तपथ दिखा दिया है। दासी को जीते समय जो भले मालूम होते रहे वही प्राणप्यारे मरने पर भी परम सुख राशि प्रतीत हो रहे हैं।

रघुनाथ के मस्तक पर मानों वज्र टूट पड़ा। उन्होंने अभी तक लक्ष्मी के स्पष्टभाव को नहीं समझा।

वह अभी तक लक्ष्मी की प्रतिज्ञा के भंग करने का यत्न करता ही रहा। भाँति भाँति के उदाहरण दिये, लाखों तहर से समझाया; यहाँ तक कि एक पहर भर लक्ष्मी से तर्कना करते ही व्यतीत होगया। परन्तु धीर गम्भीर दृढ़प्रतिज्ञ लक्ष्मी का यही उत्तर था—"हृदयेश्वर हमें बड़े प्यारे हैं। हम उन्हें छोड़ नहीं सकती।"

फिर रघुनाथ ने सजल नयन हो कहा—"लक्ष्मि ! एक दिन मेरा भी जीवन नैराश्यपूर्ण था। मैंने भी जीवन त्याग करने का संकल्प किया था। परन्तु बहन ! केवल तुम्हारे ही उपदेशों, प्रबोधनों और तुम्हारे ही स्नेहमय शब्दों से मैंने उस संकल्प का त्याग किया था और कार्य्यसाधन में तत्पर हुआ था। अब क्या तुम मेरी बात न मानोगी? क्या तुम्हें भाई का स्नेह नहीं है?"

लक्ष्मी ने पूर्ववत् शान्तभाव से उत्तर दिया—"भाई! मैं उस बात को भूली नहीं हूँ। तुम लक्ष्मी को प्यारे हो। परन्तु विचार कर देखो तो. जिससे अनेक आशायें थीं, जो जीवनाधार था, क्या उसी भाँति की आशायें तुम्हारी भी थीं? तुम पुरुष हो, अनेक आशायें तुम्हारे मन में उठेंगी और उनमें कुछ लुप्त हो जायँगी और कुछ सिद्ध होकर रहेंगी। भइया! उस दिन तुमने बहन की बात मानी थी। आज तुम्हारा कलंक दूर होगया; परन्तु क्या इसी भाँति तुम्हारी बात मानने से मैं संसार में अलङ्कृत रह सकती हूँ? क्या मेरे वह प्राणपति फिर संसार में दर्शन दे सकते हैं? भइया! तुम लक्ष्मी का लड़कपन से स्नेह करते हो। इसलिए तुम मेरे मार्ग में काँटा न बोओ। मुझे प्राणेश्वर के संग जाने दो।"

रघुनाथ निरुत्तर होगया। स्नेहमयी भगिनी के अञ्चल में मुख छिपा कर वह लड़कों की भाँति रोने लगा। इस असार कपटरूपी संसार में भाई-बहन के अखण्डनीय प्रेम के समान और कौन पवित्र निष्कलङ्क प्रणय है? स्नेहमयी भगिनी की भाँति अमूल्य रत्न इस विस्तीर्ण जगत् के अतिरिक्त और कहाँ मिल सकता है?

आधी रात के समय चिता तैयार हुई। चन्द्रराव का शव उस पर रक्खा गया। हास्यवदना लक्ष्मी ने सुन्दर वस्त्र और अलङ्कार, रत्न,मुक्ता इत्यादिकों को दे देकर लोगों से विदा ली।

लक्ष्मी चिता के पास पहुँची। उसने दासियों के आँसुओं को अपने अञ्चल से पोंछा और उन्हें समझाया, बुझाया, धैर्य्य धारण कराया। जातिकुटुम्बियों से विदा ली, गुरु आदि के पदधूल को मस्तक पर लगाया। सभी की आँखों में जल भर आया परन्तु लक्ष्मी ने मीठी बातों से सब को प्रबोधित किया।

अन्त में लक्ष्मी रघुनाथ के पास आई और कहने लगी--"भाई! लड़कपन ही से तुम मुझको बड़ा प्यार करते हो। आज लक्ष्मी भाग्यवती होगी, चिरसुखिनी होगी। एकबार और प्यार से बहन को विदा दो, लक्ष्मी को विदा करो।"

अब रघुनाथ से और नहीं सहा गया। वह लक्ष्मी का हाथ पकड़ कर बालकों की भाँति ज़ोर ज़ोर से रोने लगा। लक्ष्मी की आँखों में भी जल आगया!

सस्नेह भाई की आँखों का जल पोंछ कर लक्ष्मी ने कहा—"छी, भाई! पिता की भाँति तुम में साहस है, फिर भी तुम्हारी आँखों में जल आगया।"

क्या शुभ कार्य्य में रोना चाहिए? जगदीश्वर तुम्हें और यशस्वी करें और संसार में तुम्हारी कीर्ति फैले। लक्ष्मी की बस यही आकांक्षा है। रघुनाथ, तुम सुख से रहो। भाई! विदा दो। दासी के लिए स्वामी को प्रतीक्षा करनी पड़ती होगी।"

कातर स्वर में रघुनाथ ने कहा—"तुम्हारे बिना जगत् तुच्छ प्रतीत होता है। अब संसार में रघुनाथ की क्या आवश्यकता है? प्राणमयी लक्ष्मी! तुम्हें कैसे विदा दूँ। तुम्हें तजकर कैसे जीवन व्यतीत करूँगा?" इस तरह चिल्लाकर रघुनाथ भूमि पर गिर पड़े।

अनेक यत्न करने लक्ष्मी ने रघुनाथ को उठाया। फिर आँखों का आँसू पोछा; बहुत समझाया बुझाया और कहा—"तुम वीर पुरुष हो, पुरुष का जो धर्म्म है उसका तुम पालन करो और लक्ष्मी को नारीधर्म्म का पालन करने दो। देरी मत करो। रोको मत। यह देखो, पूर्व की ओर लालिमा दीख पड़ती है। अब तो लक्ष्मी को जाने दो।

गद्गद् स्वर में रघुनाथ ने कहा—"लक्ष्मी! प्राणमयी लक्ष्मी! इस जगत् से मैंने तुझे विदा दी, परन्तु इसी आकाश उसी पूर्णधाम में फिर हमारा साक्षात् होगा। शोक! यह संसार मेरे लिए मृतवत् है।

भाई के चरणों की धूल लेकर लक्ष्मी चिता के समीप चली गई और स्वामी के दोनों पैरों को मस्तक पर स्थापित करके कहा—"प्राणेश्वर! जीवन में तुम बड़े प्यारे थे। अब भी अनुग्रह करो। तुम्हारे पैरों द्वारा फिर मैं तुम्हारे साथ आ रही हूँ। जन्म जन्म तुम्हीं मेरे स्वामी बनो और लक्ष्मी तुम्हारी पदसेवा में तत्पर हो।"

धीरे धीरे लक्ष्मी ने चिता का आरोहण किया। स्वामी के पैरों के समीप बैठ गई और दोनों पैरों को भक्तिभाव से हृदय में लगा लिया। लक्ष्मी ने आँखें मूँद लीं और ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों उसके प्राण उसी समय स्वर्ग को प्रस्थान कर गये।

अग्नि जलने लगा। बड़े ज़ोर से आकाश में "धू धू" का शब्द होने लगा। पहले अग्नि की जिह्वा लक्ष्मी के पवित्र शरीर को चाटने लगी। फिर शीघ्र ही तेज़ी के साथ उसके मस्तक के ऊपर से होकर लपट निकलने लगी। फिर आकाश में शब्द होने लगा। सती होते समय लक्ष्मी का एक केश भी कम्पायमान न हुआ।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त थं शरीरम्
ओउम् क्रतो स्मर क्लिवे स्मर क्रत थं स्मर।

ईशोपनिषद्

शांतिः शांतिः शांतिः